# पंचामृत

पाँच पुस्तकों का समुच्चय



प्रात:स्मरणीय परम पूज्य

संत श्री आसारामजी बापू के

सत्संग-प्रवचन

# पंचामृत

*यौवन सुरक्षा, गुरुभक्तियोग, जीवन रसायन, श्रीगुरुगीता एवं ईश्वर की ओर... पुस्तकों का समुच्चय*


श्री योग वेदान्त सेवा समिति

**संत श्री आसारामजी आश्रम**

संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-380005. फोन : (079) 27505010-11.

आश्रम रोड, जहाँगीरपुरा, सूरत-395005। फोन : (0261) 2772201-2.

वन्दे मातरम् रोड, रवीन्द्र रंगशाला के सामने, नई दिल्ली-60. फोन : (011) 25729338, 25764161.

पेरूबाग, गोरेगाँव (पूर्व), मुंबई- 400063. फोन : (022) 28779030-31.

e-mail : ashramindia@ashram.org web-site : www.ashram.org

Rs. 20-00

काँटे चुभना नहीं छोड़ते हैं

तो इससे

फूल महकना थोड़े ही छोड़ देंगे !

निन्दकरूपी काँटों के बीच

संतरूपी गुलाब

सत्संग, सेवा, भक्ति

और ज्ञान का परिमल

फैलाते ही रहते हैं ।

परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

# निवेदन

अपने आश्रम से प्रकाशित 'यौवन सुरक्षा', 'गुरुभक्तियोग', 'जीवन रसायन', श्रीगुरुगीता' एवं 'ईश्वर की ओर' जैसी पुस्तकें साधकों को नित्य नवीन उत्साह, उमंग, साहस, सुख, शांति और समता के साम्राज्य में प्रवेश करने की सामग्री प्रदान करती हैं। अतः नित्य पाठ के लिए इन पाँचों पावन पुस्तकों को एक साथ पक्के जिल्द में प्रकाशित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्नत जीवन की राह पर इन पाँचों पुस्तकों का समुच्चय 'पंचामृत' साधकों के लिए सुविधाजनक सिद्ध होगा।

'यौवन सुरक्षा' में तन-मन को स्वस्थ रखने के लिए ब्रह्मचर्य की महिमा और ब्रह्मचर्य-पालन की युक्तियाँ बताई गयी हैं।

'ईश्वर की ओर' में देह की नश्वरता, क्षणभंगुरता बताकर स्मशानयात्रा के वर्णन से साधक के सोये हुए विवेक-वैराग्य को जगाने का प्रयास है जिससे साधक मौत की भी मौत करके... ईश्वर-साक्षात्कार करके जहाँ मौत की भी पहुँच नहीं है ऐसी अपनी अमर आत्मा में सुप्रतिष्ठित हो जाय।

इस कलियुग में कदम-कदम पर आलस्य, प्रमाद, मनमुखता, ऐहिक आकर्षण और पुरानी आदतें ईश्वर के मार्ग से गिरा देती हैं। 'श्रीगुरुगीता' एवं 'गुरुभक्तियोग' यानी सलामती योग इन सब विघ्न-बाधाओं से एवं मनमुखता से बचाकर साधक को साध्य तक पहुँचने में सहायता करता है।

'जीवन रसायन' में ऐसे ऐसे स्वर्ण-सूत्र हैं कि जिनका प्रतिदिन चिन्तन मनन करने से साधक का आध्यात्मिक साधना-वपु दिनोंदिन पुष्ट होता है और आखिर में साधक

गुरुकृपा से अपने आनन्दस्वरूप आत्मा में प्रतिष्ठित हो सकता है ।

इस 'पंचामृत' का नित्य पाठ करने से नित्य नवीन उत्साह, उमंग के साथ अपने नित्य नूतन आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होने की सामग्री मिलती रहेगी, साधनासूत्र का अनुसन्धान सदा बना रहेगा ।

'पंचामृत' की सहायता से साधकगण जल्दी ही साधना में उन्नत बनें यही प्रभु और संत-चरणों में प्रार्थना...

पाठकों से नम्र निवेदन है कि प्रतिदिन इसका पाठ करके शीघ्रातिशीघ्र वे अपने तन को तन्दुरुस्त एवं मन को प्रसन्न बनाएँ, बुद्धि में समता का साम्राज्य व्याप्त होने दें, चित्त में चैतन्यस्वरूप, सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द को प्रकट करने का पावन पुरुषार्थ करें ।

*विनीत,*
*श्री योग वेदान्त सेवा समिति*
*अमदावाद आश्रम*

# अनुक्रम

## यौवन सुरक्षा

## गुरुभक्तियोग

## जीवन रसायन



## श्रीगुरुगीता

## ईश्वर की ओर



## श्रीआसारामायण

*विद्यार्थियों, माता-पिता-अभिभावकों व राष्ट्र के कर्णधारों के नाम*

# ब्रह्मनिष्ठ संत श्री आसारामजी बापू का संदेश

हमारे देश का भविष्य हमारी युवा पीढ़ी पर निर्भर है किंतु उचित मार्गदर्शन के अभाव में वह आज गुमराह हो रही है। पाश्चात्य भोगवादी सभ्यता के दुष्प्रभाव से उसके यौवन का ह्रास होता जा रहा है। विदेशी चैनल, चलचित्र, अश्लील साहित्य आदि प्रचार माध्यमों के द्वारा युवक-युवतियों को गुमराह किया जा रहा है। विभिन्न सामयिकों और समाचार-पत्रों के द्वारा तथाकथित पाश्चात्य मनोविज्ञान से प्रभावित मनोचिकित्सक और 'सेक्सोलॉजिस्ट' युवा छात्र-छात्राओं को चरित्र, संयम और नैतिकता से भ्रष्ट कर रहे हैं।

ब्रितानी औपनिवेशिक संस्कृति की देन इस वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में जीवन के नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता बरती गयी है। फलतः आज के विद्यार्थी का जीवन कौमार्यावस्था से ही विलासी और असंयमी हो जाता है।

पाश्चात्य आचार-व्यवहार के अंधानुकरण से युवानों में जो फैशनपरस्ती, अशुद्ध आहार-विहार के सेवन की प्रवृत्ति, कुसंग, अभद्रता, चलचित्र-प्रेम आदि बढ़ रहे हैं उनसे दिनोंदिन उनका पतन होता जा रहा है। वे निर्बल और कामी बनते जा रहे हैं। उनकी इस अवदशा को देखकर ऐसा लगता है कि वे ब्रह्मचर्य की महिमा से सर्वथा अनभिज्ञ हैं।

लाखों नहीं, करोड़ों-करोड़ों छात्र-छात्राएँ अज्ञानतावश अपने तन-मन के मूल ऊर्जा-स्रोत का व्यर्थ में अपक्षय कर पूरा जीवन दीनता-हीनता-दुर्बलता में तबाह कर देते हैं और सामाजिक अपयश

के भय से मन-ही-मन कष्ट झेलते रहते हैं। इससे उनका शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य चौपट हो जाता है, सामान्य शारीरिक-मानसिक विकास भी नहीं हो पाता। ऐसे युवक-युवतियाँ रक्ताल्पता, विस्मरण तथा दुर्बलता से पीड़ित रहते हैं।

यही वजह है कि हमारे देश में औषधालयों, चिकित्सालयों, हजारों प्रकार की एलोपैथिक दवाइयों, इंजेक्शनों आदि की लगातार वृद्धि होती जा रही है। असंख्य डॉक्टरों ने अपनी-अपनी दुकानें खोल रखी हैं, फिर भी रोग एवं रोगियों की संख्या बढ़ती ही जा रही है।

इसका मूल कारण क्या है ? दुर्व्यसन तथा अनैतिक, अप्राकृतिक एवं अमर्यादित मैथुन द्वारा वीर्य की क्षति ! इसकी कमी से रोगप्रतिकारक शक्ति घटती है, जीवनशक्ति का ह्रास होता है।

**इस देश को यदि जगद्गुरु के पद पर आसीन होना है, विश्व-सभ्यता एवं विश्व-संस्कृति का सिरमौर बनना है, उन्नत स्थान फिर से प्राप्त करना है तो यहाँ की संतानों को चाहिए कि वे ब्रह्मचर्य के महत्त्व को समझें और सतत सावधान रहकर सख्ती से इसका पालन करें।**

ब्रह्मचर्य के द्वारा ही हमारी युवा पीढ़ी अपने व्यक्तित्व का संतुलित एवं श्रेष्ठतर विकास कर सकती है। ब्रह्मचर्य के पालन से बुद्धि कुशाग्र बनती है, रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है तथा महान-से-महान लक्ष्य निर्धारित करने एवं उसे सम्पादित करने का उत्साह उभरता है, संकल्प में दृढ़ता आती है, मनोबल पुष्ट होता है।

आध्यात्मिक विकास का मूल भी ब्रह्मचर्य ही है। हमारा देश औद्योगिक, तकनीकी और आर्थिक क्षेत्र में चाहे कितना भी विकास कर ले, समृद्धि प्राप्त कर ले फिर भी यदि युवाधन की सुरक्षा न हो पायी तो यह भौतिक विकास अंत में महाविनाश की ओर ही ले जायेगा क्योंकि संयम, सदाचार आदि के परिपालन से ही कोई भी सामाजिक व्यवस्था सुचारु रूप से चल सकती है। भारत का

सर्वांगीण विकास सच्चरित्र एवं संयमी युवाधन पर ही आधारित है।

अतः हमारे युवाधन छात्र-छात्राओं को ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित करने के लिए उन्हें यौन-स्वास्थ्य, आरोग्यशास्त्र, दीर्घायु-प्राप्ति के उपाय तथा कामवासना नियंत्रित करने की विधि का स्पष्ट ज्ञान प्रदान करना हम सबका अनिवार्य कर्तव्य है। इसकी अवहेलना करना हमारे देश व समाज के हित में नहीं है। यौवन की सुरक्षा से ही सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण हो सकता है।

卐

# यौवन सुरक्षा

**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।**

धर्म का साधन शरीर है। शरीर से ही सारी साधनाएँ सम्पन्न होती हैं। यदि शरीर कमजोर है तो उसका प्रभाव मन पर पड़ता है और मन भी कमजोर पड़ जाता है।

कोई भी कार्य यदि सफलतापूर्वक करना हो तो तन और मन दोनों स्वस्थ होने चाहिए। जिन्होंने विषय-विकारों में अपनी नाड़ीशक्ति कमजोर कर दी है, जो वैषयिक भोगों के वशीभूत होकर अपने शरीर के ओज-तेज को नष्ट कर चुके हैं वे लोग साधना की हिम्मत नहीं जुटा पाते। दूसरी ओर, शरीर कमजोर होने पर भी जो विकारों में नहीं गिरते उनका मन सेवा-साधना से पुष्ट होता है। युवावर्ग साधना करने की क्षमता होते हुए भी संसार की चकाचौंध से प्रभावित होकर वैषयिक सुखों में, विषय-विकारों में अपना ओज-तेज बिखेर देता है और हताशा, निराशा, विफलता व खिन्नता का शिकार हो जाता है। अपनी वीर्यशक्ति का महत्त्व न समझने के कारण बुरी आदतों में पड़कर उसे खर्च कर देता है, फिर जिंदगी भर पछताता रहता है। ऐसे युवक किसीको अपना दुःख-दर्द नहीं सुना पाते, बुरी आदतों में पड़कर उन्होंने अपनी वीर्यशक्ति को खो

दिया है। अब मन और शरीर कमजोर हो गये, संसार उनके लिए दुःखालय हो गया, ईश्वरप्राप्ति उनके लिए असंभव हो गयी। अब संसार में रोते-रोते जीवन घसीटना ही रहा।

इसीलिए हर युग में महापुरुष ब्रह्मचर्य पर जोर देते आये हैं। जिस व्यक्ति के जीवन में संयम नहीं है, वह न तो स्वयं की ठीक से उन्नति कर पाता है और न ही समाज में कोई महान कार्य कर पाता है। ऐसे व्यक्तियों से बना हुआ समाज और देश भी सच्ची सुख-शांति व आध्यात्मिक उन्नति में पिछड़ जाता है।

## ब्रह्मचर्य क्या है ?

पहले, ब्रह्मचर्य क्या है- यह समझना चाहिए। 'याज्ञवल्क्य संहिता' में आया है :

**कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।**
**सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥**

'सर्व अवस्थाओं में मन, वचन और कर्म तीनों से मैथुन का सदैव त्याग हो, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं।'

भगवान वेदव्यासजी ने कहा है :

**ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः।**

'विषय-इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाले सुख का संयमपूर्वक त्याग करना ब्रह्मचर्य है।'

भगवान शंकर कहते हैं :

**सिद्धे बिन्दौ महादेवि किं न सिद्धयति भूतले।**

'हे पार्वती ! बिन्दु अर्थात् वीर्यरक्षण सिद्ध होने के बाद कौन-सी सिद्धि है, जो साधक को प्राप्त नहीं हो सकती ?'

साधना द्वारा जो साधक अपने वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाकर योगमार्ग में आगे बढ़ते हैं, वे कई प्रकार की सिद्धियों के मालिक बन जाते हैं। ऊर्ध्वरेता योगी पुरुष के चरणों में समस्त सिद्धियाँ दासी बनकर रहती हैं। ऐसा ऊर्ध्वरेता पुरुष परमानंद को जल्दी पा सकता

है अर्थात् आत्मसाक्षात्कार जल्दी कर सकता है ।

देवताओं को देवत्व भी इसी ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त हुआ है।

**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।**
**इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत् ॥**

'ब्रह्मचर्यरूपी तप से देवों ने मृत्यु को जीत लिया है । देवराज इन्द्र ने भी ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही देवताओं से अधिक सुख व उच्च पद को प्राप्त किया है ।' **(अथर्ववेद : काण्ड ११ सूक्त ७ मंत्र १९)**

ब्रह्मचर्य बड़ा गुण है । वह ऐसा गुण है, जिससे मनुष्य को नित्य मदद मिलती है और जीवन के सब प्रकार के खतरों में सहायता मिलती है ।

## *ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट तप है*

ऐसे तो तपस्वी लोग कई प्रकार के तप करते हैं, परंतु ब्रह्मचर्य के बारे में भगवान शंकर कहते हैं :

**न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।**
**ऊर्ध्वरिता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः ॥**

'ब्रह्मचर्य ही उत्कृष्ट तप है । इससे बढ़कर तपश्चर्या तीनों लोकों में दूसरी नहीं हो सकती। ऊर्ध्वरिता पुरुष इस लोक में मनुष्य रूप में प्रत्यक्ष देवता ही है ।'

जैन शास्त्रों में भी इसे उत्कृष्ट तप बताया गया है ।

**तवेसु वा उत्तमं बंभचेरम् ।**

'ब्रह्मचर्य सब तपों में उत्तम तप है ।' **(जैन सूत्रकृतांग : ६.२३)**

## *वीर्यरक्षण ही जीवन है*

वीर्य इस शरीररूपी नगर का एक तरह से राजा ही है । यह वीर्यरूपी राजा यदि पुष्ट है, बलवान है तो रोगरूपी शत्रु कभी शरीररूपी नगर पर आक्रमण नहीं करते । जिसका वीर्यरूपी राजा निर्बल है, उस शरीररूपी नगर को कई रोगरूपी शत्रु आकर घेर लेते

हैं। इसीलिए कहा गया है :

**मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।**

'बिन्दुनाश (वीर्यनाश) ही मृत्यु है और बिन्दुरक्षण ही जीवन है।'

जैन ग्रंथों में अब्रह्मचर्य को पाप बताया गया है :

**अबंभचरियं घोरं पमायं दुरहिट्ठियम्।**

'अब्रह्मचर्य घोर प्रमादरूप पाप है।' (दंश वैकालिक सूत्र : ६.१७)

'अथर्ववेद' में इसे उत्कृष्ट व्रत की संज्ञा दी गयी है :

**व्रतेषु वै वै ब्रह्मचर्यम्।**

वैद्यकशास्त्र में इसको परम बल कहा गया है :

**ब्रह्मचर्यं परं बलम्।** 'ब्रह्मचर्य परम बल है।'

वीर्यरक्षण की महिमा सभी सत्पुरुषों ने गायी है। योगिराज गोरखनाथ ने कहा है :

**कंत गया कूँ कामिनी झूरै। बिन्दु गया कूँ जोगी ॥**

'पति के वियोग में कामिनी तड़पती है और वीर्यपतन से योगी पश्चात्ताप करता है।'

भगवान शंकर ने तो यहाँ तक कह दिया है कि इस ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही मेरी ऐसी महान महिमा हुई है :

**यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येतादृशो भवेत्।**

## आधुनिक चिकित्सकों का मत

यूरोप के प्रतिष्ठित चिकित्सक भी भारतीय योगियों के कथन का समर्थन करते हैं। डॉ. निकोल कहते हैं : ''यह एक भैषजिक और दैहिक तथ्य है कि शरीर के सर्वोत्तम रक्त से स्त्री तथा पुरुष दोनों ही जातियों में प्रजनन-तत्त्व बनते हैं। शुद्ध तथा व्यवस्थित जीवन में यह तत्त्व पुनः अवशोषित हो जाता है। यह सूक्ष्मतम मस्तिष्क, स्नायु तथा मांसपेशीय ऊतकों (Tissues) का निर्माण करने के लिए तैयार होकर पुनः परिसंचारण में जाता है। मनुष्य का

यह वीर्य ऊर्ध्वगामी होकर शरीर में विसृत होने पर उसे निर्भीक, बलवान, साहसी तथा वीर बनाता है। यदि इसका अपव्यय किया गया तो यह उसको स्त्रैण, दुर्बल, कृशकलेवर एवं कामोत्तेजनशील बनाता है तथा उसके शरीर के अंगों के कार्यव्यापार को विकृत एवं स्नायुतंत्र को शिथिल (दुर्बल) करता है और उसे मिर्गी एवं अन्य अनेक रोगों तथा मृत्यु का शिकार बना देता है। जननेन्द्रिय के व्यवहार की निवृत्ति से शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक बल में असाधारण वृद्धि होती है।''

परम धीर तथा अध्यवसायी वैज्ञानिकों के अनुसंधानों से पता चला है कि जब कभी भी वीर्य को सुरक्षित रखा जाता है तथा इस प्रकार शरीर में उसका पुनः अवशोषण किया जाता है तो वह रक्त को समृद्ध तथा मस्तिष्क को बलवान बनाता है।

डॉ. डिओ लुई कहते हैं : ''शारीरिक बल, मानसिक ओज तथा बौद्धिक कुशाग्रता के लिए इस तत्त्व (वीर्य) का संरक्षण परम आवश्यक है।''

एक अन्य लेखक डॉ. ई. पी. मिलर लिखते हैं : ''शुक्रस्राव का स्वैच्छिक अथवा अनैच्छिक अपव्यय जीवनशक्ति का प्रत्यक्ष अपव्यय है। यह प्रायः सभी स्वीकार करते हैं कि रक्त के सर्वोत्तम तत्त्व शुक्रस्राव की संरचना में प्रवेश कर जाते हैं। यदि यह निष्कर्ष ठीक है तो इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति के कल्याण के लिए जीवन में ब्रह्मचर्य परम आवश्यक है।''

पश्चिम के प्रख्यात चिकित्सक कहते हैं कि वीर्यक्षय से, विशेषकर तरुणावस्था में वीर्यक्षय से विविध प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। वे हैं : शरीर में व्रण, चेहरे पर मुँहासे अथवा विस्फोट, नेत्रों के चतुर्दिक नीली रेखाएँ, दाढ़ी का अभाव, धँसे हुए नेत्र, रक्तक्षीणता से पीला चेहरा, स्मृतिनाश, दृष्टि की क्षीणता, मूत्र के साथ वीर्यस्खलन, अण्डकोश की वृद्धि, अण्डकोशों में पीड़ा,

दुर्बलता, निद्रालुता, आलस्य, उदासी, हृदय-कम्प, श्वासावरोध या कष्टश्वास, यक्ष्मा, पृष्ठशूल, कटिवात, शिरोवेदना, संधि-पीड़ा, दुर्बल वृक्क, निद्रा में मूत्र निकल जाना, मानसिक अस्थिरता, विचारशक्ति का अभाव, दुःस्वप्न, स्वप्नदोष तथा मानसिक अशांति।

उपरोक्त रोगों को मिटाने का एकमात्र इलाज ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य-पालन में निम्न प्रयोग मदद करेगा :

८० ग्राम आँवला चूर्ण और २० ग्राम हल्दी चूर्ण का मिश्रण बना लो। सुबह-शाम ३-३ ग्राम यह मिश्रण फाँकने से ८-१० दिन में ही उपरोक्त सभी रोगों में चमत्कारिक लाभ होगा। वीर्यरक्षा में इससे मदद मिलेगी।

## *वीर्य कैसे बनता है ?*

वीर्य शरीर की बहुत मूल्यवान धातु है। भोजन से वीर्य बनने की प्रक्रिया बड़ी लम्बी है। श्री सुश्रुताचार्य ने लिखा है :

**रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।**
**मेदस्यास्थिः ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसंभवः॥**

जो भोजन पचता है, उसका पहले रस बनता है। पाँच दिन तक उसका पाचन होकर रक्त बनता है। पाँच दिन बाद रक्त से मांस, उसमें से ५-५ दिन के अंतर से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से अंत में वीर्य बनता है। स्त्री में जो यह धातु बनती है उसे 'रज' कहते हैं।

वीर्य किस प्रकार छः-सात मंजिलों से गुजरकर अपना यह अंतिम रूप धारण करता है, यह सुश्रुताचार्य के इस कथन से ज्ञात होता है। कहते हैं कि इस प्रकार वीर्य बनने में करीब ३० दिन व ४ घण्टे लग जाते हैं। वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि ३२ किलोग्राम भोजन से ८०० ग्राम रक्त बनता है और ८०० ग्राम रक्त से लगभग २० ग्राम वीर्य बनता है।

## *आकर्षक व्यक्तित्व का कारण*

इस वीर्य के संयम से शरीर में एक अद्भुत आकर्षक शक्ति उत्पन्न होती है, जिसे प्राचीन वैद्य धन्वंतरि ने 'ओज' नाम दिया है। यही ओज मनुष्य को अपना परम लाभ- 'आत्मदर्शन' कराने में सहायक बनता है। आप जहाँ-जहाँ भी किसी व्यक्ति के जीवन में कुछ विशेषता, चेहरे पर तेज, वाणी में बल, कार्य में उत्साह पायेंगे, वहाँ समझो इस वीर्यरक्षण का ही चमत्कार है।

यदि एक साधारण स्वस्थ मनुष्य एक दिन में ८०० ग्राम भोजन के हिसाब से चालीस दिन में ३२ किलो भोजन करे तो उसकी ४० दिन की कमाई लगभग २० ग्राम वीर्य होगी। ३० दिन अर्थात् महीने की करीब १५ ग्राम हुई और १५ ग्राम या इससे कुछ अधिक वीर्य एक बार के मैथुन में खर्च होता है।

## *माली की कहानी*

एक माली था। उसने अपना तन, मन, धन लगाकर कई दिनों तक परिश्रम करके एक सुंदर बगीचा तैयार किया। उस बगीचे में भाँति-भाँति के मधुर सुगंधयुक्त पुष्प खिले। उन पुष्पों को चुनकर उसने इकट्ठा किया और उनका बढ़िया इत्र तैयार किया। फिर उसने क्या किया, जानते हो ? उस इत्र को एक गंदी नाली (मोरी) में बहा दिया।

अरे ! इतने दिनों के परिश्रम से तैयार किये गये इत्र को, जिसकी सुगन्ध से उसका घर महकनेवाला था, उसने नाली में बहा दिया ! आप कहेंगे कि 'वह माली बड़ा मूर्ख था, पागल था...' मगर अपने-आपमें ही झाँककर देखें। वह माली कहीं और ढूँढ़ने की जरूरत नहीं है। हममें से कई लोग ऐसे ही माली हैं।

वीर्य बचपन से लेकर आज तक, यानी १५-२० वर्षों में तैयार होकर ओजरूप में शरीर में विद्यमान रहकर तेज, बल और स्फूर्ति

देता रहा। अभी भी जो करीब ३० दिन के परिश्रम की कमाई थी, उसे यों ही सामान्य आवेग में आकर अविवेकपूर्वक खर्च कर देना कहाँ की बुद्धिमानी है ?

क्या यह उस माली जैसा ही कर्म नहीं है ? वह माली तो दो-चार बार यह भूल करने के बाद किसीके समझाने पर सँभल भी गया होगा, फिर वही-की-वही भूल नहीं दोहरायी होगी, परंतु आज तो कई लोग वही भूल दोहराते रहते हैं। अंत में पश्चात्ताप ही हाथ लगता है।

क्षणिक सुख के लिए व्यक्ति कामान्ध होकर बड़े उत्साह से इस मैथुनरूपी कृत्य में पड़ता है परंतु कृत्य पूरा होते ही वह मुर्दे जैसा हो जाता है। होगा ही। उसे पता ही नहीं कि सुख तो नहीं मिला, केवल सुखाभास हुआ, परंतु उसमें उसने ३०-४० दिन की अपनी कमाई खो दी।

युवावस्था आने तक वीर्यसंचय होता है। वह शरीर में ओज के रूप में स्थित रहता है। वह तो वीर्यक्षय से नष्ट होता ही है, अति मैथुन से तो हड्डियों में से भी कुछ सफेद अंश निकलने लगता है, जिससे युवक अत्यधिक कमजोर होकर नपुंसक भी बन जाते हैं। फिर वे किसीके सम्मुख आँख उठाकर भी नहीं देख पाते। उनका जीवन नारकीय बन जाता है।

वीर्यरक्षण का इतना महत्त्व होने के कारण ही कब मैथुन करना, किससे करना, जीवन में कितनी बार करना आदि निर्देश हमारे ऋषि-मुनियों ने शास्त्रों में दे रखे हैं।

## सृष्टि-क्रम के लिए मैथुन : एक प्राकृतिक व्यवस्था

शरीर से वीर्य-व्यय यह कोई क्षणिक सुख के लिए प्रकृति की व्यवस्था नहीं है। संतानोत्पत्ति के लिए इसका वास्तविक उपयोग है। सृष्टिक्रम के लिए यह प्रकृति की व्यवस्था है।

यह सृष्टि चलती रहे, इसके लिए सन्तानोत्पत्ति होना जरूरी है। प्रकृति में हर प्रकार की वनस्पति व प्राणिवर्ग में यह काम-प्रवृत्ति

स्वभावत: पायी जाती है। इस काम-प्रवृत्ति के वशीभूत होकर हर प्राणी मैथुन करता है और उसका रतिसुख भी उसे मिलता है। किंतु इस प्राकृतिक व्यवस्था को ही बार-बार क्षणिक सुख का आधार बना लेना कहाँ की बुद्धिमानी है ? पशु भी अपनी ऋतु के अनुसार ही इस कामवृत्ति में प्रवृत्त होते हैं और स्वस्थ रहते हैं, तो क्या मनुष्य पशुवर्ग से भी गया-बीता है ? पशुओं में तो बुद्धितत्त्व विकसित नहीं होता, परंतु मनुष्य में तो उसका पूर्ण विकास होता है।

**आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।**

'भोजन करना, भयभीत होना, मैथुन करना और सो जाना यह तो पशु भी करते हैं।' पशु शरीर में रहकर हम यह सब करते आये हैं। अब यह मनुष्य-शरीर मिला है। अब भी यदि बुद्धि एवं विवेकपूर्वक अपने जीवन को नहीं चलाया और क्षणिक सुखों के पीछे ही दौड़ते रहे तो अपने मूल लक्ष्य पर कैसे पहुँच पायेंगे ?

## *सहजता की आड़ में भ्रमित न हों*

कई लोग तर्क देने लग जाते हैं : ''शास्त्रों में पढ़ने को मिलता है और ज्ञानी महापुरुषों के मुखारविन्द से भी सुनने में आता है कि सहज जीवन जीना चाहिए। काम करने की इच्छा हुई तो काम किया, भूख लगी तो भोजन किया, नींद आयी तो सो गये। जीवन में कोई 'टेन्शन', कोई तनाव नहीं होना चाहिए। आजकल के अधिकांश रोग इसी तनाव के ही फल हैं... ऐसा मनोवैज्ञानिक कहते हैं। अतः जीवन सहज और सरल होना चाहिए। संत कबीरजी ने भी कहा है : **साधो, सहज समाधि भली।**''

ऐसा तर्क देकर भी कई लोग अपने कामविकार की तृप्ति को सहमति दे देते हैं। परंतु यह अपने-आपको धोखा देने जैसा है। ऐसे लोगों को खबर ही नहीं है कि ऐसा सहज जीवन तो ज्ञानी महापुरुषों का होता है, जिनके मन और बुद्धि अपने नियंत्रण में होते हैं, जिनको अब संसार में अपने लिए पाने को कुछ भी शेष नहीं बचा

है, जिन्हें मान-अपमान की चिंता नहीं होती है। वे उस आत्मतत्त्व में स्थित होते हैं, जहाँ न पतन है न उत्थान। उनको सदैव मिलते रहनेवाले आनंद में अब संसार के विषय न तो वृद्धि कर सकते हैं न कटौती। विषय-भोग उन महान पुरुषों को आकर्षित करके अब बहका या भटका नहीं सकते। इसलिए अब उनके सम्मुख भले ही विषय-सामग्रियों का ढेर लग जाय, किंतु उनकी चेतना इतनी जागृत होती है कि वे चाहें तो उनका उपयोग करें और चाहें तो ठुकरा दें।

बाहरी विषयों की बात छोड़ो, अपने शरीर से भी उनका ममत्व टूट चुका होता है। शरीर रहे अथवा न रहे - इसमें भी उनका आग्रह नहीं रहता। ऐसे आनंदस्वरूप में वे अपने-आपको हर समय अनुभव करते रहते हैं। ऐसी अवस्थावालों के लिए कबीरजी ने कहा है :

**साधो, सहज समाधि भली।**

## *अपने को तोलें*

हम यदि ऐसी अवस्था में हैं तब तो ठीक है। अन्यथा ध्यान रहे, ऐसे तर्क की आड़ में हम अपने को धोखा देकर अपना ही पतन कर डालेंगे। जरा अपनी अवस्था की तुलना उनकी अवस्था से करें। कोई हमारा अपमान कर दे तो हम क्रोधित हो उठते हैं, बदला तक लेने को तैयार हो जाते हैं। हम लाभ-हानि में सम नहीं रहते हैं। राग-द्वेष हमारा जीवन है। 'मेरा-तेरा' भी वैसा ही बना हुआ है। 'मेरा धन... मेरा मकान... मेरी पत्नी... मेरा पैसा... मेरा मित्र... मेरा बेटा... मेरी इज्जत... मेरा पद...' ये सब सत्य भासते हैं कि नहीं ? यही तो देहभाव है, जीवभाव है। हम इससे ऊपर उठकर व्यवहार कर सकते हैं क्या ? यह जरा सोचें।

कई साधु लोग भी इस देहभाव से छुटकारा नहीं पा सके हैं, सामान्यजन की तो बात ही क्या ? कई साधु भी 'मैं स्त्रियों की ओर देखता ही नहीं हूँ... मैं पैसे को छूता ही नहीं हूँ... मैं जूते नहीं पहनता हूँ...' इस प्रकार की अपनी-अपनी मन और बुद्धि की

पकड़ों में उलझे हुए हैं। वे भी अपना जीवन अभी सहज नहीं कर पाये हैं और हम... ?

हम अपने साधारण जीवन को ही सहज जीवन का नाम देकर विषयों में पड़े रहना चाहते हैं। कहीं मिठाई देखी तो मुँह में पानी भर आया। अपने सम्बन्धी और रिश्तेदारों को कोई दुःख हुआ तो भीतर से हम भी दुःखी होने लग गये। व्यापार में घाटा हुआ तो मुँह छोटा हो गया। कहीं अपने घर से ज्यादा दिन दूर रहे तो बार-बार अपने पति/पत्नी और पुत्र-परिवार की याद में इतने खप रहे हैं कि असली आत्मयार से ही बेखबर हैं। ये कोई सहज जीवन के लक्षण हैं, जिसकी ओर ज्ञानी महापुरुषों का संकेत है ? नहीं।

## *मनोनिग्रह की महिमा*

आजकल के युवक-युवतियों के साथ बड़ा अन्याय हो रहा है। उन पर चारों ओर से विकारों को भड़कानेवाले आक्रमण होते रहते हैं।

एक तो वैसे ही अपनी पाशवी वृत्तियाँ यौन उच्छृंखलता की ओर प्रोत्साहित करती हैं और दूसरे, सामाजिक परिस्थितियाँ भी उसी ओर का आकर्षण बढ़ाती हैं... इस पर उन प्रवृत्तियों को वैज्ञानिक समर्थन मिलने लगे और संयम को हानिकारक बताया जाने लगे... कुछ तथाकथित आचार्य भी फ्रायड जैसे नास्तिक एवं अधूरे मनोवैज्ञानिक के व्यभिचारशास्त्र को आधार बनाकर **'संभोग से समाधि'** का उपदेश देने लगें, तब तो ईश्वर ही ब्रह्मचर्य और दाम्पत्य जीवन की पवित्रता का रक्षक है।

१६ सितम्बर, १९७७ के 'न्यूयॉर्क टाइम्स' में छपा था : ''अमेरिकन पेनल कहती है कि अमेरिका में दो करोड़ से अधिक लोगों को मानसिक चिकित्सा की आवश्यकता है।''

उपरोक्त परिणामों को देखते हुए अमेरिका के एक महान लेखक, सम्पादक और शिक्षा विशारद श्री मार्टिन ग्रोस अपनी

पुस्तक 'The Psychological Society' में लिखते हैं : ''हम जितना समझते हैं, उससे कहीं ज्यादा फ्रायड के मानसिक रोगों ने हमारे मानस और समाज में गहरा प्रवेश पा लिया है। यदि हम इतना जान लें कि उसकी बातें प्रायः उसके विकृत मानस का ही प्रतिबिम्ब है और उसकी मानसिक विकृतियोंवाले व्यक्तित्व को पहचान लें तो उसके विकृत प्रभाव से बचने में सहायता मिल सकती है। अब हमें डॉ. फ्रायड की छाया में बिल्कुल नहीं रहना चाहिए।''

आधुनिक मनोविज्ञान का मानसिक विश्लेषण, मनोरोग शास्त्र और मानसिक रोग की चिकित्सा... ये फ्रायड के रुग्ण मन के प्रतिबिम्ब हैं। फ्रायड स्वयं स्पास्टिक कोलोन, प्रायः सदा रहनेवाला मानसिक अवसाद, स्नायविक रोग, सजातीय सम्बन्ध, विकृत स्वभाव, माइग्रेन, कब्ज, प्रवास, मृत्यु और धननाश का भय, साइनोसाइटिस, घृणा और खूनी विचारों के दौरे आदि रोगों से पीड़ित था।

प्रोफेसर एडलर और प्रोफेसर सी. जी. जुंग जैसे मूर्धन्य मनोवैज्ञानिकों ने फ्रायड के सिद्धान्तों का खंडन कर दिया है, फिर भी यह खेद की बात है कि भारत में अभी भी कई मानसिक रोग विशेषज्ञ और सेक्सोलॉजिस्ट फ्रायड जैसे पागल व्यक्ति के सिद्धान्तों का आधार लेकर इस देश के युवक-युवतियों को अनैतिक और अप्राकृतिक मैथुन (Sex) का, संभोग का उपदेश वर्तमान पत्रों तथा सामयिकों के द्वारा देते रहते हैं। फ्रायड ने तो मृत्यु के पहले अपने पागलपन को स्वीकार किया था लेकिन उसके अनुयायी स्वयं स्वीकार न करें तो भी अनुयायी तो पागल के ही माने जायेंगे। अब वे इस देश के लोगों को चरित्रभ्रष्ट करने का और गुमराह करने का पागलपन छोड़ दें, ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना है। यह **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक पाँच बार पढ़ें और पढ़ायें... इसीमें सभीका कल्याण निहित है।

'नेशनल क्राइम विक्टिमाइजेशन सर्वे' (NCVS) के अनुसार अमेरिका में सन् २००२ में कुल १६ लाख ८६ हजार ६०० बड़े गुनाह हुए। जिनमें से १० लाख ३६ हजार ४०० गुनाह दर्ज किये गये। २८ हजार ७९७ खून, २ लाख १ हजार ५८१ बलात्कार, ६ लाख ३३ हजार ५४३ लूटपाट, १२ लाख ३८ हजार २८८ गंभीर मारकाट और ४४ लाख ६३ हजार ५९६ साधारण मारकाट के गुनाह हुए। इस प्रकार कुल ६५ लाख ६५ हजार ८०५ हिंसक अपराध हुए।

वर्ष २००२ में अमेरिका में १२ से १७ वर्ष की उम्र के लड़कों ने २ लाख ७८ हजार अपराध किये। १८ वर्ष से बड़ी उम्र के लड़कों ने १ लाख ८१ हजार अपराध किये। अज्ञात उम्र के लड़कों ने १ लाख ९३ हजार अपराध किये।

सन् २००२ में अमेरिका का राष्ट्रीय स्वास्थ्य व्यय १५४८ अरब डॉलर अर्थात् करीब ६९ हजार ६६० अरब रुपये था। सन् २००१ में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार अमेरिका में ५१% शादियाँ तलाक में बदल जाती हैं।

प्रकृति द्वारा मनुष्य के लिए निर्धारित किये गये संयम का उपहास करने के कारण प्रकृति ने उन लोगों को जातीय रोगों का शिकार बना रखा है। उनमें मुख्यतः एड्स (AIDS) की बीमारी दिन दूनी-रात चौगुनी फैलती जा रही है। वहाँ के पारिवारिक वसामाजिक जीवन में क्रोध, कलह, असंतोष, संताप, अशांति, उच्छृंखलता, उद्दंडता और शत्रुता का महा भयानक वातावरण छा गया है।

विश्व की लगभग ४.६% जनसंख्या अमेरिका में है। उसके उपभोग के लिए विश्व की लगभग ४०% साधन-सामग्री (जैसे कि कार, टी.वी., वातानुकूलित मकान आदि) मौजूद है, फिर भी वहाँ अपराधवृत्ति इतनी बढ़ी है।

कामुकता के समर्थक फ्रायड जैसे दार्शनिकों की ही यह देन है कि जिन्होंने पाश्चात्य देशों को मनोविज्ञान के नाम पर बहुत प्रभावित

किया है और वहीं से यह आँधी अब इस देश में भी फैलती जा रही है। अत: इस देश की भी अमेरिका जैसी अवदशा हो, उसके पहले हमें सावधान रहना पड़ेगा। यहाँ के कुछ अविचारी दार्शनिक भी फ्रायड के मनोविज्ञान के आधार पर युवक-युवतियों को बेलगाम संभोग की तरफ उत्साहित कर रहे हैं, जिससे हमारी युवा पीढ़ी गुमराह हो रही है। फ्रायड ने तो केवल मनोवैज्ञानिक मान्यताओं के आधार पर व्यभिचारशास्त्र बनाया लेकिन तथाकथित दार्शनिक ने तो **'संभोग से समाधि'** की परिकल्पना द्वारा व्यभिचार को आध्यात्मिक जामा पहनाकर धार्मिक लोगों को भी भ्रष्ट किया है। **संभोग से समाधि नहीं होती, सत्यानाश होता है।** 'संयम से ही समाधि होती है...' इस भारतीय मनोविज्ञान को अब पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भी सत्य मानने लगे हैं।

जब पश्चिमी देशों में ज्ञान-विज्ञान का विकास प्रारम्भ भी नहीं हुआ था और मानव ने संस्कृति के क्षेत्र में प्रवेश भी नहीं किया था, उस समय भारतवर्ष के दार्शनिक और योगी मानव मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं और समस्याओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहे थे। फिर भी पाश्चात्य विज्ञान की छत्रछाया में पले हुए और उसके प्रकाश से चकाचौंध वर्तमान भारत के मनोवैज्ञानिक भारतीय मनोविज्ञान का अस्तित्व तक मानने को तैयार नहीं हैं। यह खेद की बात है। भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने चेतना के चार स्तरों माने हैं : जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक प्रथम तीन स्तरों को ही जानते हैं। पाश्चात्य मनोविज्ञान नास्तिक है। भारतीय मनोविज्ञान ही आत्मविकास और चरित्र-निर्माण में सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है क्योंकि यह आत्मा-परमात्मा से अत्यधिक प्रभावित है। भारतीय मनोविज्ञान आत्मज्ञान और आत्म-सुधार में सबसे अधिक सहायक सिद्ध होता है। इसमें बुरी आदतों को छोड़ने और अच्छी आदतों को अपनाने तथा मन की प्रक्रियाओं

को समझने एवं उन पर नियंत्रण करने के महत्त्वपूर्ण उपाय बताये गये हैं। इसकी सहायता से मनुष्य सुखी, स्वस्थ और सम्मानित जीवन जी सकता है।

पश्चिम की मनोवैज्ञानिक मान्यताओं के आधार पर विश्वशांति का भवन खड़ा करना बालू की नींव पर भवन-निर्माण करने के समान है। पाश्चात्य मनोविज्ञान का परिणाम पिछले दो विश्वयुद्धों के रूप में दिख चुका है। यह दोष आज पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों की समझ में आ रहा है। जबकि भारतीय मनोविज्ञान मनुष्य का दैवी रूपान्तरण करके उसे आगे बढ़ाना चाहता है। उसके 'अनेकता में एकता' के सिद्धान्त के आधार पर ही संसार के विभिन्न राष्ट्रों, सामाजिक वर्गों, धर्मों और प्रजातियों में सहिष्णुता ही नहीं, सक्रिय सहयोग उत्पन्न किया जा सकता है। भारतीय मनोविज्ञान में शरीर और मन पर भोजन का क्या प्रभाव पड़ता है, इस विषय से लेकर शरीर में विभिन्न चक्रों की स्थिति, कुण्डलिनी की स्थिति, वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रक्रिया आदि विषयों पर विस्तारपूर्वक व्याख्या की गयी है। पाश्चात्य मनोविज्ञान मानव-व्यवहार का विज्ञान है। भारतीय मनोविज्ञान मानस विज्ञान के साथ-साथ आत्मविज्ञान है। भारतीय मनोविज्ञान इन्द्रिय-नियंत्रण पर विशेष बल देता है जबकि पाश्चात्य मनोविज्ञान केवल मानसिक क्रियाओं या मस्तिष्क-संगठन पर बल देता है। उसमें मन द्वारा मानसिक जगत का ही अध्ययन किया जाता है। उसमें भी फ्रायड का मनोविज्ञान तो एक रुग्ण मन के द्वारा अन्य रुग्ण मनों का ही अध्ययन है, जबकि भारतीय मनोविज्ञान में इन्द्रिय-निरोध से मनोनिरोध और मनोनिरोध से आत्मसिद्धि का ही लक्ष्य मानकर अध्ययन किया जाता है। पाश्चात्य मनोविज्ञान में मानसिक तनावों से मुक्ति का कोई समुचित साधन परिलक्षित नहीं होता, जो उसके व्यक्तित्व में निहित निषेधात्मक परिवेशों के लिए स्थायी निदान प्रस्तुत क

सके। इसलिए फ्रायड के लाखों बुद्धिमान अनुयायी भी पागल हो गये। संभोग के मार्ग पर चलकर कोई भी व्यक्ति योगसिद्ध महापुरुष नहीं हुआ। उस मार्ग पर चलनेवाले खिन्नमना, निस्तेज और पागल हुए हैं। ऐसे कई नमूने हमने देखे हैं। इसके विपरीत भारतीय मनोविज्ञान में मानसिक तनावों से मुक्ति के विभिन्न उपाय बतलाये गये हैं। यथा - योगमार्ग, साधन-चतुष्टय, शुभ संस्कार, सत्संगति, अभ्यास, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति, निष्काम कर्म आदि। इन साधनों के नियमित अभ्यास से संगठित एवं समायोजित व्यक्तित्व का निर्माण संभव है। इसलिए भारतीय मनोविज्ञान के अनुयायी पाणिनि और महाकवि कालिदास जैसे प्रारम्भ में अल्पबुद्धि होने पर भी महान विद्वान हो गये। भारतीय मनोविज्ञान ने इस विश्व को हजारों महान भक्त, समर्थ योगी तथा ब्रह्मज्ञानी महापुरुष दिये हैं।

अतः पाश्चात्य मनोविज्ञान को छोड़कर भारतीय मनोविज्ञान का आश्रय लेने में ही व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण निहित है।

भारतीय मनोवैज्ञानिक पतंजलि के सिद्धांतों पर चलनेवाले हजारों योगसिद्ध महापुरुष इस देश में हुए हैं, अभी भी हैं और आगे भी होते रहेंगे जबकि संभोग के मार्ग पर चलकर कोई योगसिद्ध महापुरुष हुआ हो ऐसा हमने तो नहीं सुना बल्कि दुर्बल हुए, रोगी हुए, एड्स के शिकार हुए, अकाल मृत्यु के शिकार हुए, खिन्न मानस हुए, अशांत हुए। उस मार्ग पर चलनेवाले पागल हुए हैं, ऐसे कई नमूने हमने देखे हैं।

फ्रायड ने अपनी मनःस्थिति की तराजू पर सारी दुनिया के लोगों को तौलने की गलती की है। उसका अपना जीवन-क्रम कुछ बेतुके ढंग से विकसित हुआ है। उसकी माता अमेलिया बड़ी खूबसूरत थी। उसने योकोव नामक एक अन्य पुरुष के साथ अपना दूसरा विवाह किया था। जब फ्रायड जन्मा तब वह २१

वर्ष की थी। बच्चे को वह बहुत प्यार करती थी।

ये घटनाएँ फ्रायड ने स्वयं लिखी हैं। इन घटनाओं के आधार पर फ्रायड कहता है :

''पुरुष बचपन से ही ईडिपस कॉम्प्लेक्स (Oedipus Complex) अर्थात् अवचेतन मन में अपनी माँ के प्रति यौन-आकांक्षा से आकर्षित होता है तथा अपने पिता के प्रति यौन-ईर्ष्या से ग्रसित रहता है। ऐसे ही लड़की अपने बाप के प्रति आकर्षित होती है तथा अपनी माँ से ईर्ष्या करती है। इसे इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स (Electra Complex) कहते हैं। तीन वर्ष की आयु से ही बच्चा अपनी माँ के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करने के लिए लालायित रहता है। एकाध साल के बाद जब उसे पता चलता है कि उसकी माँ के साथ तो बाप का वैसा सम्बन्ध पहले से ही है तो उसके मन में बाप के प्रति ईर्ष्या और घृणा जाग पड़ती है। यह विद्वेष उसके अवचेतन मन में आजीवन बना रहता है। इसी प्रकार लड़की अपने बाप के प्रति सोचती है और माँ से ईर्ष्या करती है।''

फ्रायड आगे कहता है : ''इस मानसिक अवरोध के कारण मनुष्य का विकास रुक जाता है। ईडिपस कॉम्प्लेक्स उसके सामने तरह-तरह के अवरोध खड़े करता है। यह स्थिति कोई अपवाद नहीं है वरन् साधारणतया यही होता है।''

यह कितना घृणित और हास्यास्पद प्रतिपादन है! छोटा बच्चा यौनाकांक्षा से पीड़ित होगा, सो भी अपनी माँ के प्रति? पशु-पक्षियों के बच्चों के शरीर में भी वासना तब उठती है जब उनके शरीर प्रजनन के योग्य सुदृढ़ हो जाते हैं तो मनुष्य के बालक में यह वृत्ति इतनी छोटी आयु में ही कैसे पैदा हो सकती है? ...और माँ के साथ वैसी तृप्ति करने की उसकी शारीरिक-मानसिक स्थिति भी नहीं होती। फिर तीन वर्ष के बालक को काम-क्रिया और उसमें माँ-बाप के रत रहने की जानकारी उसे कहाँ से हो जाती है? फिर वह

यह कैसे समझ लेता है कि उसे बाप से ईर्ष्या करनी चाहिए ?

बच्चे द्वारा माँ का दूध पीने की क्रिया को ऐसे मनोवैज्ञानिकों ने रतिसुख के समकक्ष बतलाया है। यदि इस स्तनपान को रतिसुख माना जाय तब तो आयु बढ़ने के साथ-साथ यह उत्कंठा भी प्रबलतर होती जानी चाहिए और वयस्क होने तक बालक को माता का दूध ही पीते रहना चाहिए। किंतु यह किस प्रकार संभव है ?

...तो ये ऐसे बेतुके प्रतिपादन हैं जिनकी भर्त्सना ही की जानी चाहिए। फ्रायड ने अपनी मानसिक विकृतियों को जनसाधारण पर थोपकर मनोविज्ञान को विकृत बना दिया।

जो लोग मानव-समाज को पशुता में गिरने से बचाना चाहते हैं, भावी पीढ़ी का जीवन पिशाच होने से बचाना चाहते हैं, युवानों का शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता और बौद्धिक सामर्थ्य बनाये रखना चाहते हैं, इस देश के नागरिकों को एड्स (AIDS) जैसी घातक बीमारियों से ग्रस्त होने से रोकना चाहते हैं, स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते हैं उन सबका यह नैतिक कर्तव्य है कि वे हमारी गुमराह युवा पीढ़ी को **'यौवन सुरक्षा'** जैसी पुस्तकें पढ़ायें।

यदि कामविकार उठा और हमने 'यह ठीक नहीं है... इससे मेरे बल-बुद्धि और तेज का नाश होगा...' ऐसा समझकर उसको टाला नहीं और उसकी पूर्ति करने में लम्पट होकर लग गये, तो हममें और पशुओं में अंतर ही क्या रहा ? पशु तो किसी विशेष ऋतु में ही मैथुन करते हैं, बाकी ऋतुओं में नहीं। इस दृष्टि से उनका जीवन सहज व प्राकृतिक ढंग का होता है। परंतु मनुष्य... !

मनुष्य तो बारहों महीनों काम-क्रिया की छूट लेकर बैठा है और ऊपर से यह भी कहता है कि यदि काम-वासना की पूर्ति करके सुख नहीं लिया तो फिर ईश्वर ने मनुष्य में जो इसकी रचना की है, उसका क्या मतलब ? ...आप अपने को विवेकपूर्वक रोक नहीं पाते हो, छोटे-छोटे सुखों में उलझ जाते हो - इसका तो कभी

ख्याल ही नहीं करते और ऊपर से भगवान तक को अपने पापकर्मों में भागीदार बनाना चाहते हो ?

## आत्मघाती तर्क

कुछ समय पूर्व मेरे पास एक पत्र आया। उसमें एक व्यक्ति ने पूछा था : ''आपने सत्संग में कहा है और एक पुस्तिका में भी प्रकाशित हुआ है कि 'बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि मत पियो। ऐसे व्यसनों से बचो क्योंकि ये तुम्हारे बल और तेज का हरण करते हैं...' यदि ऐसा ही है तो भगवान ने तम्बाकू आदि पैदा ही क्यों किये ?''

अब उन सज्जन से ये व्यसन तो छोड़े नहीं जाते और लगे हैं भगवान के पीछे। भगवान ने गुलाब के साथ काँटें भी पैदा किये हैं। आप फूल छोड़कर काँटें तो नहीं सूँघते ! भगवान ने आग भी पैदा की है। आप उससे भोजन पकाते हो, अपना घर तो नहीं जलाते ! भगवान ने आक (मदार), धतूरा, बबूल आदि भी बनाये हैं, मगर उनकी तो आप सब्जी नहीं बनाते ! भगवान ने तो विष भी पैदा किया है। उसका उपयोग औषधि बनाने में करना है कि खाकर मरना है ? इन सबमें तो आप अपनी बुद्धि का उपयोग करके व्यवहार करते हो और जब आपका मन आपके कहने में नहीं होता तो आप लगते हो भगवान को दोष देने ! यह बुद्धि का सदुपयोग नहीं है। शराब-तम्बाकू आदि दुर्व्यसनों व कामविकार से बुद्धि और भी कमजोर हो जायेगी। व्यसनी और विकारी मन कपोलकल्पित तर्क का सहारा लेकर अपने को ले डूबता है ? ॐ... ॐ... प्रभु सद्बुद्धि दे, ॐ... ॐ... प्रभु सद्गुण दृढ़ करे।

शरीर के बल-बुद्धि की सुरक्षा के लिए वीर्यरक्षण बहुत आवश्यक है। योगदर्शन के 'साधनपाद' में ब्रह्मचर्य की महत्ता इन शब्दों में बतायी गयी है :

**ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥३८॥**

ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर सामर्थ्य का लाभ होता है।

## स्त्री-प्रसंग कितनी बार ?

यदि कोई जानबूझकर अपने सामर्थ्य को खोकर श्रीहीन बनना चाहता हो तो वह यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात के इन प्रसिद्ध वचनों को सदैव याद रखे। सुकरात से एक व्यक्ति ने पूछा :

''पुरुष के लिए कितनी बार स्त्री-प्रसंग करना उचित है ?''

''जीवन भर में केवल एक बार।''

''यदि इससे तृप्ति न हो सके तो ?''

''तो वर्ष में एक बार।''

''यदि इससे भी संतोष न हो तो ?''

''फिर महीने में एक बार।''

''इससे भी मन न भरे तो ?''

''तो महीने में दो बार करें, परंतु मृत्यु शीघ्र आ जायेगी।''

''इतने पर भी इच्छा बनी रहे तो क्या करें ?''

इस पर सुकरात ने कहा : ''तो ऐसा करें कि पहले कब्र खुदवा लें अथवा कफन और लकड़ी घर में लाकर तैयार रखें। उसके पश्चात् जो इच्छा हो, सो करें।''

सुकरात के ये वचन सचमुच बड़े प्रेरणाप्रद हैं। वीर्यक्षय के द्वारा जिस-जिसने भी सुख लेने का प्रयास किया है, उन्हें घोर निराशा हाथ लगी है और अंत में श्रीहीन होकर मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा है। कामभोग द्वारा कभी तृप्ति नहीं होती और अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ चला जाता है। राजा ययाति की कथा तो आपने सुनी होगी।

## राजा ययाति का अनुभव

शुक्राचार्य के शाप से राजा ययाति युवावस्था में ही वृद्ध हो गये थे। परंतु बाद में ययाति के प्रार्थना करने पर शुक्राचार्य ने दयावश उनको यह शक्ति दे दी कि वे चाहें तो अपने पुत्रों से युवावस्था

लेकर अपना वार्धक्य उन्हें दे सकते थे। तब ययाति ने अपने पुत्र यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु से उनकी जवानी माँगी, मगर वे राजी न हुए। अंत में छोटे पुत्र पुरु ने अपने पिता को अपना यौवन देकर उनका बुढ़ापा ले लिया।

पुनः युवा होकर ययाति ने फिर से भोग भोगने शुरू किये। एक हजार वर्ष तक भोग भोगने के बाद भी भोगों से जब वे संतुष्ट नहीं हुए तो उन्होंने अपना बचा हुआ यौवन अपने पुत्र पुरु को लौटाते हुए कहा :

''पुत्र ! मैंने तुम्हारी जवानी लेकर अपनी रुचि, उत्साह और समय के अनुसार विषयों का सेवन किया।

**न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।**
**हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥**
**यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।**
**एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात् तृष्णां परित्यजेत् ॥**
**या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।**
**योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥**

लेकिन विषयों की कामना उनके उपभोग से कभी शांत नहीं होती, अपितु घी की आहुति पड़ने पर अग्नि की भाँति वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है।

इस पृथ्वी पर जितने भी धान, जौ, स्वर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्य के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं। अतः तृष्णा का त्याग कर देना चाहिए।

खोटी बुद्धिवाले लोगों के लिए जिसका त्याग करना अत्यंत कठिन है, जो मनुष्य के बूढ़े होने पर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती तथा जो एक प्राणान्तक रोग है उस तृष्णा को त्याग देनेवाले पुरुष को ही सुख मिलता है।'' **(महाभारत – आदिपर्वणि संभवपर्व : ८५.१२–१४)**

ययाति का अनुभव वस्तुतः बड़ा मार्मिक और मनुष्य-जाति

के लिए हितकारी है। वे आगे कहते हैं :

**पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयासक्तचेतसः ।**
**तथाप्यनुदिनं तृष्णा ममैतेष्वभिजायते ॥**
**तस्मादेनामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ।**
**निर्द्वन्द्वो निर्ममो भूत्वा चरिष्यामि मृगैः सह ॥**

''पुत्र ! देखो, विषयभोग में आसक्तचित्त हुए मेरे एक हजार वर्ष बीत गये तो भी प्रतिदिन उन विषयों के लिए ही तृष्णा पैदा होती है।

अतः मैं इस तृष्णा को छोड़कर परब्रह्म परमात्मा में मन लगा द्वन्द्व और ममता से रहित हो वन में मृगों केसाथ विचरूँगा।

**(महाभारत - आदिपर्वणि संभवपर्व : ८५.१५,१६)**

हे पुत्र ! तुम्हारा भला हो। तुम पर मैं प्रसन्न हूँ। अब तुम अपनी जवानी पुनः प्राप्त करो और मैं यह राज्य भी तुम्हें ही अर्पण करता हूँ।''

इस प्रकार अपने पुत्र पुरु को राज्य देकर राजा ययाति ने तपस्या हेतु वनगमन किया। उसी राजा पुरु से पौरव वंश चला। उसी वंश में परीक्षित का पुत्र राजा जन्मेजय पैदा हुआ था।

## *राजा मुचकन्द का प्रसंग*

राजा मुचकन्द ने गर्गाचार्य के दर्शन-सत्संग के फलस्वरूप भगवान के दर्शन पाये। भगवान की स्तुति करके उन्होंने कहा : ''प्रभो ! मुझे आपकी दृढ़ भक्ति दो।''

तब भगवान बोले : ''तूने जवानी में खूब भोग भोगे हैं, विकारों में खूब डूबा है। विकारी जीवन जीनेवाले को दृढ़ भक्ति नहीं मिलती। मुचकन्द ! दृढ़ भक्ति के लिए जीवन में संयम बहुत जरूरी है। तेरा यह क्षत्रिय शरीर समाप्त होगा तब दूसरे जन्म में तुझे दृढ़ भक्ति प्राप्त होगी।''

वही राजा मुचकन्द दूसरे जन्म में नरसिंह मेहता हुए।

जो लोग अपने जीवन में वीर्यरक्षा को महत्त्व नहीं देते, वे जरा सोचें कि कहीं वे भी राजा ययाति का तो अनुसरण नहीं कर रहे हैं ! क्या वे भी अपने जीवन को ययाति की तरह नष्ट तो नहीं कर रहे हैं ! यदि कर रहे हों तो जैसे ययाति सावधान हो गये, वैसे आप भी सावधान हो जाओ भैया ! हिम्मत करो। सयाने हो जाओ। दया करो। हम पर दया न करो तो अपने-आप पर तो दया करो भैया ! हिम्मत करो भैया ! सयाने हो जाओ मेरे प्यारे ! जो हो गया उसकी चिन्ता न करो। आज से नवजीवन का प्रारंभ करो। ब्रह्मचर्य-रक्षा के आसन, प्राकृतिक औषधियाँ इत्यादि जानकर, अपनाकर वीर बनो। ॐ... ॐ...ॐ...

## *गलत अभ्यास का दुष्परिणाम*

आज समाज में कितने ही ऐसे अभागे लोग हैं, जो श्रृंगार रस की पुस्तकें पढ़कर, सिनेमाओं के कुप्रभाव के शिकार होकर स्वप्नावस्था या जाग्रतावस्था में अथवा तो हस्तमैथुन द्वारा माह में अनेक बार वीर्यनाश करते हैं। शरीर और मन को ऐसी आदत डालने से वीर्याशय बार-बार खाली होता रहता है। उस वीर्याशय को भरने में ही शारीरिक शक्ति का अधिकतर भाग व्यय होने लगता है, जिससे शरीर को कांतिमान बनानेवाला ओज संचित ही नहीं हो पाता और व्यक्ति शक्तिहीन, ओजहीन, उत्साहशून्य बन जाता है। ऐसे व्यक्ति का वीर्य पतला होता जाता है। यदि वह समय पर अपने को सँभाल नहीं सके तो शीघ्र ही वह स्थिति आती है कि उसके अण्डकोष वीर्य बनाने में असमर्थ हो जाते हैं। फिर भी यदि थोड़ा-बहुत वीर्य बनता है तो वह पानी जैसा ही बनता है जिसमें सन्तानोत्पत्ति की ताकत नहीं होती। उसका जीवन जीवन नहीं रहता। ऐसे व्यक्ति की हालत मृतक पुरुष जैसी हो जाती है। कई प्रकार के रोग उसे घेर लेते हैं। कोई दवा उस पर असर नहीं करती। वह व्यक्ति जीते-जी नरक का दुःख भोगता रहता है। शास्त्रकारों

ने लिखा है :

**आयुस्तेजो बलं वीर्यं प्रज्ञा श्रीश्च महद्यशः ।**
**पुण्यं च प्रीतिमत्वं च हन्यतेऽब्रह्मचर्यया ।।**

'आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, लक्ष्मी, कीर्ति, यश तथा पुण्य और प्रीति - ये सब ब्रह्मचर्य का पालन न करने से नष्ट हो जाते हैं ।'

## *वीर्यरक्षण सदैव स्तुत्य*

इसीलिए वीर्यरक्षा स्तुत्य है। 'अथर्ववेद (१६.१.१,४)' में कहा गया है :

**अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ।।**
**इदं तमति सृजामि तं माऽभ्यवनिक्षि ।।**

'शरीर में व्याप्त वीर्यरूपी जल को बाहर ले जानेवाले, शरीर से अलग कर देनेवाले काम को मैंने परे हटा दिया है । अब मैं इस काम को अपने से सर्वथा दूर फेंकता हूँ। मैं इस आरोग्यता, बल-बुद्धिनाशक काम का कभी शिकार नहीं होऊँगा ।'

...और इस प्रकार के संकल्प से अपने जीवन का निर्माण न करके जो व्यक्ति वीर्यनाश करता रहता है, उसकी क्या गति होती है, इसका भी वेदों में उल्लेख आता है :

**रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ।।**
**म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ।।**

'यह काम रोगी बनानेवाला है, बहुत बुरी तरह रोगी करनेवाला है । मृणन् यानी मार देनेवाला है । परिमृणन् यानी बहुत बुरी तरह मारनेवाला है । यह टेढ़ी चाल चलाता है, मानसिक शक्तियों को नष्ट कर देता है । शरीर में से स्वास्थ्य, बल, आरोग्यता आदि को खोद-खोदकर बाहर फेंक देता है । शरीर की सब धातुओं को जला देता है । जीवात्मा को मलिन कर देता है । शरीर के वात, पित्त, कफ को दूषित करके उसे तेजोहीन बना देता है ।' **अथर्ववेद (१६.१.२,३)**

ब्रह्मचर्य के बल से ही अंगारपर्ण जैसे बलशाली गंधर्वराज को

अर्जुन ने पराजित कर दिया था।

## अर्जुन और अंगारपर्ण गंधर्व

अर्जुन अपने भाइयों सहित द्रौपदी के स्वयंवर-स्थल पांचाल देश की ओर जा रहा था, तब बीच में गंगातट पर बसे सोमाश्रयाण तीर्थ में गंधर्वराज अंगारपर्ण (चित्ररथ) ने उसका रास्ता रोक दिया। वह गंगा में अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। उसने पाँचों पांडवों को कहा : ''मेरे यहाँ रहते हुए राक्षस, यक्ष, देवता अथवा मनुष्य कोई भी इस मार्ग से नहीं जा सकता। तुम लोग जान की खैर चाहते हो तो लौट जाओ।''

तब अर्जुन कहता है : ''मैं जानता हूँ कि सम्पूर्ण गंधर्व मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली होते हैं, फिर भी मेरे आगे तुम्हारी दाल नहीं गलेगी। तुम्हें जो करना हो सो करो, हम तो इधर से ही जायेंगे।''

अर्जुन के इस प्रतिवाद से गंधर्व बड़ा क्रोधित हुआ और उसने पांडवों पर तीक्ष्ण बाण छोड़े। अर्जुन ने अपने हाथ में जो जलती हुई मशाल पकड़ी थी, उसीसे उसके सभी बाणों को निष्फल कर दिया। फिर गंधर्व पर आग्नेय अस्त्र चला दिया। अस्त्र के तेज से गंधर्व का रथ जलकर भस्म हो गया और वह स्वयं घायल एवं अचेत होकर मुँह के बल गिर पड़ा। यह देखकर उस गंधर्व की पत्नी कुम्मीनसी बहुत घबराई और अपने पति की रक्षार्थ युधिष्ठिर से प्रार्थना करने लगी। तब युधिष्ठिर ने अर्जुन से उस गंधर्व को अभयदान दिलवाया।

जब वह अंगारपर्ण होश में आया तब बोला : ''अर्जुन ! मैं परास्त हो गया, इसलिए अपने पूर्व नाम अंगारपर्ण को छोड़ देता हूँ। मैं अपने विचित्र रथ के कारण चित्ररथ कहलाता था। वह रथ भी आपने अपने पराक्रम से दग्ध कर दिया है। अतः अब मैं दग्धरथ कहलाऊँगा।

मेरे पास चाक्षुषी नामक विद्या है जिसे मनु ने सोम को, सोम ने

विश्वावसु को और विश्वावसु ने मुझे प्रदान की है। यह गुरु की विद्या यदि किसी कायर को मिल जाय तो नष्ट हो जाती है। जो छः महीने तक एक पैर पर खड़ा रहकर तपस्या करे, वही इस विद्या को पा सकता है। परंतु अर्जुन! मैं आपको ऐसी तपस्या के बिना ही यह विद्या प्रदान करता हूँ।

इस विद्या की विशेषता यह है कि तीनों लोकों में कहीं भी स्थित किसी वस्तु को आँख से देखने की इच्छा हो तो उसे उसी रूप में इस विद्या के प्रभाव से कोई भी व्यक्ति देख सकता है। अर्जुन! इस विद्या के बल से हम लोग मनुष्यों से श्रेष्ठ माने जाते हैं और देवताओं के तुल्य प्रभाव दिखा सकते हैं।''

इस प्रकार अंगारपर्ण गंधर्व ने अर्जुन को चाक्षुषी विद्या, दिव्य घोड़े एवं अन्य वस्तुएँ भेंट कीं।

अर्जुन ने गंधर्व से पूछा : ''गंधर्व ! तुमने हम पर एकाएक आक्रमण क्यों किया और फिर हार क्यों गये ?''

तब गंधर्व ने बड़ा मर्मभरा उत्तर दिया। उसने कहा : ''शत्रुओं को संताप देनेवाले वीर! यदि कोई कामासक्त क्षत्रिय रात में मुझसे युद्ध करने आता तो किसी भी प्रकार जीवित नहीं बच सकता था क्योंकि रात में तो हम लोगों का बल और भी बढ़ जाता है।

अपने बाहुबल का भरोसा रखनेवाला कोई भी पुरुष जब अपनी स्त्री के सम्मुख किसीके द्वारा अपना तिरस्कार होते देखता है तो सहन नहीं कर पाता। मैं जब अपनी स्त्री के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था, तभी आपने मुझे ललकारा, इसीलिए मैं क्रोधाविष्ट हुआ और आप पर बाणवर्षा की। लेकिन यदि आप यह पूछो कि मैं आपसे पराजित क्यों हुआ तो उसका उत्तर है :

**ब्रह्मचर्यं परो धर्मः स चापि नियतस्त्वयि।**
**यस्मात् तस्मादहं पार्थ रणेऽस्मि विजितस्त्वया॥**

'ब्रह्मचर्य सबसे बड़ा धर्म है और वह आपमें निश्चित रूप से

विद्यमान है। हे कुन्तीनंदन! इसीलिए युद्ध में मैं आपसे हार गया हूँ।'

**(महाभारत - आदिपर्वणि चैत्ररथ पर्व : १६९.७१)**

हम समझ गये कि वीर्यरक्षण अति आवश्यक है। अब वह कैसे हो इसकी चर्चा करने से पूर्व एक बार ब्रह्मचर्य का तात्त्विक अर्थ ठीक से समझ लें।

## *ब्रह्मचर्य का तात्त्विक अर्थ*

'ब्रह्मचर्य' शब्द बड़ा चित्ताकर्षक और पवित्र शब्द है। इसका स्थूल अर्थ तो यही प्रसिद्ध है कि जिसने शादी नहीं की है, जो काम-भोग नहीं करता है, जो स्त्रियों से दूर रहता है आदि-आदि। परंतु यह बहुत सीमित अर्थ है। इस अर्थ में केवल वीर्यरक्षण ही ब्रह्मचर्य है। परंतु ध्यान रहे, केवल वीर्यरक्षण मात्र साधना है, मंजिल नहीं। मनुष्य जीवन का लक्ष्य है अपने-आपको जानना अर्थात् आत्मसाक्षात्कार करना। जिसने आत्मसाक्षात्कार कर लिया, वह जीवन्मुक्त हो गया। वह आत्मा के आनंद में, ब्रह्मानंद में विचरण करता है। उसे अब संसार से कुछ पाना शेष नहीं रहा। उसने आनंद का स्रोत अपने भीतर ही पा लिया। अब वह आनंद के लिए किसी भी बाहरी विषय पर निर्भर नहीं है। वह पूर्ण स्वतंत्र है। उसकी क्रियाएँ सहज होती हैं। संसार के विषय उसकी आनंदमय आत्मिक स्थिति को डोलायमान नहीं कर सकते। वह संसार के तुच्छ विषयों की पोल को समझकर अपने आनंद में मस्त हो इस भूतल पर विचरण करता है। वह चाहे लँगोटी में हो चाहे कीमती वेशभूषाओं में, घर में रहता हो चाहे झोंपड़े में, गृहस्थी चलाता हो चाहे एकांत जंगल में विचरता हो, ऐसा महापुरुष ऊपर से भले कंगाल नजर आता हो परंतु भीतर से शहंशाह होता है, क्योंकि उसकी सब वासनाएँ, सब कर्तव्य पूरे हो चुके होते हैं। सब व्यवहार करते हुए भी उसकी हर समय समाधि रहती है। उसकी समाधि सहज होती है, अखण्ड होती है। वह सदैव अपने ब्रह्मानंद में अवस्थित रहता है।

स्थूल अर्थ में ब्रह्मचर्य का अर्थ जो वीर्यरक्षण समझा जाता है, उस अर्थ में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ व्रत है, श्रेष्ठ तप है, श्रेष्ठ साधना है और इस साधना का फल है आत्मज्ञान, आत्मसाक्षात्कार। इस फलप्राप्ति के साथ ही ब्रह्मचर्य का पूर्ण अर्थ प्रकट हो जाता है।

जब तक किसी भी प्रकार की वासना शेष है, तब तक कोई पूर्ण ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं हो सकता। जब तक आत्मज्ञान नहीं होता तब तक पूर्ण रूप से वासना निवृत्त नहीं होती। इस वासना की निवृत्ति के लिए, अंतःकरण की शुद्धि के लिए, ईश्वर की प्राप्ति के लिए, सुखी जीवन जीने के लिए, अपने मनुष्य-जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए या कहो परमानंद की प्राप्ति के लिए... कुछ भी हो, वीर्यरक्षणरूपी साधना सदैव सब अवस्थाओं में उत्तम है, श्रेष्ठ है और आवश्यक है।

वीर्यरक्षण कैसे हो, इसके लिए यहाँ हम कुछ स्थूल और सूक्ष्म उपायों की चर्चा करेंगे।

卐

# वीर्यरक्षा के उपाय

## *सादा रहन-सहन बनायें*

काफी लोगों को यह भ्रम है कि जीवन तड़क-भड़कवाला बनाने से वे समाज में कुछ विशेष माने जाते हैं। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। इससे तो केवल अपने अहंकार का ही प्रदर्शन होता है। लाल रंग के भड़कीले एवं रेशमी कपड़े मत पहनो। तेल-फुलेल और भाँति-भाँति के इत्रों का प्रयोग करने से बचो। जीवन में जितनी तड़क-भड़क बढ़ेगी, इन्द्रियाँ उतनी चंचल हो उठेंगी, फिर वीर्यरक्षा तो दूर की बात है।

इतिहास पर भी हम दृष्टि डालें तो महापुरुष हमें ऐसे ही मिलेंगे, जिनका जीवन प्रारंभ से ही सादगीपूर्ण था। सादा रहन-सहन तो

बड़प्पन का द्योतक है। दूसरों को देखकर उनकी अप्राकृतिक व अधिक आवश्यकताओंवाली जीवन-शैली का अनुसरण न करो।

## उपयुक्त आहार

ईरान के बादशाह वहमन ने एक श्रेष्ठ वैद्य से पूछा :

''दिन में मनुष्य को कितना खाना चाहिए ?''

''सौ दिरम (अर्थात् ३९ तोला)।'' वैद्य बोला। (१ तोला = करीब ११.५ ग्राम)

''इतने से क्या होगा ?'' बादशाह ने फिर पूछा।

वैद्य ने कहा : ''शरीर के पोषण के लिए इससे अधिक नहीं चाहिए। इससे अधिक जो कुछ खाया जाता है, वह केवल बोझा ढोना है और आयुष्य खोना है।''

लोग स्वाद के लिए अपने पेट के साथ बहुत अन्याय करते हैं, ठूँस-ठूँसकर खाते हैं। यूरोप का एक बादशाह स्वादिष्ट पदार्थ खूब खाता था। बाद में औषधियों द्वारा उलटी करकेफिर से स्वाद लेने के लिए भोजन करता रहता था। वह जल्दी मर गया।

आप स्वादलोलुप नहीं बनो। जिह्वा को नियंत्रण में रखो। क्या खायें, कब खायें, कैसे खायें और कितना खायें इसका विवेक नहीं रखा तो पेट खराब होगा, शरीर को रोग घेर लेंगे, वीर्यनाश को प्रोत्साहन मिलेगा और अपने को पतन के रास्ते जाने से नहीं रोक सकोगे।

न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे की पत्नी ने आम काटकर उन्हें खाने के लिए दिये। तब मात्र दो फाँकें खाकर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा : ''दो फाँकें मैंने खा ली हैं, बाकी की बाँट दो।'' पत्नी ने कहा : ''इतने मीठे हाफूस एवं केसर आम हैं, सुगंधित भी हैं। आप क्यों नहीं खाते ? क्यों, आपको अच्छे नहीं लगे ?''

रानडे ने कहा : ''जो वस्तु ज्यादा प्रिय हो उसका ज्यादा उपयोग करूँगा तो स्वादलोलुपता बढ़ती जायेगी। आम तो मेरा

प्रिय पदार्थ है लेकिन इसकी प्रियता में मुझे फँसना नहीं है। मन-इन्द्रियों की गुलामी से जीव का पतन होता है। मुझे स्वादलोलुप नहीं होना है लेकिन संयम के लिए प्रिय वस्तु बँटवाना है, उपभोग की आदत को उपयोग में बदलना है।'' आसक्ति मिटाने का यह सुंदर तरीका है। प्रिय वस्तु खाकर खुश होने के बदले उसे खिलाकर खुश होना चाहिए। इस प्रकार वासना का गुलाम होने के बदले वासना की निवृत्ति में ध्यान देना चाहिए।

प्रेमपूर्वक, शांत मन से, पवित्र स्थान पर बैठकर भोजन करो। जिस समय नासिका का दाहिना स्वर (सूर्य नाड़ी) चालू हो उस समय किया हुआ भोजन शीघ्र पच जाता है, क्योंकि उस समय जठराग्नि बड़ी प्रबल होती है। भोजन के समय यदि दाहिना स्वर चालू नहीं हो तो उसको चालू कर दो। उसकी विधि यह हैः वाम कुक्षि में अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी रखकर कुक्षि को जोर से दबाओ या बायीं (वाम) करवट लेट जाओ। थोड़ी ही देर में दाहिना याने सूर्य स्वर चालू हो जायेगा।

रात्रि को बायीं करवट लेटकर सोना चाहिए। दिन को सोना उचित नहीं किंतु यदि लेटना आवश्यक हो तो दाहिनी करवट ही लेटना चाहिए।

एक बात का खूब ख्याल रखो। यदि पेय पदार्थ लेना हो तो जब चन्द्र (बायाँ) स्वर चालू हो तभी लो। यदि सूर्य (दाहिना) स्वर चालू हो और आपने दूध, काफी, चाय, पानी या कोई भी पेय पदार्थ लिया तो वीर्यनाश होकर रहेगा। खबरदार ! सूर्य स्वर चल रहा हो तब कोई भी पेय पदार्थ न पियो। उस समय यदि पेय पदार्थ पीना पड़े तो दाहिना नथुना बंद करके बायें नथुने से श्वास लेते हुए ही पियो।

भोजन हलका-सुपाच्य हो। बहुत गर्म-गर्म और देर से पचनेवाला गरिष्ठ भोजन रोग पैदा करता है। अधिक पकाया हुआ, तेल में तला हुआ, मिर्च-मसालेयुक्त, तीखा, खट्टा, चटपटा भोजन

वीर्यनाड़ियों को क्षुब्ध करता है। अधिक गर्म भोजन करने के तुरंत बाद ठंडा पेय पीने से या ठंडा पानी पीकर फिर गर्म चाय पीने से दाँत कमजोर होते हैं। जो खाली पेट चाय-कॉफी पीते हैं उनका वीर्य पतला हो जाता है और नष्ट होने लगता है।

भोजन खूब चबा-चबाकर करो। थके हुए हो तो तत्काल भोजन न करो। भोजन के तुरंत बाद परिश्रम न करो।

भोजन के पहले पानी न पिओ। भोजन के बीच में तथा भोजन के एकाध घंटे बाद पानी पीना हितकर होता है।

रात्रि को अल्पाहार ही करो। बहुत रात गये भोजन करना हितावह नहीं है। रात को देर से भोजन करने से मोटापा, आलस्य व थकान आती है और ऐसे व्यक्तियों को बुढ़ापा भी जल्दी आता है। जितना देर रात का समय, उतनी जठराग्नि मंद। कब्ज की शिकायत हो तो ५० ग्राम लाल फिटकरी तवे पर फुलायें, कूटें और कपड़े से छानकर बोतल में भर लें। रात्रि में १५ ग्राम सौंफ एक गिलास पानी में भिगो दें। सुबह उसे अच्छी तरह उबालकर छान लें और डेढ़ ग्राम फिटकरी का पाउडर मिलाकर पी लें। इससे कब्ज व बुखार भी दूर होता है। कब्ज तमाम बीमारियों की जड़ है। इसे दूर करना आवश्यक है।

भोजन में पालक, परवल, मेथी, बथुआ आदि हरी तरकारियाँ, दूध, घी, छाछ, मक्खन, पके हुए फल आदि विशेष रूप से लें। इससे जीवन में सात्त्विकता बढ़ेगी और काम, क्रोध, मोह आदि विकार घटेंगे। हर कार्य में प्रसन्नता और उत्साह बना रहेगा। भोजन में हरी मिर्च का उपयोग कम करें, काली मिर्च का उपयोग हितावह है।

रात्रि में सोने से पूर्व गर्म-गर्म दूध नहीं पीना चाहिए। इससे रात को स्वप्नदोष हो जाता है।

कभी भी मल-मूत्र की शिकायत हो तो उसे रोको नहीं। रोके हुए मल से भीतर की नाड़ियाँ क्षुब्ध होकर वीर्यनाश कराती हैं।

पेट में कब्ज होने से ही अधिकांशत: रात्रि को वीर्यपात हुआ करता है। पेट में रुका हुआ मल वीर्यनाड़ियों पर दबाव डालता है तथा कब्ज की गर्मी से ही नाड़ियाँ क्षुभित होकर वीर्य को बाहर धकेलती हैं। इसलिए पेट को साफ रखो। इसके लिए कभी-कभी त्रिफला चूर्ण, हरड़, संतकृपा चूर्ण, गोझरण वटी (ये सभी संत श्री आसारामजी आश्रमों एवं आश्रम की समितियों के स्टॉलों पर उपलब्ध हैं।) या इसबगोल इनमें से कोई एक पानी के साथ लिया करो। अधिक तिक्त, खट्टी, चरपरी और बाजारू औषधियाँ उत्तेजक होती हैं, उनसे बचो।

कभी-कभी उपवास करो। पेट को आराम देने के लिए कभी-कभी निराहार रह सकते हो तो अच्छा है।

**आहारं पचति शिखी दोषान् आहारवर्जित:।**

अर्थात् पेट की अग्नि आहार को पचाती है और उपवास दोषों को पचाता है।

उपवास से पाचनशक्ति बढ़ती है। उपवास अपनी शक्ति के अनुसार ही करो। ऐसा न हो कि एक दिन तो उपवास किया और दूसरे दिन मिष्ठान्न-लड्डू आदि पेट में ठूँस-ठूँसकर उपवास की सारी कसर निकाल दी। बहुत अधिक भूखा रहना भी ठीक नहीं, ऐसे ही अधिक खाना भी ठीक नहीं।

वैसे उपवास का सही अर्थ तो होता है परमात्मा के निकट रहना। **उप** यानी समीप और **वास** यानी रहना। निराहार रहने से भगवद्भजन और आत्मचिंतन में मदद मिलती है। वृत्ति अंतर्मुखी होने से कामविकार को पनपने का मौका ही नहीं मिल पाता।

मद्यपान, प्याज, लहसुन और मांसाहार - ये वीर्यक्षय में मदद करते हैं, अत: इनसे अवश्य बचो।

## शिश्नेन्द्रिय स्नान

शौच के समय एवं लघुशंका के समय साथ में गिलास अथवा

लोटे में ठंडा जल लेकर जाओ और उससे शिश्नेन्द्रिय को धोया करो। कभी-कभी उस पर ठंडे पानी की धार किया करो। इससे कामवृत्ति का शमन होता है और स्वप्नदोष नहीं होता।

## *उचित आसन एवं व्यायाम करो*

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास होता है। अंग्रेजी में कहते हैं : A healthy mind resides in a healthy body.

जिसका शरीर स्वस्थ नहीं रहता, उसका मन अधिक विकारग्रस्त होता है। इसलिए रोज प्रातः व्यायाम एवं आसन करने का नियम बना लो।

रोज प्रातःकाल ३-४ मिनट दौड़ने और तेजी से टहलने से भी शरीर को अच्छा व्यायाम मिल जाता है। सूर्यनमस्कार (१३ अथवा उससे अधिक) किया करो तो उत्तम है। इसमें आसन व व्यायाम दोनों का समावेश होता है। 'व्यायाम' का अर्थ पहलवानों की तरह मांसपेशियाँ बढ़ाना नहीं है। शरीर को योग्य कसरत मिल जाय ताकि उसमें रोग प्रवेश न करें और शरीर तथा मन स्वस्थ रहें - इतना ही उसमें हेतु है।

व्यायाम से भी अधिक उपयोगी आसन हैं। आसन शरीर के समुचित विकास एवं ब्रह्मचर्य-साधना के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं। इनसे नाड़ियाँ शुद्ध होकर सत्त्वगुण की वृद्धि होती है। वैसे तो शरीर के अलग-अलग अंगों की पुष्टि के लिए अलग-अलग आसन हैं, परंतु वीर्यरक्षा की दृष्टि से मयूरासन, पादपश्चिमोत्तानासन, सर्वांगासन थोड़ी-बहुत सावधानी रखकर हर कोई कर सकता है। इनमें से पादपश्चिमोत्तानासन तो बहुत ही उपयोगी है। आश्रम में आनेवाले कई साधकों का यह निजी अनुभव है।

किसी कुशल योग-प्रशिक्षक से ये आसन सीख लो और प्रातःकाल खाली पेट, शुद्ध हवा में किया करो। शौच, स्नान, व्यायाम

आदि के पश्चात् ही आसन करने चाहिए।

स्नान से पूर्व सूखे तौलिये अथवा हाथों से सारे शरीर को खूब रगड़ो। इस प्रकार के घर्षण से शरीर में एक प्रकार की विद्युत शक्ति पैदा होती है, जो शरीर के रोगों को नष्ट करती है। श्वास तीव्र गति से चलने पर शरीर में रक्त-संचरण ठीक प्रकार से होता है और अंग-प्रत्यंग के मल को निकालकर फेफड़ों में लाता है। फेफड़ों में प्रविष्ट शुद्ध वायु रक्त को साफ कर मल को अपने साथ बाहर निकाल ले जाती है। बचा-खुचा मल पसीने के रूप में त्वचा के छिद्रों द्वारा बाहर निकल आता है। इस प्रकार शरीर पर घर्षण करने के बाद स्नान करना अधिक उपयोगी है, क्योंकि पसीने द्वारा बाहर निकला हुआ मल उससे धुल जाता है, त्वचा के छिद्र खुल जाते हैं और बदन में स्फूर्ति का संचार होता है।

## *ब्राह्ममुहूर्त में उठो*

स्वप्नदोष अधिकांशत: रात्रि के अंतिम प्रहर में हुआ करता है। इसलिए प्रात: चार-साढ़े चार बजे यानी ब्राह्ममुहूर्त में ही शय्या का त्याग कर दो। जो लोग प्रात:काल देरी तक सोते रहते हैं, उनका जीवन निस्तेज हो जाता है।

## *दुर्व्यसनों से दूर रहो*

शराब एवं बीड़ी-सिगरेट-तम्बाकू का सेवन मनुष्य की कामवासना को उद्दीप्त करता है। कुरान शरीफ के अल्लाहपाक त्रिकोल रोशल के सिपारा में लिखा है कि 'शैतान का भड़काया हुआ मनुष्य ऐसी नशायुक्त चीजों का उपयोग करता है। ऐसे व्यक्ति से अल्लाह दूर रहता है, क्योंकि यह काम शैतान का है और शैतान उस आदमी को जहन्नुम में ले जाता है।'

नशीली वस्तुओं के सेवन से फेफड़े और हृदय कमजोर हो जाते हैं, सहनशक्ति घट जाती है और आयुष्य भी कम हो जाता

है । अमेरिकी डॉक्टरों ने खोज करके बतलाया है कि नशीली वस्तुओं के सेवन से कामभाव उत्तेजित होने पर वीर्य पतला और कमजोर पड़ जाता है ।

## सत्संग करो

आप सत्संग नहीं करोगे तो कुसंग अवश्य होगा । इसलिए मन, वचन, कर्म से सदैव सत्संग का ही सेवन करो । जब-जब चित्त में पतित विचार डेरा जमाने लगें, तब-तब तुरंत सचेत हो जाओ और वह स्थान छोड़कर पहुँच जाओ किसी सत्संग के वातावरण में, किसी सन्मित्र या सत्पुरुष के सान्निध्य में । वहाँ वे कामी विचार बिखर जायेंगे और आपका तन-मन पवित्र हो जायेगा । यदि ऐसा नहीं किया तो वे पतित विचार आपका पतन किये बिना नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि जो मन में होता है, देर-सवेर उसीके अनुसार बाहर की क्रिया होती है । फिर तुम पछताओगे कि हाय ! यह मुझसे क्या हो गया ?

पानी का स्वभाव है नीचे की ओर बहना । वैसे ही मन का स्वभाव है पतन की ओर सुगमता से बढ़ना । मन हमेशा धोखा देता है । वह विषयों की ओर खींचता है, कुसंगति में सार दिखाता है, लेकिन वह पतन का रास्ता है । कुसंगति में कितना ही आकर्षण हो, मगर...

**जिसके पीछे हों गम की कतारें, भूलकर उस खुशी से न खेलो ।**

अभी तक गत जीवन में आपका कितना भी पतन हो चुका हो, फिर भी सत्संगति करो । आपके उत्थान की अभी भी गुंजाइश है । बड़े-बड़े दुर्जन भी सत्संग से सज्जन बन गये हैं ।

**शठ सुधरहिं सत्संगति पाई ।**

सत्संग से वंचित रहना अपने पतन को आमंत्रित करना है । इसलिए अपने नेत्र, कर्ण, त्वचा आदि सभीको सत्संगरूपी गंगा में स्नान कराते रहो, जिससे कामविकार आप पर हावी न हो सके ।

## *शुभ संकल्प करो*

'हम ब्रह्मचर्य का पालन कैसे कर सकते हैं ? कभी-कभी बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी इस रास्ते पर से फिसल जाते हैं...' - इस प्रकार के हीन विचारों को तिलांजलि दे दो और अपने संकल्पबल को बढ़ाओ। शुभ संकल्प करो। जैसा आप सोचते हो, वैसे ही आप हो जाते हो। यह सारी सृष्टि ही संकल्पमय है।

दृढ़ संकल्प करने से वीर्यरक्षण में मदद मिलती है और वीर्यरक्षण से संकल्पबल बढ़ता है। **विश्वासो फलदायकः**। जैसा विश्वास और जैसी श्रद्धा होगी वैसा ही फल प्राप्त होगा। ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों में यह संकल्पबल असीम होता है। वस्तुतः ब्रह्मचर्य की तो वे जीती-जागती मूर्ति ही होते हैं।

## *त्रिबन्धयुक्त प्राणायाम और योगाभ्यास करो*

त्रिबन्ध करके प्राणायाम करने से विकारी जीवन सहज भाव से निर्विकारिता में प्रवेश करने लगता है। मूलबन्ध से विकारों पर विजय पाने का सामर्थ्य आता है। उड्डीयानबन्ध से आदमी उन्नति में विलक्षण उड़ान ले सकता है। जालन्धरबन्ध से बुद्धि विकसित होती है।

अगर कोई व्यक्ति अनुभवी महापुरुष के सान्निध्य में त्रिबन्ध के साथ प्रतिदिन १२ प्राणायाम करे तो प्रत्याहार सिद्ध होने लगेगा। १२ प्रत्याहार से धारणा सिद्ध होने लगेगी। धारणा-शक्ति बढ़ते ही प्रकृति के रहस्य खुलने लगेंगे। स्वभाव की मिठास, बुद्धि की विलक्षणता, स्वास्थ्य का सौरभ आने लगेगा। १२ धारणा सिद्ध होने पर ध्यान लगेगा, सविकल्प समाधि होने लगेगी। सविकल्प समाधि का १२ गुना समय पकने पर निर्विकल्प समाधि लगेगी।

इस प्रकार छः महीने अभ्यास करनेवाला साधक सिद्ध योगी बन सकता है। ऋद्धि-सिद्धियाँ उसके आगे हाथ जोड़कर खड़ी

रहती हैं । यक्ष, गंधर्व, किन्नर उसकी सेवा के लिए उत्सुक होते हैं । उस पवित्र पुरुष के निकट संसारी लोग मनौती मानकर अपनी मनोकामना पूर्ण कर सकते हैं । साधन करते समय रग-रग में इस महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए धुन लग जाय ।

ब्रह्मचर्य-व्रत पालनेवाला साधक, पवित्र जीवन जीनेवाला व्यक्ति महान लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सकता है ।

हे मित्र ! बार-बार असफल होने पर भी तुम निराश मत हो । अपनी असफलताओं को याद करके हारे हुए जुआरी की तरह बार-बार गिरो मत । ब्रह्मचर्य की इस पुस्तक को फिर-फिर से पढ़ो । प्रातः निद्रा से उठते समय बिस्तर पर ही बैठे रहो और दृढ़ भावना करो :

''मेरा जीवन प्रकृति की थप्पड़ें खाकर पशुओं की तरह नष्ट करने के लिए नहीं है । मैं अवश्य पुरुषार्थ करूँगा, आगे बढ़ूँगा । हरि ॐ... ॐ... ॐ...

मेरे भीतर परब्रह्म परमात्मा का अनुपम बल है । हरि ॐ... ॐ... ॐ...

तुच्छ एवं विकारी जीवन जीनेवाले व्यक्तियों के प्रभाव से मैं अपने को विनिर्मुक्त करता जाऊँगा । हरि ॐ... ॐ... ॐ...''

सुबह में इस प्रकार का प्रयोग करने से चमत्कारिक लाभ प्राप्त कर सकते हो । सर्वनियन्ता सर्वेश्वर को कभी प्यार करो... कभी प्रार्थना करो... कभी भाव से, विह्वलता से आर्तनाद करो । वे अंतर्यामी परमात्मा हमें अवश्य मार्गदर्शन देते हैं । बल-बुद्धि बढ़ाते हैं । साधक तुच्छ, विकारी जीवन पर विजयी होता जाता है । ईश्वर का असीम बल तुम्हारे साथ है । निराश मत हो भैया ! हताश मत हो । बार-बार फिसलने पर भी सफल होने की आशा और उत्साह मत छोड़ो ।

शाबाश वीर... ! शाबाश... ! हिम्मत करो, हिम्मत करो । ब्रह्मचर्य-सुरक्षा के उपायों को बार-बार पढ़ो, सूक्ष्मता से विचारो ।

उन्नति के हर क्षेत्र में तुम आसानी से विजेता हो सकते हो।

करोगे न हिम्मत ?

अति खाना, अति सोना, अति बोलना, अति यात्रा करना, अति मैथुन करना अपनी सुषुप्त योग्यताओं को धराशायी कर देता है, जबकि संयम और पुरुषार्थ सुषुप्त योग्यताओं को जगाकर जगदीश्वर से मुलाकात करा देता है।

## *नीम का पेड़ चला*

हमारे सद्गुरुदेव पूज्यपाद लीलाशाहजी महाराज के जीवन की एक घटना बताता हूँ : सिंध में उन दिनों किसी जमीन की बाबत में हिन्दू और मुसलमानों में झगड़ा चल रहा था। उस जमीन पर नीम का एक पेड़ खड़ा था, जिससे उस जमीन की सीमा-निर्धारण के बारे में कुछ विवाद था। हिन्दू और मुसलमान कोर्ट-कचहरी में धक्के खा-खाकर थक गये। आखिर दोनों पक्षों ने यह तय किया कि यह धार्मिक स्थान है। दोनों पक्षों में से जिस पक्ष का कोई पीर-फकीर उस स्थान पर अपना कोई विशेष तेज, बल या चमत्कार दिखा दे, वह जमीन उसी पक्ष की हो जायेगी।

पूज्य लीलाशाहजी बापू का नाम पहले 'लीलाराम' था। हिन्दू भाई पूज्य लीलारामजी के पास पहुँचे और बोले : ''हमारे तो आप ही एकमात्र संत हैं। हमसे जो हो सकता था वह हमने किया, परंतु असफल रहे। अब समग्र हिन्दू समाज की प्रतिष्ठा आपश्री के चरणों में है।

**इंसाँ की अज्म से जब दूर किनारा होता है।**
**तूफाँ में टूटी किश्ती का एक भगवान सहारा होता है॥**

अब संत कहो या भगवान कहो, आप ही हमारा सहारा हैं। आप ही कुछ करेंगे तो यह धर्मस्थान हिन्दुओं का हो सकेगा।''

संत तो मौजी होते हैं। जो अहंकार लेकर किसी संत के पास जाता है, वह खाली हाथ लौटता है और जो विनम्र होकर शरणागति

के भाव से उनके सम्मुख जाता है, वह कुछ पा लेता है। विनम्र और श्रद्धावान लोगों पर संत की करुणा कुछ देने को जल्दी उमड़ पड़ती है।

पूज्य लीलारामजी उनकी बात मानकर उस स्थान पर जाकर भूमि पर शांत भाव से बैठ गये।

विपक्ष के लोगों ने उन्हें ऐसी सरल और सहज अवस्था में बैठे देखा तो समझा कि ये लोग इस साधु को व्यर्थ में ही लाये हैं। यह साधु क्या करेगा...? जीत हमारी होगी।

पहले मुस्लिम लोगों द्वारा आमंत्रित पीर-फकीरों ने जादू-मंत्र, टोने-टोटके आदि किये। 'अला बाँधूँ बला बाँधू... पृथ्वी बाँधूँ... तेज बाँधूँ... वायु बाँधूँ... आकाश बाँधूँ... फूऽऽऽ' आदि-आदि किया। फिर पूज्य लीलारामजी की बारी आयी।

पूज्य लीलारामजी भले ही साधारण-से लग रहे थे, परंतु उनके भीतर आत्मानंद हिलोरें ले रहा था। 'पृथ्वी, आकाश क्या, समग्र ब्रह्माण्ड में मेरा ही पसारा है... मेरी सत्ता के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता... ये चाँद-सितारे मेरी आज्ञा में चल रहे हैं... सर्वत्र मैं ही मैं इन सब विभिन्न रूपों में विलास कर रहा हूँ...' ऐसे ब्रह्मानंद में डूबे हुए वे बैठे थे।

ऐसी आत्ममस्ती में बैठा हुआ किंतु बाहर से कंगाल जैसा दिखनेवाला संत जो बोल दे, उसे घटित होने से कौन रोक सकता है ?

वशिष्ठजी कहते हैं : ''हे रामजी ! त्रिलोकी में ऐसा कौन है, जो संत की आज्ञा का उल्लंघन कर सके ?''

जब लोगों ने पूज्य लीलारामजी से आग्रह किया तो उन्होंने धीरे से अपना सिर ऊपर की ओर उठाया। सामने ही नीम का पेड़ खड़ा था। उस पर दृष्टि डालकर गर्जना करते हुए आदेशात्मक भाव से बोल उठे :

''ऐ नीम ! इधर क्या खड़ा है ? जा उधर हटकर खड़ा रह।''

बस, उनका ऐसा कहना ही था कि नीम का पेड़ 'सर्रर्र... सर्रर्र...' करता हुआ दूर जाकर पूर्ववत् खड़ा हो गया।

लोग तो यह देखकर अवाक् रह गये ! आज तक किसीने ऐसा चमत्कार नहीं देखा था। अब विपक्षी लोग भी उनके पैरों पड़ने लगे। वे भी समझ गये कि ये कोई सिद्ध महापुरुष हैं।

वे हिन्दू भाइयों से बोले : ''ये आपके ही पीर नहीं हैं, बल्कि आपके और हमारे सबके पीर हैं। अब से ये 'लीलाराम' नहीं, 'लीलाशाह' हैं।''

तबसे लोग उनका 'लीलाराम' नाम भूल ही गये और उन्हें 'लीलाशाह' नाम से ही पुकारने लगे। लोगों ने उनके जीवन में ऐसे और भी कई चमत्कार देखे।

वे ९३ वर्ष की उम्र पार करके ब्रह्मलीन हुए। इतने वृद्ध होने पर भी उनके सारे दाँत सुरक्षित थे, वाणी में तेज और बल था। वे नियमित रूप से आसन एवं प्राणायाम करते थे। मीलों पैदल यात्रा करते थे। वे आजन्म ब्रह्मचारी रहे। उनके कृपा-प्रसाद द्वारा कई पुत्रहीनों को पुत्र मिले, गरीबों को धन मिला, निरुत्साहियों को उत्साह मिला और जिज्ञासुओं का साधना-मार्ग प्रशस्त हुआ। और भी क्या-क्या हुआ यह बताने जाऊँगा तो विषयान्तर होगा और पूरा बता भी नहीं पाऊँगा। मैं यह बताना चाहता हूँ कि उनके द्वारा इतने चमत्कार होते हुए भी उनकी महानता चमत्कारों में निहित नहीं है। उनकी महानता तो उनकी ब्रह्मनिष्ठा में निहित थी।

छोटे-मोटे चमत्कार तो थोड़े-बहुत अभ्यास के द्वारा हर कोई कर लेता है, मगर ब्रह्मनिष्ठा तो चीज ही कुछ और है। वह तो सभी साधनाओं की अंतिम निष्पत्ति है। मैंने पहले भी कहा है कि केवल वीर्यरक्षा ब्रह्मचर्य नहीं है। यह तो ब्रह्मचर्य की साधना है। यदि शरीर द्वारा वीर्यरक्षा हो और मन-बुद्धि में विषयों का चिंतन चलता रहे,

तो ब्रह्मनिष्ठा कहाँ हुई ? फिर भी वीर्यरक्षा द्वारा ही उस ब्रह्मानंद का द्वार खोलना शीघ्र संभव होता है। **वीर्यरक्षण हो और कोई समर्थ ब्रह्मनिष्ठ गुरु मिल जायें तो बस, फिर और कुछ करना शेष ही नहीं रहता।** फिर वीर्यरक्षण करने में परिश्रम नहीं करना पड़ता, वह सहज होता है। साधक सिद्ध बन जाता है। फिर तो उसकी दृष्टि मात्र से कामुक भी संयमी बन जाता है।

संत ज्ञानेश्वर महाराज जिस चबूतरे पर बैठे थे, उसीको कहा : 'चल...' तो वह चलने लगा। ऐसे ही पूज्यपाद लीलाशाहजी बापू ने नीम के पेड़ को कहा : 'चल...' तो वह चलने लगा और जाकर दूसरी जगह खड़ा हो गया। ब्रह्मचर्य-व्रत और योग-साधना से मनुष्य अपनी कितनी महानता जगा सकता है !

स्वामी विवेकानंद कहा करते थे कि भारतीय लोग अपने संकल्पबल को भूल गये हैं, इसीलिए गुलामी का दुःख भोग रहे हैं। 'हम क्या कर सकते हैं...' ऐसे नकारात्मक चिंतन द्वारा वे संकल्पहीन हो गये हैं जबकि अंग्रेज का बच्चा भी अपने को बड़ा उत्साही समझता है और कार्य में सफल हो जाता है, क्योंकि वह ऐसे विचार करता है : 'मैं अंग्रेज हूँ। दुनिया के बड़े भाग पर हमारी जाति का शासन रहा है। ऐसी गौरवपूर्ण जाति का अंग होते हुए मुझे कौन रोक सकता है सफल होने से ? मैं क्या नहीं कर सकता ?' बस, ऐसा विचार ही उसे सफलता दे देता है।

जब अंग्रेज का बच्चा भी अपनी जाति के गौरव का स्मरण कर दृढ़ संकल्पवान बन सकता है, तो आप क्यों नहीं बन सकते ?

''मैं ऋषि-मुनियों की संतान हूँ। भीष्म जैसे दृढ़प्रतिज्ञ पुरुषों की परम्परा में मेरा जन्म हुआ है। गंगा को पृथ्वी पर उतारनेवाले राजा भगीरथ जैसे दृढ़निश्चयी महापुरुष का रक्त मुझमें बह रहा है। समुद्र को भी पी जानेवाले अगस्त्य ऋषि का मैं वंशज हूँ। श्रीराम और श्रीकृष्ण की अवतार-भूमि भारत में, जहाँ देवता भी

जन्म लेने को तरसते हैं वहाँ मेरा जन्म हुआ है, फिर मैं ऐसा दीन-हीन क्यों ? संयम और एकाग्रता बढ़ाकर मैं जो चाहूँ सो कर सकता हूँ। आत्मा की अमरता का, दिव्य ज्ञान का, परम निर्भयता का संदेश सारे संसार को जिन ऋषियों ने दिया, उनका वंशज होकर मैं दीन-हीन नहीं रह सकता। मैं अपने रक्त के निर्भयता के संस्कारों को जगाकर रहूँगा। मैं वीर्यवान बनकर रहूँगा।'' ऐसा दृढ़ संकल्प हरेक भारतीय बालक को करना चाहिए।

## स्त्री-जाति के प्रति मातृभाव प्रबल करो

श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे : ''किसी सुंदर स्त्री पर नजर पड़ जाय तो उसमें माँ जगदम्बा के दर्शन करो। ऐसा विचार करो कि यह अवश्य देवी का अवतार है, तभी तो इसमें इतना सौंदर्य है। माँ प्रसन्न होकर इस रूप में दर्शन दे रही हैं, ऐसा समझकर सामने खड़ी स्त्री को मन-ही-मन प्रणाम करो। इससे तुम्हारे भीतर कामविकार नहीं उठ सकेगा।''

**मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।**

'परायी स्त्री को माता के समान और पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान जानो।'

## शिवाजी का प्रसंग

शिवाजी के पास कल्याण के सूबेदार की स्त्रियों को लाया गया था तो उस समय उन्होंने यही आदर्श उपस्थित किया था। उन्होंने उन स्त्रियों को 'माँ' कहकर पुकारा तथा उन्हें कई उपहार देकर सम्मान सहित उनके घर वापस भेज दिया। शिवाजी परम गुरु समर्थ रामदास के शिष्य थे।

## अर्जुन और उर्वशी

अर्जुन सशरीर इन्द्र-सभा में गया तो उसके स्वागत में उर्वशी, रम्भा आदि अप्सराओं ने नृत्य किये। अर्जुन के रूप-सौन्दर्य पर

मोहित हो उर्वशी रात्रि के समय उसके निवासस्थान पर गयी और प्रणय-निवेदन किया तथा साथ ही 'इसमें कोई दोष नहीं लगता' इसके पक्ष में अनेक दलीलें भी दीं । किंतु अर्जुन ने अपने दृढ़ इन्द्रियसंयम का परिचय देते हुए में कहा :

**यथा कुन्ती च माद्री च शची चैव ममानघे ।**
**तथा च वंशजननी त्वं हि मेऽद्य गरीयसी ॥**
**गच्छ मूर्ध्ना प्रपन्नोऽस्मि पादौ ते वरवर्णिनि ।**
**त्वं हि मे मातृवत् पूज्या रक्ष्योऽहं पुत्रवत् त्वया ॥**

''मेरी दृष्टि में कुन्ती, माद्री और शची का जो स्थान है, वही तुम्हारा भी है । तुम पूरुवंश की जननी होने के कारण आज मेरे लिए परम गुरुस्वरूप हो । हे वरवर्णिनि ! मैं तुम्हारे चरणों में मस्तक रखकर तुम्हारी शरण में आया हूँ । तुम लौट जाओ । मेरी दृष्टि में तुम माता के समान पूजनीया हो और तुम्हें पुत्र के समान मानकर मेरी रक्षा करनी चाहिए ।''

**(महाभारत - वनपर्वणि इन्द्रलोकाभिगमनपर्व : ४६.४६,४७)**

उर्वशी हाव-भाव से और तर्क देकर अपनी कामवासना तृप्त करने में विफल रही तो क्रोधित होकर उसने अर्जुन को १ वर्ष तक नपुंसक होने का शाप दे दिया । अर्जुन ने उर्वशी से शापित होना स्वीकार किया, परंतु संयम नहीं तोड़ा । जो अपने आदर्श से नहीं हटता, धैर्य और सहनशीलता को अपने चरित्र का भूषण बनाता है, उसके लिए शाप भी वरदान बन जाता है । अर्जुन के लिए भी ऐसा ही हुआ । जब इन्द्र तक यह बात पहुँची तो उन्होंने अर्जुन से कहा : ''तुमने तो अपने इन्द्रियसंयम के द्वारा ऋषियों को भी पराजित कर दिया । तुम जैसे पुत्र को पाकर कुन्ती वास्तव में श्रेष्ठ पुत्रवाली है । उर्वशी का शाप तुम्हें वरदान सिद्ध होगा । भूतल पर वनवास के १३वें वर्ष में तुम्हें अज्ञातवास करना पड़ेगा, उस समय यह सहायक होगा । उसके बाद तुम अपना पुरुषत्व फिर से प्राप्त कर लोगे ।''

इन्द्र के कथनानुसार अज्ञातवास के समय अर्जुन ने विराट के महल में नर्तक वेश में रहकर विराट की राजकुमारी को संगीत और नृत्य विद्या सिखायी थी, तत्पश्चात् वह शाप से मुक्त हुआ था।

परस्त्री के प्रति मातृभाव रखने का यह एक सुंदर उदाहरण है। ऐसा ही एक उदाहरण वाल्मीकिकृत रामायण में भी आता है। भगवान श्रीराम के छोटे भाई लक्ष्मण को जब सीताजी के गहने पहचानने को कहा गया तो लक्ष्मणजी बोले : ''हे तात ! मैं तो सीता माता के पैरों के गहने और नूपुर ही पहचानता हूँ, जो मुझे उनकी चरणवन्दना के समय दृष्टिगोचर होते रहते थे। केयूर-कुण्डल आदि दूसरे गहनों को मैं नहीं जानता।''

यह मातृभाववाली दृष्टि ही इस बात का एक बहुत बड़ा कारण था कि लक्ष्मणजी इतने काल तक ब्रह्मचर्य का पालन किये रह सके। तभी रावणपुत्र मेघनाद को, जिसे इन्द्र भी नहीं हरा सका था, लक्ष्मणजी हरा पाये। पवित्र मातृभाव द्वारा वीर्यरक्षण का यह अनुपम उदाहरण है जो ब्रह्मचर्य की महत्ता भी प्रकट करता है।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति में 'माता' को इतना पवित्र स्थान दिया गया है कि यह मातृभाव मनुष्य को पतित होते-होते बचा लेता है। श्री रामकृष्ण एवं अन्य पवित्र संतों के समक्ष जब कोई स्त्री कुचेष्टा करना चाहती, तब वे सज्जन, साधक, संत यह पवित्र मातृभाव मन में लाकर विकार के फँदे से बच जाते। यह मातृभाव मन को विकारी होने से बहुत हद तक रोके रखता है। जब भी किसी स्त्री को देखने पर मन में विकार उठने लगे, उस समय सचेत रहकर इस मातृभाव का प्रयोग कर ही लेना चाहिए।

## सत्साहित्य पढ़ो

जैसा साहित्य हम पढ़ते हैं, वैसे ही विचार मन के भीतर चलते रहते हैं और उन्हींसे हमारा सारा व्यवहार प्रभावित होता है। जो

लोग कुत्सित, विकारी और कामोत्तेजक साहित्य पढ़ते हैं, वे कभी ऊपर नहीं उठ सकते। उनका मन सदैव काम-विषय के चिंतन में ही उलझा रहता है और इससे वे अपनी वीर्यरक्षा करने में असमर्थ रहते हैं।

गंदे साहित्य कामुकता का भाव पैदा करते हैं। सुना गया है कि पाश्चात्य जगत से प्रभावित कुछ नराधम चोरी-छिपे गंदी फिल्मों का प्रदर्शन करते हैं जो अपना और अपने संपर्क में आनेवालों का विनाश करते हैं। ऐसे लोग महिलाओं, कोमल वय की कन्याओं तथा किशोर एवं युवावस्था में पहुँचे हुए बच्चों के साथ बड़ा अन्याय करते हैं। 'ब्ल्यू फिल्म' देखने-दिखानेवाले महा अधम कामान्ध लोग मरने के बाद कूकर, शूकर आदि योनियों में जन्म लेकर अथवा गंदी नालियों के कीड़े बनकर छटपटाते हुए दुःख भोगेंगे ही। निर्दोष कोमल वय के नवयुवक उन दुष्टों के शिकार न बनें, इसके लिए सरकार और समाज को सावधान रहना चाहिए।

बालक देश की संपत्ति हैं। ब्रह्मचर्य के नाश से उनका विनाश हो जाता है। अतः नवयुवकों को मादक द्रव्यों, गंदे साहित्यों व गंदी फिल्मों के द्वारा बरबाद होने से बचाया जाय। वे ही तो राष्ट्र के भावी कर्णधार हैं। युवक-युवतियाँ तेजस्वी हों, ब्रह्मचर्य की महिमा समझें इसके लिए हम सब लोगों का कर्तव्य है कि स्कूलों-कालेजों में विद्यार्थियों तक संयम पर लिखा गया साहित्य पहुँचायें। सरकार का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह शिक्षा प्रदान कर संयम विषय पर विद्यार्थियों को सावधान करे ताकि वे तेजस्वी बनें।

जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनके जीवन पर दृष्टिपात करोतो उन पर किसी-न-किसी सत्साहित्य की छाप मिलेगी। अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक इमर्सन के गुरु थोरो ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। उन्होंने लिखा है : "मैं प्रतिदिन गीता के पवित्र जल से स्नान करता हूँ। यद्यपि इस पुस्तक को लिखनेवाले देवता को अनेक

वर्ष व्यतीत हो गये, लेकिन इसके बराबर की कोई पुस्तक अभी तक नहीं निकली है।''

योगेश्वरी माता गीता के लिए दूसरे एक विदेशी विद्वान, इंग्लैण्ड के एफ. एच. मोलेम कहते हैं : ''बाइबिल का मैंने यथार्थ अभ्यास किया है। जो ज्ञान गीता में है, वह ईसाई या यहूदी बाइबिलों में नहीं है।

मुझे यही आश्चर्य होता है कि भारतीय नवयुवक यहाँ इंग्लैण्ड तक पदार्थ विज्ञान सीखने क्यों आते हैं ? निःसंदेह पाश्चात्यों के प्रति उनका मोह ही इसका कारण है। उनके भोलेभाले हृदयों ने निर्दय और अविनम्र पश्चिमवासियों के दिल अभी पहचाने नहीं हैं। इसीलिए उनकी शिक्षा से मिलनेवाले पदों के लालच से वे उन स्वार्थियों के इन्द्रजाल में फँसते हैं। अन्यथा तो, जिस देश या समाज को गुलामी से छूटना हो उसके लिए तो यह अधोगति का ही मार्ग है।

मैं ईसाई होते हुए भी गीता के प्रति इतना आदर-मान इसलिए रखता हूँ कि जिन गूढ़ प्रश्नों का हल पाश्चात्य वैज्ञानिक अभी तक नहीं कर पाये, उनका हल इस गीता ग्रंथ ने शुद्ध और सरल रीति से दे दिया है। गीता में कितने ही सूत्र अलौकिक उपदेशों से भरपूर देखे, इसी कारण गीताजी मेरे लिए साक्षात् योगेश्वरी माता बन गयी हैं। विश्व भर के सारे धन से भी न मिल सके, भारतवर्ष का यह ऐसा अमूल्य खजाना है।''

सुप्रसिद्ध पत्रकार पॉल ब्रिन्टन सनातन धर्म की ऐसी धार्मिक पुस्तकें पढ़कर जब प्रभावित हुआ तो वह हिन्दुस्तान आया और यहाँ के रमण महर्षि जैसे महात्माओं के दर्शन करके धन्य हुआ। देशभक्तिपूर्ण साहित्य पढ़कर ही चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह, वीर सावरकर जैसे रत्न अपने जीवन को देशहित में लगा पाये।

इसलिए सत्साहित्य की तो जितनी महिमा गायी जाय, उतनी

कम है। श्री योगवाशिष्ठ महारामायण, श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद्, दासबोध, सुखमनि साहिब, विवेक चूड़ामणि, श्री रामकृष्ण साहित्य, स्वामी रामतीर्थ के प्रवचन आदि भारतीय संस्कृति की ऐसी कई पुस्तकें हैं, जिन्हें पढ़ो और अपने दैनिक जीवन का अंग बना लो। ऐसी-वैसी विकारी और कुत्सित पुस्तक-पुस्तिकाएँ हों तो उन्हें उठाकर कचरे के ढेर पर फेंक दो या चूल्हे में डालकर आग तापो, मगर न तो स्वयं पढ़ो और न दूसरों के हाथ लगने दो।

आध्यात्मिक साहित्य-सेवन में संयम-स्वास्थ्य मजबूत करने की अथाह शक्ति होती है। संयम, स्वास्थ्य, साहस और झुरमुर-झुरमुर आत्मा-परमात्मा का आनंद व सामर्थ्य अपने जीवन में जगाओ। कब तक दीन-हीन होकर लाचार-मोहताज जीवन की ओर घसीटे जाओगे, भैया ? प्रातःकाल स्नानादि के पश्चात् दिन के व्यवसाय में लगने से पूर्व एवं रात्रि को सोने से पूर्व कोई-न-कोई आध्यात्मिक पुस्तक पढ़नी चाहिए। इससे वे ही सत्त्वगुणी विचार मन में घूमते रहेंगे जो पुस्तक में होंगे और हमारा मन विकारग्रस्त होने से बचा रहेगा।

कौपीन (लँगोटी) पहनने का भी आग्रह रखो। इससे अण्डकोष स्वस्थ रहेंगे और वीर्यरक्षण में मदद मिलेगी।

वासना को भड़कानेवाले नग्न व अश्लील पोस्टरों एवं चित्रों को देखने का आकर्षण छोड़ो। अश्लील शायरी और गाने भी जहाँ गाये जाते हों, वहाँ न रुको। 卐

## वीर्य-रक्षण की महत्ता

वीर्य के एक-एक अणु में महान शक्तियाँ छिपी हैं। इसीके द्वारा शंकराचार्य, महावीर, कबीर, नानक जैसे महापुरुष धरती पर अवतीर्ण हुए हैं। बड़े-बड़े वीर, योद्धा, वैज्ञानिक, साहित्यकार - ये सब वीर्य की एक बूँद में छिपे थे... और अभी आगे भी पैदा होते

रहेंगे । इतने बहुमूल्य वीर्य का सदुपयोग जो व्यक्ति नहीं कर पाता, वह अपना पतन आप आमंत्रित करता है ।

**वीर्यं वै भर्गः ।**

'वीर्य ही तेज है, आभा है, प्रकाश है ।' (शतपथ ब्राह्मण)

जीवन को ऊर्ध्वगामी बनानेवाली ऐसी बहुमूल्य वीर्यशक्ति को जिसने भी खोया, उसको कितनी हानि उठानी पड़ी, यह कुछ उदाहरणों के द्वारा हम समझ सकते हैं ।

## *भीष्म पितामह और वीर अभिमन्यु*

महाभारत में ब्रह्मचर्य से सम्बन्धित दो प्रसंग आते हैं : एक भीष्म पितामह का और दूसरा वीर अभिमन्यु का । भीष्म पितामह बालब्रह्मचारी थे, इसलिए उनमें अथाह सामर्थ्य था । भगवान श्रीकृष्ण का यह व्रत था कि 'मैं युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊँगा ।' किंतु यह भीष्म की ब्रह्मचर्यशक्ति का ही चमत्कार था कि उन्होंने श्रीकृष्ण को अपना व्रत भंग करने के लिए मजबूर कर दिया । उन्होंने अर्जुन पर ऐसी बाणवर्षा की कि दिव्यास्त्रों से सुसज्जित अर्जुन जैसा धुरंधर धनुर्धारी भी उसका प्रतिकार करने में असमर्थ हो गया, जिससे उसकी रक्षार्थ भगवान श्रीकृष्ण को रथ का पहिया लेकर भीष्म की ओर दौड़ना पड़ा ।

यह ब्रह्मचर्य का ही प्रताप था कि भीष्म मौत पर भी विजय प्राप्त कर सके । उन्होंने ही यह स्वयं तय किया कि उन्हें कब शरीर छोड़ना है । अन्यथा शरीर में प्राणों का टिके रहना असंभव था, परंतु भीष्म की बिना आज्ञा के मौत भी उनसे प्राण कैसे छीन सकती थी ! भीष्म ने स्वेच्छा से शुभ मुहूर्त में अपना शरीर छोड़ा ।

दूसरी ओर अभिमन्यु का प्रसंग आता है । महाभारत के युद्ध में अर्जुन का वीर पुत्र अभिमन्यु चक्रव्यूह का भेदन करने के लिए अकेला ही निकल पड़ा था । भीम भी पीछे रह गया था । उसने जो शौर्य दिखाया, वह प्रशंसनीय था । बड़े-बड़े महारथियों से घिरे होने पर

भी वह रथ का पहिया लेकर अकेला युद्ध करता रहा, परंतु आखिर में मारा गया। उसका कारण यह था कि युद्ध में जाने से पूर्व वह अपना ब्रह्मचर्य खण्डित कर चुका था। वह उत्तरा के गर्भ में पाण्डव वंश का बीज डालकर आया था। मात्र इतनी छोटी-सी भूल के कारण वह पितामह भीष्म की तरहं अपनी मृत्यु का आप मालिक नहीं बन सका।

## पृथ्वीराज चौहान क्यों हारे ?

मुहम्मद गौरी को १६ बार हरानेवाले वीर महायोद्धा, शक्ति और सामर्थ्य के साक्षात् मूर्तिस्वरूप पृथ्वीराज चौहान १७वीं बार हार कैसे गये ? कहते हैं कि जिस दिन वे हारे थे उस दिन वे अपनी पत्नी से अपनी कमर कसवाकर अर्थात् अपने वीर्य का सत्यानाश करके युद्धभूमि में आये थे। यह है वीर्यशक्ति के व्यय का दुष्परिणाम ! गौरी ने बाद में उनकी आँखें लोहे की गर्म सलाखों से फुड़वा दीं।

रामायण महाकाव्य के पात्र रामभक्त हनुमान के कई अद्भुत पराक्रम तो हम सबने सुने ही हैं। जैसे - आकाश में उड़ना, समुद्र लाँघना, रावण की सभा में से छूटकर लौटना, लंका जलाना, युद्ध में रावण को मुक्का मारकर मूच्छिर्त कर देना, संजीवनी बूटी के लिए पूरा पहाड़ ही उठा लाना आदि। यह सब ब्रह्मचर्य की शक्ति का ही प्रताप था।

फ्रांस का सम्राट नेपोलियन कहा करता था : ''**असंभव शब्द** मेरे शब्दकोष में ही नहीं है।'' परंतु वह भी हार गया। हारने के मूल कारणों में एक कारण यह भी था कि युद्ध से पूर्व ही उसने स्त्री के आकर्षण में अपने वीर्य का क्षय कर दिया था।

सेम्सन भी शूरवीरता के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध था। 'बाइबिल' में उसका उल्लेख आता है। वह भी स्त्री के मोहक आकर्षण से नहीं बच सका और उसका भी पतन हो गया।

## स्वामी रामतीर्थ का अनुभव

स्वामी रामतीर्थ जब प्रोफेसर थे तब उन्होंने एक प्रयोग किया और बाद में निष्कर्षरूप में बताया कि जो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों में या परीक्षा के कुछ दिन पहले विषयों में फँस जाते हैं, वे परीक्षा में प्रायः असफल हो जाते हैं, चाहे वर्ष भर उन्होंने अपनी कक्षा में अच्छे अंक क्यों न पाये हों। जिन विद्यार्थियों का चित्त परीक्षा के दिनों में एकाग्र और शुद्ध रहा करता है, वे ही सफल होते हैं।

कामविकार को रोकना वस्तुतः बड़ा दुःसाध्य है। यही कारण है कि मनु महाराज ने यहाँ तक कह दिया है : ''माँ, बहन और पुत्री के साथ भी व्यक्ति को एकांत में नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि मनुष्य की इन्द्रियाँ बहुत बलवान होती हैं। वे विद्वानों के मन को भी समान रूप से अपने वेग में खींच ले जाती हैं।''

卐

# महत्त्वपूर्ण बातें

मैं युवक वर्ग से विशेषरूप से कुछ बातें कहना चाहता हूँ क्योंकि यही वह वर्ग है जो अपने देश के सुदृढ़ भविष्य का आधार है। भारत का यही युवक वर्ग जो पहले देशोत्थान एवं आध्यात्मिक रहस्यों की खोज में लगा रहता था, वही अब कामिनियों के रंग-रूप के पीछे पागल होकर अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ में खोता जा रहा है।

यह कामशक्ति मनुष्य के लिए अभिशाप नहीं, बल्कि वरदानस्वरूप है। यह जब युवक में खिलने लगती है तो उसे उस समय इतने उत्साह से भर देती है कि वह संसार में सब कुछ कर सकने में अपने को समर्थ अनुभव करने लगता है, लेकिन आज के अधिकांश युवक दुर्व्यसनों में फँसकर हस्तमैथुन (Masterbation) एवं स्वप्नदोष के शिकार बन जाते हैं।

## *हस्तमैथुन के दुष्परिणाम*

इन दुर्व्यसनों से युवक अपनी वीर्यधारण की शक्ति खो बैठता है और वह तीव्रता से नपुंसकता की ओर अग्रसर होने लगता है। उसकी आँखें और चेहरा निस्तेज और कमजोर हो जाता है। थोड़े परिश्रम से ही वह हाँफने लगता है, उसकी आँखों के सामने अँधेरा छाने लगता है। अधिक कमजोरी से मूर्च्छा भी आ जाती है। उसकी संकल्पशक्ति कमजोर हो जाती है।

जो युवक १७ से २४ वर्ष की आयु तक संयम रखता है, उसका मानसिक एवं बौद्धिक बल बढ़ जाता है। जीवन भर उसमें उत्साह एवं स्फूर्ति बनी रहती है। जो युवक बीस वर्ष की आयु पूरी होने से पूर्व ही अपने वीर्य का नाश करना शुरू कर देता है, उसकी स्फूर्ति और हौसला पस्त हो जाता है तथा जीवन भर के लिए उसकी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है।

मैं चाहता हूँ कि युवावर्ग वीर्य के संरक्षण के कुछ ठोस प्रयोग सीख ले। छोटे-मोटे प्रयोग, उपवास, भोजन में सुधार आदि तो ठीक है, परंतु वे अस्थायी लाभ ही दे पाते हैं। कई प्रयोगों से यह बात सिद्ध हुई है।

## *अमेरिका में किया गया प्रयोग*

अमेरिका में एक विज्ञानशाला में ३० विद्यार्थियों को भूखा रखा गया। इससे उतने समय के लिए तो उनका कामविकार दबा रहा परंतु भोजन करने के बाद फिर से उनमें काम-वासना जोर पकड़ने लगी।

लोहे की लँगोट पहनकर भी कुछ लोग कामदमन की चेष्टा करते पाये जाते हैं। उनको 'सिकड़िया बाबा' कहते हैं। वे लोहे या पीतल की लँगोट पहनकर उसमें ताला लगा देते हैं।

कुछ ऐसे भी लोग हुए हैं, जिन्होंने इस कामविकार से छुटकारा

पाने के लिए अपनी जननेन्द्रिय ही काट दी और बाद में बहुत पछताये। उन्हें मालूम नहीं था कि जननेन्द्रिय तो कामविकार प्रकट होने का एक साधन है। फूल-पत्ते तोड़ने से पेड़ नष्ट नहीं होता। मार्गदर्शन के अभाव में लोग कैसी-कैसी भूलें करते हैं, ऐसा ही यह एक उदाहरण है।

## कामशक्ति का दमन या ऊर्ध्वगमन ?

कामशक्ति का दमन कामविकार से बचने का सही हल नहीं है। सही हल है इस शक्ति को ऊर्ध्वमुखी बनाकर शरीर में ही इसका उपयोग करके परम सुख को प्राप्त करना। यह युक्ति जिसको आ गयी, उसे सब आ गया और जिसे यह नहीं आयी वह समाज में कितना भी सत्तावान, धनवान, प्रतिष्ठावान बन जाय, अंत में मरने पर अनाथ ही रह जायेगा, अपने-आपको नहीं मिल पायेगा।

गौतम बुद्ध यह युक्ति जानते थे, तभी अंगुलीमाल जैसा निर्दयी हत्यारा भी सारे दुष्कृत्य छोड़कर उनके आगे भिक्षुक बन गया।

ऐसे महापुरुषों में वह शक्ति होती है, जिसके प्रयोग से साधक के लिए ब्रह्मचर्य की साधना एकदम सरल हो जाती है। फिर कामविकार से लड़ना नहीं पड़ता, बल्कि जीवन में ब्रह्मचर्य सहज ही फलित होने लगता है।

मैंने ऐसे लोगों को देखा है, जो थोड़ा-सा जप-तप करते हैं और बहुत पूजे जाते हैं। ऐसे भी लोगों को देखा है, जो बहुत जप-तप करते हैं फिर भी समाज पर उनका कोई प्रभाव नहीं, उनमें आकर्षण नहीं। जाने-अनजाने, हो-न-हो, जागृत अथवा निद्रावस्था में या अन्य किसी प्रकार से उनकी वीर्यशक्ति अवश्य नष्ट होती रहती है।

## एक साधक का अनुभव

एक साधक ने, यहाँ उसका नाम नहीं लूँगा, मुझे स्वयं ही बताया :

''स्वामीजी ! यहाँ आने से पूर्व मैं महीने में एक दिन भी पत्नी के बिना नहीं रह सकता था... इतना अधिक कामविकार में फँसा हुआ था, परंतु अब ६-६ महीने बीत जाते हैं पत्नी के बिना और कामविकार भी पहले की भाँति नहीं सताता।''

## दूसरे साधक का अनुभव

दूसरे एक सज्जन यहाँ आते हैं, उनकी पत्नी की शिकायत मुझे सुनने को मिली है। वह स्वयं तो यहाँ आती नहीं, मगर लोगों से कहती है कि ''किसी प्रकार मेरे पति को समझायें कि वे आश्रम में न जाया करें।''

वैसे तो आश्रम में जाने के लिए कोई क्यों मना करेगा ? मगर उसके इस प्रकार मना करने का कारण जो उसने लोगों को बताया और लोगों ने मुझे बताया वह इस प्रकार है -

वह कहती है : ''इन बाबा ने मेरे पति पर न जाने क्या जादू किया है कि पहले तो वे रात को मुझे पास में सुलाते थे, परंतु अब मुझसे दूर सोते हैं। इससे तो वे सिनेमा में जाते थे, जैसे-तैसे दोस्तों के साथ घूमते रहते थे, वही ठीक था। उस समय कम-से-कम मेरे कहने में तो चलते थे ! परंतु अब तो...''

कैसा दुर्भाग्य है मनुष्य का ! व्यक्ति भले ही पतन के रास्ते चले, उसके जीवन का भले ही सत्यानाश होता रहे, परंतु 'वह मेरे कहने में चले...' यही संसारी प्रेम का ढाँचा है। इसमें प्रेम दो-पाँच प्रतिशत हो सकता है, बाकी ९५ प्रतिशत तो मोह ही होता है, वासना ही होती है। मगर मोह भी प्रेम का चोला ओढ़कर फिरता रहता है और हमें पता नहीं चलता कि हम पतन की ओर जा रहे हैं या उत्थान की ओर।

## योगी का संकल्पबल

ब्रह्मचर्य उत्थान का मार्ग है। बाबाजी ने कुछ जादू-वादू नहीं किया। केवल उनके द्वारा उनकी यौगिक शक्ति का सहारा उस

व्यक्ति को मिला, जिससे उसकी कामशक्ति ऊर्ध्वगामी हो गयी। इस कारण उसका मन संसारी कामसुख से ऊपर उठ गया। जब असली रस मिलने लग गया तो निस्तेज करनेवाली गंदी नाली द्वारा मिलनेवाले रस की ओर कोई क्यों ताकेगा ? ऐसा कौन मूर्ख होगा जो ब्रह्मचर्य का पवित्र और असली रस छोड़कर घृणित और पतनोन्मुख करनेवाले संसारी कामसुख की ओर दौड़ेगा ?

## *क्या यह चमत्कार है ?*

सामान्य लोगों के लिए तो यह मानों एक बहुत बड़ा चमत्कार है, परंतु इसमें चमत्कार जैसी कोई बात नहीं है। जो महापुरुष योगमार्ग से परिचित हैं और अपनी आत्ममस्ती में मस्त रहते हैं, उनके लिए तो यह एक खेलमात्र है।

योग का भी अपना एक विज्ञान है, जो स्थूल विज्ञान से भी सूक्ष्म एवं अधिक प्रभावी होता है। जो लोग ऐसे किसी योगी महापुरुष के सान्निध्य का लाभ लेते हैं, उनके लिए तो ब्रह्मचर्य का पालन सहज हो जाता है। उन्हें अलग से कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती।

## *हस्तमैथुन व स्वप्नदोष से कैसे बचें ?*

कोई यदि हस्तमैथुन या स्वप्नदोष की समस्या से ग्रस्त है और वह इस रोग से छुटकारा पाने को वस्तुतः इच्छुक है, तो सबसे पहले मैं यही कहूँगा कि अब वह यह चिंता छोड़ दे कि 'मुझे यह रोग है और अब मेरा क्या होगा ? क्या मैं फिर से स्वास्थ्य-लाभ कर सकूँगा ?' इस प्रकार के निराशावादी विचारों को वह जड़मूल से उखाड़ फेंके।

## *सदैव प्रसन्न रहो*

जो हो चुका वह बीत गया। बीती सो बीती, **बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेय।** एक तो रोग, फिर उसका चिंतन और भी रुग्ण बना देता है। इसलिए पहला काम तो यह करो कि दीनता के

विचारों को तिलांजलि देकर प्रसन्न और प्रफुल्लित रहना प्रारंभ कर दो ।

पीछे कितना वीर्यनाश हो चुका है, उसकी चिन्ता छोड़कर अब कैसे वीर्यरक्षण हो सके, उसके लिए उपाय करने हेतु कमर कस लो ।

**ध्यान रहे :** वीर्यशक्ति का दमन नहीं करना है, उसे ऊर्ध्वगामी बनाना है । वीर्यशक्ति का उपयोग हम ठीक ढंग से नहीं कर पाते । इसलिए इस शक्ति के ऊर्ध्वगमन के कुछ प्रयोग हम समझ लें ।

## *वीर्य का ऊर्ध्वगमन क्या है ?*

वीर्य के ऊर्ध्वगमन का अर्थ यह नहीं है कि वीर्य स्थूल रूप से ऊपर सहस्रार की ओर जाता है । इस विषय में कई लोग भ्रमित हैं । वीर्य तो वहीं रहता है, मगर उसे संचालित करनेवाली जो कामशक्ति है, उसका ऊर्ध्वगमन होता है । वीर्य को ऊपर चढ़ाने की नाड़ी शरीर के भीतर नहीं है। इसलिए शुक्राणु ऊपर नहीं जाते बल्कि हमारे भीतर एक वैद्युतिक चुम्बकीय शक्ति होती है जो नीचे की ओर बहती है, तब शुक्राणु सक्रिय होते हैं ।

इसलिए जब पुरुष की दृष्टि भड़कीले वस्त्रों पर पड़ती है या उसका मन स्त्री का चिंतन करता है, तब यही शक्ति उसके चिंतनमात्र से नीचे मूलाधार केन्द्र के नीचे जो कामकेन्द्र है, उसको सक्रिय कर, वीर्य को बाहर धकेलती है । वीर्य स्खलित होते ही उसके जीवन की उतनी कामशक्ति व्यर्थ में खर्च हो जाती है । योगी और तांत्रिक लोग इस सूक्ष्म बात से परिचित थे । स्थूल विज्ञानवाले जीवशास्त्री और डॉक्टर लोग इस बात को ठीक से समझ नहीं पाये इसलिए आधुनिकतम औजार होते हुए भी कई गंभीर रोगों को वे ठीक नहीं कर पाते, जबकि योगी के दृष्टिपात मात्र या आशीर्वाद से ही रोग ठीक होने के चमत्कार हम प्रायः देखा-सुना करते हैं ।

आप बहुत योगसाधना करके ऊर्ध्वरेता योगी न भी बनो फिर भी वीर्यरक्षण के लिए इतना छोटा-सा प्रयोग तो कर ही सकते हो -

## वीर्यरक्षा का महत्त्वपूर्ण प्रयोग

अपना जो 'काम-संस्थान' है, वह जब सक्रिय होता है तभी वीर्य को बाहर धकेलता है। किंतु निम्न प्रयोग द्वारा उसको सक्रिय होने से बचाना है।

ज्यों ही किसी स्त्री के दर्शन से या कामुक विचार से आपका ध्यान अपनी जननेन्द्रिय की तरफ खिंचने लगे, तभी आप सतर्क हो जाओ। आप तुरंत जननेन्द्रिय को भीतर पेट की तरफ खींचो। जैसे पंप का पिस्टन खींचते हैं इस प्रकार की क्रिया मन को जननेन्द्रिय में केन्द्रित करके करनी है। योग की भाषा में इसे योनिमुद्रा कहते हैं।

अब आँखें बंद करो। फिर ऐसी भावना करो कि मैं अपने जननेन्द्रिय-संस्थान से ऊपर सिर में स्थित सहस्रार चक्रकी तरफ देख रहा हूँ। जिधर हमारा मन लगता है, उधर ही यह शक्ति बहने लगती है। सहस्रार की ओर वृत्ति लगाने से जो शक्ति मूलाधार में सक्रिय होकर वीर्य को स्खलित करनेवाली थी, वही शक्ति ऊर्ध्वगामी बनकर आपको वीर्यपतन से बचा लेगी। लेकिन ध्यान रहे : यदि आपका मन कामविकार का मजा लेने में अटक गया तो आप सफल नहीं हो पायेंगे। थोड़े संकल्प और विवेक का सहारा लिया तो कुछ ही दिनों के प्रयोग से महत्त्वपूर्ण फायदा होने लगेगा। आप स्पष्ट महसूस करेंगे कि एक आँधी की तरह काम का आवेग आया और इस प्रयोग से वह कुछ ही क्षणों में शांत हो गया।

## दूसरा प्रयोग

जब भी काम का वेग उठे, मूलबंध (योनि का संकोचन) व उड्डीयान बंध (पेट को भीतर खींचना) करके फेफड़ों में भरी वायु

को जोर-से बाहर फेंको। जितना अधिक बाहर फेंक सको, उतना उत्तम। दो-तीन बार के प्रयोग से ही कामविकार शांत हो जायेगा और आप वीर्यपतन से बच जाओगे।

यह प्रयोग दिखता छोटा-सा है, मगर बड़ा महत्त्वपूर्ण यौगिक प्रयोग है। भीतर का श्वास कामशक्ति को नीचे की ओर धकेलता है। उसे जोर-से और अधिक मात्रा में बाहर फेंकने से वह मूलाधार चक्र में कामकेन्द्र को सक्रिय नहीं कर पायेगा। फिर पेट व नाभि को भीतर संकोचने से वहाँ खाली जगह बन जाती है। उस खाली जगह को भरने के लिए कामकेन्द्र के आस-पास की सारी शक्ति, जो वीर्यपतन में सहयोगी बनती है, खिंचकर नाभि की तरफ चली जाती है और इस प्रकार आप वीर्यपतन से बच जायेंगे।

इस प्रयोग को करने में न कोई खर्च है, न कोई विशेष स्थान ढूँढ़ने की जरूरत है। कहीं भी बैठकर कर सकते हैं। कामविकार न भी उठे, तब भी यह प्रयोग करके आप अनुपम लाभ उठा सकते हैं। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है, पेट की बीमारियाँ मिटती हैं, जीवन तेजस्वी बनता है और वीर्यरक्षण सहज में होने लगता है।

## *मंत्र-प्रयोग*

**'ॐ अर्यमायै नमः।'**- भगवान अर्यमा का यह मंत्र श्रद्धा से जपनेवाला विकारी वातावरण व विकारी लोगों के बीच से भी बचकर निकल सकता है। श्रद्धा से जपने पर बहुत लाभ होता है यह कइयों का अनुभव है। स्त्री-पुरुष जिनको भी कामविकार गिराता हो उन्हें इस महामंत्र का आदरपूर्वक जप करना चाहिए।

रात्रि को सोने से पूर्व २१ बार इस मंत्र का जप करने से तथा तकिये पर अपनी माँ का नाम लिखने से (स्याही-पेन से नहीं, केवल उँगली से) व्यक्ति बुरे एवं विकारी सपनों से बच जाता है।

## वीर्यरक्षक चूर्ण

बहुत कम खर्च में आप यह चूर्ण बना सकते हैं। कुछ सूखे आँवलों से बीज अलग करके उनके छिलकों को कूटकर चूर्ण बना लो। आजकल बाजार में आँवलों का तैयार चूर्ण भी मिलता है। जितना चूर्ण हो, उससे दुगनी मात्रा में उसमें मिश्री का चूर्ण मिला दो। यह चूर्ण उनके लिए भी हितकर है जिन्हें स्वप्नदोष नहीं होता हो।

रोज रात्रि को सोने से आधा घंटा पूर्व पानी के साथ एक चम्मच यह चूर्ण ले लिया करो। यह चूर्ण वीर्य को गाढ़ा करता है, कब्ज दूर करता है, वात-पित्त-कफ के दोष मिटाता है और संयम को मजबूत करता है।

## गोंद का प्रयोग

६ ग्राम खेरी गोंद रात्रि को पानी में भिगो दो। इसे सुबह खाली पेट ले लो। इस प्रयोग के दौरान अगर भूख कम लगती हो तो दोपहर को भोजन के पहले अदरक व नींबू का रस मिलाकर लेना चाहिए।

## तुलसी : एक अद्‌भुत औषधि

फ्रेंच डॉक्टर विक्टर रेसीन ने कहा है : ''तुलसी एक अद्‌भुत औषधि (Wonder drug) है। तुलसी पर किये गये प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि रक्तचाप और पाचनतंत्र के नियमन में तथा मानसिक रोगों में तुलसी अत्यंत लाभकारी है। इससे रक्तकणों की वृद्धि होती है। मलेरिया तथा अन्य प्रकार के बुखारों में तुलसी अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है।''

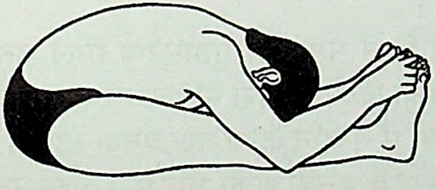
तुलसी रोगों को तो दूर करती ही है, इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य की रक्षा करने एवं यादशक्ति बढ़ाने में भी अनुपम सहायता करती है। तुलसीदल एक उत्कृष्ट रसायन है। यह त्रिदोषनाशक है। रक्तविकार, वायु, खाँसी, कृमि आदि की निवारक है तथा हृदय के लिए बहुत हितकारी है।

अगर मिल सके तो तुलसी के बीज कूटकर रख लें। एक-आध ग्राम रात को भिगो दें। सुबह खाली पेट पानी के साथ लें। वात, पित्त, कफ - इन तीनों के असंतुलन से ही सारी बीमारियाँ होती हैं और तुलसी के बीज त्रिदोषनाशक हैं। अतः त्रिदोषजनित तथा कैंसर आदि बीमारियाँ आपके पास नहीं फटकेंगी। इस प्रयोग से भूख अच्छी लगेगी और बहुत सारे स्वास्थ्य-लाभ होंगे। इस प्रयोग से वीर्यरक्षा का भी सीधा सम्बन्ध है। जितने दिन अनुकूल लगे उतने दिन यह प्रयोग कर सकते हैं। 卐

# पादपश्चिमोत्तानासन

**विधि :** जमीन पर आसन बिछाकर दोनों पैर सीधे करके बैठ जाओ। फिर दोनों हाथों से पैरों के अँगूठे पकड़कर झुकते हुए सिर को दोनों घुटनों से मिलाने का प्रयास करो। घुटने जमीन पर सीधे रहें। प्रारंभ में घुटने जमीन पर न टिकें तो कोई हर्ज नहीं। सतत अभ्यास से यह आसन सिद्ध हो जायेगा। यह आसन करने के १५ मिनट बाद एक-दो कच्ची भिण्डी खानी चाहिए। सेवफल का सेवन भी फायदा करता है।

**लाभ :** इस आसन से नाड़ियों की विशेष शुद्धि होकर हमारी कार्यक्षमता बढ़ती है और शरीर की बीमारियाँ दूर होती हैं।



बदहजमी, कब्ज जैसे पेट के सभी रोग, सर्दी-जुकाम, कफ गिरना, कमर का दर्द, हिचकी, सफेद कोढ़, पेशाब की बीमारियाँ, स्वप्नदोष, वीर्य-विकार, अपेंडिक्स, सायटिका (Scitica), नलों की सूजन, पाण्डुरोग (पीलिया), अनिद्रा, दमा, खट्टी डकारें, ज्ञानतंतुओं की कमजोरी, गर्भाशय

के रोग, मासिकधर्म की अनियमितता व अन्य तकलीफें, नपुंसकता, रक्तविकार, ठिंगनापन व अन्य कई प्रकार की बीमारियाँ यह आसन करने से दूर होती हैं ।

प्रारंभ में यह आसन आधा मिनट से शुरू करके प्रतिदिन थोड़ा समय बढ़ाते हुए १५ मिनट तक कर सकते हैं । पहले २-३ दिन तकलीफ होती है, फिर सरल हो जाता है ।

इस आसन से शरीर का कद लम्बा होता है । यदि शरीर में मोटापन है तो वह दूर होता है और यदि दुबलापन है तो वह दूर होकर शरीर सुडौल, तंदुरुस्त अवस्था में आ जाता है। ब्रह्मचर्य पालनेवालों के लिए यह आसन भगवान शिव का प्रसाद है । इसका प्रचार पहले शिवजी ने और बाद में जोगी गोरखनाथ ने किया था ।

卐

# हमारे अनुभव

## महापुरुष के दर्शन का चमत्कार

''पहले मैं कामतृप्ति में ही जीवन का आनंद मानता था । मेरी दो शादियाँ हुई परंतु दोनों पत्नियों के देहान्त के कारण अब तीसरी शादी १८ वर्ष की लड़की से करने को तैयार हो गया । शादी से पूर्व मैं पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज का आशीर्वाद लेने डीसा आश्रम में जा पहुँचा ।

आश्रम में वे तो नहीं मिले मगर जो महापुरुष मिले उनके दर्शनमात्र से न जाने क्या हुआ कि मेरा सारा भविष्य ही बदल गया। उनके योगयुक्त विशाल नेत्रों में न जाने कैसा तेज चमक रहा था कि मैं अधिक देर तक उनकी ओर देख नहीं सका और मेरी नजर उनके चरणों की ओर झुक गयी । मेरी कामवासना तिरोहित हो गयी । घर पहुँचते ही शादी से इनकार कर दिया । भाइयों ने एक कमरे में उस १८ वर्ष की लड़की के साथ मुझे बंद कर दिया ।

मैंने कामविकार को जगाने के कई उपाय किये, परंतु सब निरर्थक सिद्ध हुआ... जैसे, कामसुख की चाबी उन महापुरुष के पास ही रह गयी हो ! एकांत कमरे में आग और पेट्रोल जैसा कामविकार का संयोग था, फिर भी... !

मैंने निश्चय किया कि अब मैं उनकी छत्रछाया को नहीं छोड़ूँगा, भले कितना ही विरोध सहन करना पड़े। उन महापुरुष को मैंने अपना मार्गदर्शक बनाया। उनके सान्निध्य में रहकर कुछ यौगिक क्रियाएँ सीखीं। उन्होंने मुझसे ऐसी साधना करवायी कि जिससे शरीर की सारी पुरानी व्याधियाँ जैसे मोटापन, दमा, टी.बी., कब्ज और छोटे-मोटे कई रोग आदि निवृत्त हो गये।

उन महापुरुष का नाम है परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू। उन्हींके सान्निध्य में मैं अपना जीवन धन्य कर रहा हूँ। उनका जो अनुपम उपकार मेरे ऊपर हुआ है, उसका बदला तो मैं अपना सम्पूर्ण लौकिक वैभव समर्पण करके भी चुकाने में असमर्थ हूँ।''

*- महन्त चन्दीराम (भूतपूर्व चन्दीराम कृपालदास )*
*संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद।*

卐

*जिन विद्यार्थियों को 'यौवन सुरक्षा' पुस्तक पढ़ने से लाभ हुआ है उनके कुछ उद्गार*

# मेरी वासना उपासना में बदली

''आश्रम द्वारा प्रकाशित **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक पढ़ने से मेरी दृष्टि अमीदृष्टि हो गयी। पहले परस्त्री को एवं हमउम्र की लड़कियों को देखकर मेरे मन में वासना और कुदृष्टि का भाव पैदा होता था लेकिन यह पुस्तक पढ़कर मुझे जानने को मिला कि 'स्त्री एक वासनापूर्ति की वस्तु नहीं है, परंतु शुद्ध प्रेम और शुद्ध भावपूर्वक जीवनभर साथ रहनेवाली एक शक्ति है।' सचमुच इस **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक को पढ़कर मेरे अंदर की वासना उपासना में बदल गयी है।'' *-मकवाणा रवीन्द्र रतिभाई, एम. के. जमोड हाईस्कूल, भावनगर (गुज.).*

卐

## 'यौवन सुरक्षा' पुस्तक आज के युवावर्ग के लिए एक अमूल्य भेंट है

''सर्वप्रथम मैं पूज्य बापू का एवं श्री योग वेदान्त सेवा समिति का आभार प्रकट करता हूँ।

**'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक आज के युवावर्ग के लिए अमूल्य भेंट है। यह पुस्तक युवानों के लिए सही दिशा दिखानेवाली है।

आज के युग में युवानों के लिए वीर्यरक्षण अति कठिन है। परंतु इस पुस्तक को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि वीर्यरक्षण करना सरल है। **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तकआज के युवावर्ग को सही युवान बनने की प्रेरणा देती है। इस पुस्तक में मैंने 'हमारे अनुभव' नामक पाठ पढ़ा। उसके बाद ऐसा लगा कि संत के दर्शन करने से वीर्यरक्षण की प्रेरणा मिलती है। यह बात नितान्त सत्य है। मैं हरिजन जाति का हूँ। पहले मांस, मछली, लहसुन, प्याज आदि सब खाता था लेकिन **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक पढ़ने के बाद मुझे मांसाहार से सख्त नफरत हो गयी है। उसके बाद मैंने इस पुस्तक को दो-तीन बार पढ़ा है। मैं अब मांस नहीं खा सकता हूँ। मुझे मांस से नफरत-सी हो गयी है। इस पुस्तक के पढ़ने से मेरे मन पर काफी प्रभाव पड़ा है। यह पुस्तक मनुष्य के जीवन को समृद्ध बनानेवाली और वीर्यरक्षण की शक्ति प्रदान करनेवाली है।

यह पुस्तक आज के युवावर्ग के लिए एक अमूल्य भेंट है। आज के युवान जो कि १६ से १८ वर्ष की उम्र में ही वीर्यशक्ति का व्यय करना शुरू कर देते हैं और दीन-हीन, क्षीणसंकल्प, क्षीणजीवन होकर अपने लिए व औरों के लिए भी खूब दुःखद हो जाते हैं, उनके लिए यह पुस्तक सचमुच प्रेरणादायक है। वीर्य ही शरीर का तेज है, शक्ति है, जिसे आज का युवावर्ग नष्ट कर देता है। उसके लिए जीवन में विकास करने का उत्तम मार्ग तथा दिग्दर्शक यह **'यौवन सुरक्षा'** पुस्तक है। तमाम युवक-युवतियों को यह पुस्तक पूज्य बापू की आज्ञानुसार पाँच बार अवश्य पढ़नी चाहिए। इससे बहुत लाभ होता है।'' *-राठौड निलेश दिनेशभाई*

卐

## 'यौवन सुरक्षा' पुस्तक नहीं, अपितु एक शिक्षा-ग्रंथ है

''यह 'यौवन सुरक्षा' एक पुस्तक नहीं अपितु एक शिक्षा-ग्रंथ है, जिससे हम विद्यार्थियों को संयमी जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। सचमुच इस अनमोल ग्रंथ को पढ़कर एक अद्भुत प्रेरणा तथा उत्साह मिलता है। मैंने इस पुस्तक में कई ऐसी बातें पढ़ीं जो शायद ही कोई हम बालकों को बता व समझा सके। ऐसी शिक्षा मुझे आज तक किसी दूसरी पुस्तक से नहीं मिली। मैं इस पुस्तक को जनसाधारण तक पहुँचानेवालों को प्रणाम करता हूँ तथा उन महापुरुष-महामानव को शत-शत प्रणाम करता हूँ जिनकी प्रेरणा तथा आशीर्वाद से इस पुस्तक की रचना हुई।''

*- हरप्रीत सिंह अवतार सिंह, कक्षा-९, राजकीय हाईस्कूल, सेक्टर-२४, चण्डीगढ़।*

卐

## ब्रह्मचर्य ही जीवन है

ब्रह्मचर्य के बिना जगत में, नहीं किसीने यश पाया।
ब्रह्मचर्य से परशुराम ने, इक्कीस बार धरणी जीती।
ब्रह्मचर्य से वाल्मीकि ने, रच दी रामायण नीकी।
ब्रह्मचर्य के बिना जगत में, किसने जीवन रस पाया ?
ब्रह्मचर्य से रामचन्द्र ने, सागर-पुल बनवाया था।
ब्रह्मचर्य से लक्ष्मणजी ने, मेघनाद को मारा था।
ब्रह्मचर्य के बिना जगत में, सब ही को परवश पाया।
ब्रह्मचर्य से महावीर ने, सारी लंका जलायी थी।
ब्रह्मचर्य से अंगदजी ने, अपनी पैज जमायी थी।
ब्रह्मचर्य के बिना जगत में, सबने ही अपयश पाया।
ब्रह्मचर्य से आल्हा-उदल ने, बावन किले गिराये थे।
पृथ्वीराज दिल्लीश्वर को भी, रण में मार भगाये थे।
ब्रह्मचर्य के बिना जगत में, केवल विष-ही-विष पाया।
ब्रह्मचर्य से भीष्म पितामह, शरशय्या पर सोये थे।

ब्रह्मचारी वर शिवा वीर से, यवनों के दल रोये थे ।
ब्रह्मचर्य के रस के भीतर, हमने तो षट्रस पाया ।
ब्रह्मचर्य से राममूर्ति ने, छाती पर पत्थर तोड़ा।
लोहे की जंजीर तोड़ दी, रोका मोटर का जोड़ा।
ब्रह्मचर्य है सरस जगत में, बाकी को कर्कश पाया ।

卐

## शास्त्रवचन

राजा जनक शुकदेवजी से बोले :

**तपसा गुरुवृत्त्या च ब्रह्मचर्येण वा विभो ।**

''बाल्यावस्था में विद्यार्थी को तपस्या, गुरु की सेवा, ब्रह्मचर्य का पालन एवं वेदाध्ययन करना चाहिए।''

(महाभारत – मोक्षधर्म पर्व : ३२६.१५)

**संकल्पाज्जायते कामः सेव्यमानो विवर्धते ।**
**यदा प्राज्ञो विरमते तदा सद्यः प्रणश्यति ॥**

''काम संकल्प से उत्पन्न होता है। उसका सेवन किया जाय तो बढ़ता है और जब बुद्धिमान पुरुष उससे विरक्त हो जाता है, (तब वह काम) तत्काल नष्ट हो जाता है।''(महाभारत – आपद्धर्म पर्व : १६३.८)

''राजन् (युधिष्ठिर) ! जो मनुष्य आजन्म पूर्ण ब्रह्मचारी रहता है, उसके लिए इस संसार में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जो वह प्राप्त न कर सके। एक मनुष्य चारों वेदों को जाननेवाला हो और दूसरा पूर्ण ब्रह्मचारी हो तो इन दोनों में ब्रह्मचारी ही श्रेष्ठ है।'' – भीष्म पितामह

''मैथुन-सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ, सर्वप्रथम तो तरंगों की भाँति ही प्रतीत होती हैं, परंतु आगे चलकर ये कुसंगति के कारण एक विशाल समुद्र का रूप धारण कर लेती हैं। काम-सम्बन्धी वार्तालाप कभी श्रवण न करें।''

– नारदजी

''जब कभी भी आपके मन में अशुद्ध विचारों के साथ किसी स्त्री के स्वरूप की कल्पना उठे तो आप '**ॐ दुर्गादेव्यै नमः ।**' मंत्र

का बार-बार उच्चारण करें और मानसिक प्रणाम करें।'' – शिवानंदजी

''जो विद्यार्थी ब्रह्मचर्य के द्वारा भगवान के लोक को प्राप्त कर लेते हैं, फिर उनके लिए ही वह स्वर्ग है। वे किसी भी लोक में क्यों न हों, मुक्त हैं।'' – छान्दोग्य उपनिषद्

''बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह विवाह न करे। विवाहित जीवन को एक प्रकार का दहकते हुए अंगारों से भरा हुआ खड्डा समझे। संयोग या संसर्ग से इन्द्रियजनित ज्ञान की उत्पत्ति होती है, इन्द्रिजनित ज्ञान से तत्सम्बन्धी सुख को प्राप्त करने की अभिलाषा दृढ़ होती है, संसर्ग से दूर रहने पर जीवात्मा सब प्रकार के पापमय जीवन से मुक्त रहता है।'' – महात्मा बुद्ध

भृगुवंशी ऋषि जनकवंश के राजकुमार से कहते हैं :

**मनसोऽप्रतिकूलानि प्रेत्य चेह च वांछसि।**
**भूतानां प्रतिकूलेभ्यो निवर्तस्व यतेन्द्रियः॥**

''यदि तुम इस लोक और परलोक में अपने मन के अनुकूल वस्तुएँ पाना चाहते हो तो अपनी इन्द्रियों को संयम में रखकर समस्त प्राणियों के प्रतिकूल आचरणों से दूर हट जाओ।'' (महाभारत-मोक्षधर्म पर्व: ३०९.५)

# भस्मासुर क्रोध से बचो

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार - ये सब विकार आत्मानंदरूपी धन को हर लेनेवाले शत्रु हैं। उनमें भी क्रोध सबसे अधिक हानिकर्ता है। घर में चोरी हो जाय तो कुछ-न-कुछ सामान बच जाता है, लेकिन घर में यदि आग लग जाये तो सब भस्मीभूत हो जाता है। भस्म के सिवा कुछ नहीं बचता।

इसी प्रकार हमारे अंतःकरण में लोभ, मोहरूपी चोर आयें तो कुछ पुण्य क्षीण होते हैं लेकिन क्रोधरूपी आग लगे तो हमारा तमाम जप, तप, पुण्यरूपी धन भस्म हो जाता है। अतः सावधान होकर क्रोधरूपी भस्मासुर से बचो। क्रोध का अभिनय करके फुफकारना ठीक है लेकिन क्रोधाग्नि तुम्हारे अंतःकरण को जलाने न लगे, इसका ध्यान रखो।

२५ मिनट तक चबा-चबाकर भोजन करो। सात्त्विक आहार लो। लहसुन, लाल मिर्च और तली हुई चीजों से दूर रहो। क्रोध आये तब हाथ की अंगुलियों के नाखून हाथ की गद्दी पर दबें, इस प्रकार मुट्ठी बंद करो। एक महीने तक किये हुए जप-तप से चित्त की जो योग्यता बनती है वह एक बार क्रोध करने से नष्ट हो जाती है। अतः मेरे प्यारे भैया ! सावधान रहो। अमूल्य मानव-देह ऐसे ही व्यर्थ न खो देना।

दस ग्राम शहद, एक गिलास पानी, तुलसी के पत्ते और संतकृपा चूर्ण मिलाकर बनाया हुआ शर्बत यदि हर रोज सुबह में लिया जाय तो चित्त की प्रसन्नता बढ़ती है। चूर्ण और तुलसी नहीं मिले तो केवल शहद ही लाभदायक है। डायबिटीज के रोगियों को शहद नहीं लेना चाहिए। वे अंगूर एवं किशमिश ले सकते हैं क्योंकि ये डायबिटीज में भी हानि नहीं करते बल्कि बल देते हैं।

## वीर्यवान बनो

पालो व्रत ब्रह्मचर्य विषय-वासनाएँ त्याग। ईश्वर के भक्त बनो जीवन जो प्यारा है॥
उठिये प्रभातकाल रहिये प्रसन्नचित्त। तजो शोक चिन्ताएँ जो दुःख का पिटारा है॥
कीजिये व्यायाम नित्य भ्रात ! शक्ति अनुसार। नहीं इन नियमों पै किसीका इजारा[1] है॥
देखिये सौ शरद औ' कीजिये सुकर्म प्रिय ! सदा स्वस्थ रहना ही कर्तव्य तुम्हारा है॥
लाँघ गया पवनसुत ब्रह्मचर्य से ही सिंधु। मेघनाद मार कीर्ति लखन कमायी है॥
लंका बीच अंगद ने जाँघ जब रोप दई। हटा नहीं सका जिसे कोई बलदायी है॥
पाला व्रत ब्रह्मचर्य राममूर्ति, गामा ने भी। देश और विदेशों में नामवरी[2] पायी है॥
भारत के वीरो ! तुम ऐसे वीर्यवान बनो। ब्रह्मचर्य महिमा तो वेदन में गायी है॥

१ = एकाधिकार २ = प्रसिद्धि

## ब्रह्मचर्य-रक्षा का मंत्र

**ॐ नमो भगवते महाबले पराक्रमाय मनोभिलाषितं मनः स्तंभ कुरु कुरु स्वाहा।**

रोज दूध में निहारकर २१ बार इस मंत्र का जप करें और दूध पी लें। स्वभाव में आत्मसात् कर लेने जैसा यह नियम है।

# गुरुभक्तियोग

## प्रकरण : १

# गुरु की महत्ता

## गुरु ही एकमात्र आश्रय

१. रसोई सीखने के लिए आपको सिखानेवाले की आवश्यकता पड़ती है, विज्ञान सीखने के लिए आपको प्राध्यापक की आवश्यकता पड़ती है। यही नहीं, कोई भी कला सीखने के लिए आपको गुरु चाहिए तो क्या आत्मविद्या सीखने के लिए गुरु की आवश्यकता नहीं है ?

२. संसारसागर से उस पार जाने के लिए सचमुच गुरु ही एकमात्र आधार हैं।

३. सत्य के कंटकमय मार्ग में आपको गुरु के सिवाय और कोई उचित मार्गदर्शन नहीं दे सकता।

४. गुरुकृपा के परिणाम अद्‌भुत होते हैं।

५. आपके दैनिक जीवन के संग्राम में गुरु आपको मार्गदर्शन देंगे और आपका रक्षण करेंगे।

६. गुरु ज्ञान के पथप्रदर्शक हैं।

७. गुरु, ईश्वर, ब्रह्म, आचार्य, उपदेशक, दैवी गुरु आदि सब समानार्थी शब्द हैं।

८. ईश्वर को प्रणाम करने से पहले अपने गुरु को प्रणाम करो क्योंकि वे आपको ईश्वर के पास ले जाते हैं।

९. अपने गुरु से मंत्र की दीक्षा लो। इससे आपको सत्प्रेरणा मिलेगी और आप उच्च स्थिति में पहुँच सकेंगे।

१०. गुरु आपके बदले में साधना नहीं करेंगे। साधना तो आपको ही करनी होगी।

११. गुरु आपको सच्ची राह दिखाएँगे।

१२. गुरु शिष्य के लिए सच्चा योग पसंद कर सकते हैं।

१३. गुरु की कृपा से शिष्य अपने मार्ग में स्थित विघ्नों एवं संशयों को पार कर सकता है।

१४. गुरु शिष्य को भयस्थानों एवं बन्धनों में से उठा लेंगे।

१५. अपने गुरु की सेवा करने के लिए अपने प्राण एवं शरीर का बलिदान देने की तैयारी रखो, तब वे आपकी आत्मा की सँभाल रखेंगे।

१६. गुरु आपको उठाकर समाधि में रख देंगे, ऐसा चमत्कार कर दिखाने की अपेक्षा अपने गुरु से रखना नहीं। आप स्वयं कठिन साधना करो। भूखे आदमी को खुद ही खाना चाहिए।

१७. अगर आपको सद्‌गुरु प्राप्त नहीं होंगे तो आप आध्यात्मिक मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकेंगे।

१८. अपने गुरु की पसन्दगी सोच-विचारकर एवं धैर्य से करो क्योंकि बाद में आप गुरु से अलग नहीं हो सकते। अलग होना बड़े-में-बड़ा पाप है।

१९. गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पवित्र एवं जीवनपर्यन्त का है। यह बात ठीक से समझ लेना।

## साधना का रहस्य

२०. पूरे अन्तःकरण से, हृदयपूर्वक गुरु की सेवा करो। किसी भी प्रकार की अपेक्षा से रहित होकर अपने गुरु के प्रति प्रेम रखो। अपनी आय का दसवाँ हिस्सा आपके गुरु को समर्पित करो। गुरु के चरणकमलों का ध्यान करो। इसी जन्म में आपको आत्म-साक्षात्कार होगा। यह साधना का रहस्य है।

२१. शिष्य के लिए गुरु की पूजा करने हेतु गुरुवार पवित्र दिन है।

२२. जिनको आत्मा विषयक ज्ञान है, शास्त्रों में जो पारंगत हैं, जो तमाम उत्कृष्ट गुणों से युक्त हैं वे सद्‌गुरु हैं।

२३. जिसको आत्म-साक्षात्कारी गुरु मिलते हैं वह सचमुच तीन गुना भाग्यशाली होता है।

२४. अपने गुरु की क्षतियाँ न देखो। अपनी क्षतियाँ देखो और उन्हें दूर करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो।

२५. गुरु की कसौटी करना मुश्किल है। एक कबीरजी ही दूसरे कबीरजी को पहचान सकते हैं। अपने गुरु में ईश्वर के गुणों का आरोपण करो। तभी आपको लाभ होगा।

२६. जिनके सान्निध्य में आपको आध्यात्मिक उन्नति महसूस हो, जिनके वक्तव्यों से आपको प्रेरणा मिले, जो आपके संशयों को दूर कर सकें, जो काम, क्रोध, लोभ से मुक्त हों, जो निःस्वार्थ हों, प्रेम बरसानेवाले हों, जो अहं से मुक्त हों, जिनके व्यवहार में गीता, भागवत, उपनिषदों का ज्ञान छलकता हो, जिन्होंने प्रभुनाम की प्याऊ लगाई हो उन्हें आप गुरु करना। ऐसे जाग्रत महापुरुष के शरण की खोज करना।

## गुरुभक्ति के लिए योग्यता

२७. गुरु के पास जाने के लिए आप योग्य अधिकारी होने चाहिए। आपमें वैराग्य की भावना, विवेक, गांभीर्य, आत्मसंयम एवं सदाचार जैसे गुण होने चाहिए।

२८. अगर आप ऐसा कहेंगे कि 'अच्छा गुरु कोई है ही नहीं...' तो गुरु भी कहेंगे कि 'अच्छा शिष्य कोई है ही नहीं।' आप शिष्य की योग्यता प्राप्त करें तो आपको सद्गुरु की योग्यता, महत्ता दिखेगी और समझ में आयेगी।

२९. गुरु आपके उद्धारक एवं संरक्षक हैं। सदैव उनकी पूजा करो, उनका आदर करो।

३०. गुरुपद भयंकर अभिशाप है।

३१. जो सत्, चित् और परमानन्दस्वरूप हैं ऐसे गुरु को सदा साष्टांग प्रणाम करो।

३२. शिष्य को अपने गुरु की मूर्ति सदा स्मरण में रखना चाहि गुरु के पवित्र नाम का सदा जप करना चाहिए, उनकी आज्ञा क पालन करना चाहिए। इसीमें साधना का रहस्य निहित है।

३३. शिष्य को गुरु की पूजा करनी चाहिए क्योंकि गुरु से ब और कोई नहीं है।

३४. गुरु के चरणामृत से संसारसागर सूख जाता है और मनुष् आवश्यक आत्मसम्पत्ति प्राप्त कर सकता है।

३५. गुरु का चरणामृत शिष्य की तृषा शांत कर सकता है।

३६. आप जब ध्यान करने बैठें तब अपने गुरु का एवं पूर्व के सब संतों का स्मरण करें। आपको उनके आशीर्वाद प्राप्त होंगे।

३७. महात्माओं के ज्ञान के शब्द सुनें और उनका अनुसर करें।

३८. शास्त्र एवं गुरु के द्वारा निर्दिष्ट शुभ कर्म करें।

३९. शांति का मार्ग दिखाने के लिए गुरु अनिवार्य हैं।

४०. 'वाहे गुरु' यह गुरु नानक के अनुयाइयों का गुरुमंत्र है 'गुरु ग्रंथ साहब' पढ़ो तो आपको गुरु की महत्ता का परिचय होगा।

४१. गुरु की पूजा करके सदा उनका स्मरण करो। इस आपको सुख प्राप्त होगा।

४२. श्रद्धा माने शास्त्रों में, गुरु के शब्दों में, ईश्वर में औ अपने-आपमें विश्वास।

४३. किसी भी प्रकार के फल की अपेक्षा से रहित होकर गु की सेवा करना, यह सर्वोच्च साधना है।

४४. श्रवण माने गुरु के चरणकमलों में बैठकर वेद का श्रव करना।

४५. गुरुसेवा महान शुद्धि करनेवाली है।

४६. आत्म-साक्षात्कार के लिए गुरु की कृपा आवश्यक है।

४७. जितनी भक्तिभावना प्रभु के प्रति रखनी चाहिए, उत

ही गुरु के प्रति रखो, तभी सत्य की अनुभूति होगी।

४८. सदैव एक ही गुरु से लगे रहो।

४९. ईश्वर आदिगुरु हैं जिनको स्थान एवं समय (देश-काल) की सीमा नहीं होती। एक शाश्वत् युग से दूसरे शाश्वत् युग तक वे समग्र मनुष्य जाति के गुरु हैं।

५०. कुण्डलिनी शक्ति को उसकी सुषुप्त अवस्था में से जागृत करने के लिए गुरु की अनिवार्य आवश्यकता रहती है।

## गुरु के प्रकाश का अनुसरण करो

५१. अज्ञान का नाश करनेवाले तथा ज्ञान देनेवाले सद्गुरु के चरणकमलों में कोटि-कोटि प्रणाम !

५२. समदर्शी संत-महात्मा और गुरु के सत्संग का एक भी मौका चूकना नहीं।

५३. अपने स्थूल मन के कहे अनुसार कभी चलना नहीं। अपने गुरु के वचनों का अनुसरण करें।

५४. उच्च आत्माओं एवं गुरु के स्मरण मात्र से सांसारिक मनुष्यों की नास्तिक वृत्तियों का नाश होता है और अन्तिम मुक्ति हेतु प्रयास करने के लिए उनको प्रेरणा मिलती है। तो फिर गुरुसेवा की महिमा का तो पूछना ही क्या ?

५५. जिस प्रकार दो खरगोशों के पीछे दौड़नेवाला मनुष्य दो में से एक को भी नहीं पकड़ सकता उसी प्रकार जो शिष्य दो गुरुओं के पीछे दौड़ता है वह अपने आध्यात्मिक मार्ग में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।

५६. अहंभाव का नाश करने से शिष्यत्व की शुरूआत होती है।

**५७. शिष्यत्व की कुँजी है ब्रह्मचर्य और गुरुसेवा।**

५८. शिष्यत्व की पहचान माने गुरुभक्ति।

५९. गुरु के चरणकमलों में आजीवन आत्म-समर्पण करना, यह शिष्यत्व की निशानी है।

६०. गुरुदेव की मूर्ति का नियमित ध्यान करना, यह शिष्यत्व का राजमार्ग है।

६१. गुरु महाराज के प्रति सम्पूर्णतः आज्ञापालन का भाव रखना, यह शिष्यत्व की नींव है।

६२. गुरु से मिलने की उत्कट इच्छा और उनकी सेवा करने की तीव्र आकांक्षा मुमुक्षुत्व की निशानी है।

६३. देव, द्विज, आध्यात्मिक गुरु एवं ज्ञानी पुरुषों की पूजा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शरीर का तप है।

६४. ब्राह्मणों, पवित्र आचार्यों एवं ज्ञानी पुरुषों को प्रणाम करना, ब्रह्मचर्य और अहिंसा - ये शारीरिक तपश्चर्याएँ हैं।

६५. माँ-बाप और आचार्य की सेवा, गरीब और रोगियों की सेवा भी शारीरिक तपश्चर्या है।

## गुरु द्वारा ब्रह्मज्ञान

६६. ब्रह्म विषयक ज्ञान अति सूक्ष्म है। शंकाएँ पैदा होती हैं और उनको दूर करने के लिए एवं मार्ग दिखाने के लिए ब्रह्मज्ञानी आध्यात्मिक गुरु की आवश्यकता रहती है।

६७. सत्य के सच्चे खोजी को सहायभूत होने के लिए गुरु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

६८. आध्यात्मिक गुरु साधक को अपनी प्रेमपूर्ण एवं विवेकपूर्ण निगरानी में रखते हैं तथा आध्यात्मिक विकास के विभिन्न स्तरों में से उसे आगे बढ़ाते हैं।

६९. सच्चे गुरु सदैव शिष्य के अज्ञान का नाश करने में तथा उसे उपनिषदों का ज्ञान देने में संलग्न रहते हैं।

७०. वेद भी ज्ञानमार्ग के पथप्रदर्शक गुरु की प्रशस्ति गाना चूकते नहीं हैं।

७१. साधक कितना भी बुद्धिमान हो फिर भी गुरु अथवा आध्यात्मिक आचार्य की सहाय के बिना वेदों की गहनता प्राप्त

करना या उनका अभ्यास करना उसके लिए संभव नहीं है।

७२. गुरु अपने शिष्य की दैवी शक्तियों को जागृत करते हैं।

७३. प्रथम तो अपने गुरु को, आध्यात्मिक आचार्य को खोज लो जो आपको अनन्त तत्त्व अथवा शाश्वत् चेतनप्रवाह के साथ एकत्व साधने में सहाय कर सकें।

७४. अध्यात्ममार्ग में सलामतीपूर्वक, दृढ़ता से आगे बढ़ने के लिए अपने गुरु के द्वारा ही शिष्य को सूचनाएँ मिल सकती हैं।

७५. अपने गुरु की इच्छा के शरण हो जाओ। उनको आत्मसमर्पण करो, तभी आपका उद्धार होगा।

## गुरु ही ईश्वर

७६. ईश्वर ही गुरु के रूप में दिखते हैं।

७७. सच्चे गुरु एवं सच्चे साधक बहुत कम होते हैं।

७८. योग्य शिष्यों को यशस्वी गुरु प्राप्त होते हैं।

७९. ईश्वर की कृपा गुरु का रूप लेती है।

८०. गुरु अपने शिष्य को अपने जैसा बनाते हैं, अतः वे पारस से भी महान हैं।

८१. संसारसागर को पार करने के लिए गुरु जैसी कोई नौका नहीं है।

८२. ''हे राम ! अपने तन-मन-धन अपने सद्गुरु के चरणों में समर्पित कर दो, जिन्होंने तुम्हें परम सुख या मोक्ष का मार्ग दिखाया है।''

८३. अपने गुरु या आचार्य के समक्ष हररोज अपने दोष कबूल करो, तभी आप इन दुन्यावी निर्बलताओं से ऊपर उठ सकोगे।

८४. गुरु दृष्टि, स्पर्श, विचार या शब्द के द्वारा शिष्य का परिवर्तन कर सकते हैं।

८५. गुरु और ईश्वर सचमुच एकरूप हैं।

८६. गुरु इस दुनिया में ईश्वर के सच्चे प्रतिनिधि हैं।

८७. गुरु आपके लिए 'इलेक्ट्रिक लिफ्ट' हैं। वे आपको पूर्णता के शिखर पर पहुँचाएँगे।

८८. गुरु के प्रति निःस्वार्थ एवं भक्तिभावपूर्वक सेवा- यह पूजा, भक्ति, प्रार्थना और ध्यान है।

८९. ''हे राम ! जिससे आत्म-साक्षात्कार की साधना को गति मिलती है, जिससे चेतना की जागृति होती है, उसे गुरुदीक्षा कहते हैं।''

९०. यदि आप गुरु में ईश्वर को नहीं देख सकते तो फिर और किसमें देख सकेंगे ?

९१. 'जब तुम मेरे समक्ष निखालिस होकर अपना हृदय खोलोगे तभी मैं तुम्हें सहाय कर सकूँगा।'

९२. अपने मित्रों, आदर्शों तथा गुरु या आध्यात्मिक आचार्य के प्रति वफादार एवं सन्निष्ठ रहो।

## प्रकरण : २

# गुरुभक्ति का अभ्यास

## अनुकूल होने का सिद्धान्त

१. अनुकूल होने का विरल गुण बहुत कम लोगों में होता है और यह एक उत्तम गुण है। उसके द्वारा शिष्य अपना कैसा भी स्वभाव हो फिर भी वह अपने गुरु के प्रति अनुकूल बनता है।

२. आजकल प्रायः सभी साधक अपने गुरुभाइयों के अनुकूल होना नहीं जानते।

३. शिष्य को अपने गुरु के अनुकूल होना और उनसे हिलमिल जाना चाहिए।

४. गुरुभक्ति जगाने के लिए नम्रता और आज्ञापालन के गुण जरूरी हैं।

५. शिष्य जब एक ही गुरु के सान्निध्य में रहते हुए अपने गुरुभाइयों के साथ अनुकूल होना नहीं जानता तब घर्षण होता है और इस प्रकार वह अपने गुरु को नाराज करता है।

६. जहाज का कप्तान सदैव सावधान रहता है। मच्छीमार भी सदैव सावधान रहता है। ऑपरेशन थीएटर में सर्जन सदैव सावधान रहता है। इसी प्रकार भूखे-प्यासे शिष्य को भी गुरुसेवा में सदैव सावधान रहना चाहिए।

## शिष्यत्व के मूल तत्त्व

७. अति नींद करनेवाला, जड़, स्थूलकाय, निष्क्रिय, आलसी एवं मूर्ख मन का शिष्य गुरु संतुष्ट हों, इस प्रकार उनकी सेवा नहीं कर सकता।

८. जिस शिष्य में उपदेश के आचरण का गुण होता है वह अपने गुरु की सेवा में सफल होता है। आबादी एवं अमरत्व उसको आ मिलते हैं।

९. गुरु की सेवा करने की उत्कण्ठा एवं लगन शिष्य में होनी चाहिए।

१०. गुरु के प्रति भक्तिभाव तमाम योग्य मानवमहेच्छाओं का एकमात्र ध्येय है।

११. शिष्य जब गुरु के पास रहकर अभ्यास करता हो तब उसके कान श्रवण के लिए तत्पर होने चाहिए। वह जब गुरु की सेवा करता हो तब उसकी दृष्टि सावधान होनी चाहिए।

१२. शिष्य को अपने गुरु, माँ-बाप, बुजुर्ग, सब योगी एवं संतों के साथ अच्छी तरह बरताव करना चाहिए।

१३. अच्छी तरह बरताव करना माने अपने गुरु के प्रति अच्छा आचरण करना।

१४. गुरु शिष्य के आचरण से उसका स्वभाव तथा उसके मन की पद्धति जान सकते हैं।

१५. अपने पवित्र गुरु के प्रति अच्छा आचरण परम सुख के धाम का पासपोर्ट है।

१६. शिष्य जब गुरु की सेवा करता हो तब उसे तरंगी नहीं बनना चाहिए।

१७. अपने गुरु की सेवा करके प्राप्त किये हुए व्यवहारु ज्ञान की अभिव्यक्ति है आचरण।

१८. दैवी एवं उत्तम गुण दुकान से खरीद करने की चीजें नहीं हैं। वे गुण तो लम्बे समय तक की हुई गुरुसेवा, श्रद्धा एवं भक्तिभाव द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

## गुरु को आत्मसमर्पण

१९. ज्ञानार्जन के बाद गुरु को राजी-खुशी से, शीघ्र, बिना झिझक से एवं बहुत राशि में गुरुदक्षिणा दो।

२०. गुरुदक्षिणा से असंख्य पापों का नाश होता है।

२१. गुरु को दी हुई दक्षिणा हृदयशुद्धि करनेवाली महान वस्तु है।

२२. जो दक्षिणा गुरु को दी जाती है वह व्यवहारु प्रेम का प्रतीक है।

२३. तमाम गुरुभाइयों के कल्याण के लिए उदार भावना विकसित करो।

२४. दान का प्रारम्भ अपने गुरु से ही होता है।

२५. गुरु को दक्षिणा देने की आदत डालनी चाहिए।

२६. शिष्य के पास जो कुछ हो, वह गुरु को सप्रेम भेंट चढ़ा देना चाहिए।

२७. गुरु के द्वारा चाहे जैसा भोजन, कपड़े एवं निवास प्राप्त हों उनसे शिष्य को सन्तोष करना चाहिए। अपने सच्चे मन एवं हृदय से गुरु की सेवा में तत्पर रहना चाहिए।

२८. गुरु की सेवा के दौरान कैसी भी परिस्थितियों में साधक

को मिलनेवाला संतोष सदा आनन्द और शक्ति देता है ।

२९. जो कुछ घटना घटित हो, उसमें सदा संतोष रखना चाहिए। सदैव याद रखो : उच्चात्मा गुरु को जो अच्छा लगता है वह आपकी पसन्दगी की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है ।

३०. संतोष जैसे परम गुण से युक्त शिष्य पर ही गुरु की कृपा उतरती है ।

३१. गुरु की सेवा के दौरान शिष्य को अपनी साधारण बुद्धि का उपयोग करना चाहिए ।

## विवेक के घटक

३२. उच्चात्मा गुरु की कृपा के द्वारा शिष्य के हृदय में विवेकबुद्धि का उदय होता है ।

३३. जिसको नैसर्गिक विवेकबुद्धि प्राप्त हुयी है उसे अवश्य गुरुकृपा मिलती है ।

३४. किसी भी चीज की स्पृहा के बिना अपने गुरु के प्रति फर्ज अदा करो ।

३५. शिष्य का कर्त्तव्य गुरु के आदेशों का वफादारीपूर्वक एवं अविलम्ब पालन करना है ।

३६. गुरु के प्रति अपने छोटे-छोटे कर्त्तव्यों को भी निभाने में सतर्क रहो। आपको बहुत आनन्द एवं शांति की प्राप्ति होगी ।

३७. गुरु की सेवा में दासत्व जैसी कोई चीज नहीं है ।

३८. गुरु की सेवा माने गुरु को आत्म-समर्पण ।

३९. सब प्रकार की सेवा पवित्र एवं उत्तम है ।

४०. गुरु के प्रति अपना कर्त्तव्य अदा करना माने सत्य धर्म का आचरण करना ।

४१. अपने गुरु कें प्रति अदा की हुयी सेवा नैतिक फर्ज है, आध्यात्मिक 'टॉनिक' है। उससे मन एवं हृदय दैवी गुणों से भरपूर बनते हैं, पुष्ट बनते हैं ।

## सम्पूर्ण शरणागति

४२. तत्पर एवं सन्निष्ठ शिष्य अपने आचार्य की सेवा में अपने सम्पूर्ण मन एवं हृदय को लगा देता है।

४३. तत्पर शिष्य किसी भी परिस्थिति में अपने गुरु की सेवा करने का साधन खोज लेता है।

४४. अपने गुरु की सेवा करते हुए जो साधक सब आपत्तियों को सह लेता है वह अपने प्राकृत स्वभाव को जीत सकता है।

४५. शांति का मार्ग दिखानेवाले गुरु के प्रति शिष्य को सदैव कृतज्ञ रहना चाहिए।

४६. कृतघ्न, बेवफा शिष्य इस दुनिया में हीनभाग एवं दुःखी है। उसका भाग्य दयनीय, शोचनीय एवं अफसोसजनक है।

## गुरु की प्रतिष्ठा

४७. पवित्र वेदों के रहस्योद्घाटक, आदि एवं पूर्ण ब्रह्मरूप महान गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ, जो ज्ञान-विज्ञानरूप वेदों के सार को भ्रमर की तरह चूसकर अपने भक्तों को देते हैं।

४८. सच्चे शिष्य को अपने हृदय के कोने में अपने सम्माननीय गुरु के चरणकमलों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

४९. शिष्य जब अपने गुरु से मिले तब उसका सबसे प्रथम फर्ज है खूब नम्र भाव से अपने गुरु को प्रणाम करना।

५०. भागवत में अवधूत की एक कथा आती है जिनको चौबीस उपगुरु थे, जैसे कि पंचमहाभूत, सूर्य, चन्द्र, समुद्र, प्राणी आदि। नगण्य होते हुए भी इन सबने अपने-अपने ढंग से उनको सर्वोच्च ज्ञान दिया था।

५१. जो शिष्य अन्य किसीका विचार किये बिना, एकाग्र मन से केवल अपने गुरु की ही पूजा करता है वह श्रेष्ठ शिष्य है।

५२. जब साधक में सत्त्व की वृद्धि होती है तब वह सदाचारी

बनता है और उसमें गुरु के प्रति भक्तिभाव विकसित होता है।

५३. गुरु समदृष्टि के प्रतीक हैं अतः वे अपने तमाम शिष्यों के प्रति समभाव रखते हैं।

५४. श्रीकृष्ण उद्धवजी से कहते हैं : ''मैं पुरोहितों में वशिष्ठ हूँ, गुरुओं में बृहस्पति हूँ, साधुओं में मैं नारायण हूँ एवं ब्रह्मचारियों में सनत्कुमार हूँ।''

५५. शिष्य जब अपने गुरु की सेवा करता हो तब उसे दूसरों की सेवा कभी लेनी नहीं चाहिए। आध्यात्मिक विकास में उसके लिए यह एक महान अवरोध है।

५६. दूसरों को गुरुभाई बनाकर अपने गुरु का यश बढ़ाओ। गुरुभक्ति विकसित करने का यह राजमार्ग है।

## विद्वत्ता से बढ़कर नम्रता है

५७. आप महान विद्वान एवं धनवान हों फिर भी गुरु एवं महात्माओं के समक्ष आपको बहुत ही नम्र होना चाहिए।

५८. शिष्य अधिक विद्वान न हो लेकिन वह मूर्तिमंत नम्रता का स्वरूप हो तो उसके गुरु को उस पर अत्यन्त प्रेम होता है।

५९. अगर आपको नल से पानी पीना हो तो आपको स्वयं नीचे झुकना पड़ेगा। इसी प्रकार अगर आपको गुरु के पवित्र मुख से बहते हुए अमरत्व के पावन अमृत का पान करना हो तो आपको विनम्रता का प्रतीक बनना पड़ेगा।

६०. जो मनुष्य वफादार एवं बिलकुल नम्र बनते हैं उनके ऊपर ही गुरु की कृपा उतरती है।

६१. गुरु के चरणकमलों की पूजा के लिए नम्रता के पुष्प के अलावा और कोई श्रेष्ठ पुष्प नहीं है।

## श्रद्धा का अर्थ

६२. श्रद्धा माने गुरु में विश्वास।

६३. श्रद्धा माने अपने पवित्र आचार्य एवं महात्माओं के कथन, वाणी, कार्यों, लेखन एवं उपदेशों में विश्वास।

६४. आचार्य प्रमाण के रूप में जो कहें उसमें अन्य कोई प्रमाण की परवाह किये बिना दृढ़ विश्वास रखना- उसका नाम है श्रद्धा।

६५. गुरु में सम्पूर्ण श्रद्धा रखो और अपने-आपको पूर्णतः गुरु की शरण में ले जाओ। वे आपकी निगरानी करेंगे। इससे सब भय, अवरोध एवं कष्ट पूर्णतः नष्ट होंगे।

६६. सद्‌गुरु में दृढ़ श्रद्धा आत्मा की उन्नति करती है, हृदय को शुद्ध करती है एवं आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाती है।

६७. गुरु के उपदेशों में सम्पूर्ण श्रद्धा रखना, यह शिष्यों का सिद्धांत होना चाहिए।

## आज्ञापालन के प्रकार

६८. आज्ञापालन माने गुरु एवं बुजुर्गों के आदेशों को पालने की इच्छा।

६९. जो शिष्य अपने गुरु की आज्ञा मानता है वही अपनी स्थूल प्रकृति पर नियंत्रण पा सकता है।

७०. नम्रता, भक्तिभाव, निरहंकारीपना आदि सब दिव्य गुण गुरु की आज्ञा का पालन करने से ही प्रकट होते हैं।

७१. गुरु के आदेशों में शंका नहीं करना या उनके पालन में आलस्य नहीं करना, यही गुरु के प्रति सच्ची आज्ञाकारिता है।

७२. गुरु की आज्ञा का पालन सब कार्यों में सफलता की जननी है।

७३. गुरु जो आज्ञा करें वह काम करना और मना करें वह काम न करना, यही गुरु के प्रति सच्ची आज्ञाकारिता है।

७४. दंभी शिष्य गुरु की आज्ञा भय के कारण मानता है। सच्चा शिष्य प्रेम के खातिर शुद्ध प्रेम से गुरु की आज्ञा का पालन करता है।

७५. शिष्य का प्रथम पाठ है गुरु के प्रति आज्ञाकारिता।

७६. भलाई की एक नदी है जो ईश्वर के चरणकमलों से निकलती है और गुरु के आज्ञापालन के मार्ग से बहती है।

७७. यदि शिष्य के हृदय में संतोष न हो तो इससे यह बात सिद्ध होती है कि उसमें गुरु के प्रति आज्ञापालन का पूरा भाव नहीं है।

७८. आपमें भाव एवं तत्परता होगी तो गुरु आपकी भेंट से प्रसन्न होंगे, भेंट के प्रकारों से नहीं।

७९. शिष्य को अत्यन्त तत्परतापूर्वक एवं ध्यानपूर्वक अपने गुरु की सेवा करनी चाहिए।

## आध्यात्मिक नीति-रीति

८०. अपने-आपको आचार्य की सेवा में सौंप दो। तन, मन एवं आत्मा को खूब तत्परता से अर्पण कर दो।

८१. गुरुश्रद्धा का सक्रिय स्वरूप माने गुरु के चरणकमलों में सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करना।

८२. गुरुसेवा के नित्यक्रम में खूब नियमित रहो।

८३. अपने आचार्य की दैनिक निजी सेवा में घड़ी के समान नियमित रहो।

८४. अपने आचार्य एवं हरएक संत का आदर करना, यह नम्रता का चिह्न है।

८५. आचार्य एवं आदरणीय व्यक्तियों की उपस्थिति में ऊँची आवाज में बोलो नहीं।

८६. गुरु के वचनों में विश्वास रखना, यह अमरत्व के द्वार खोलने के लिए गुरुचाबी है।

८७. जब आप किसी महान गुरु के शिष्य हों तब अन्य किसीको अपने शिष्य बनाओ नहीं एवं खुद गुरु बनने का प्रयास करो नहीं। उनको अपने गुरुभाई मानो।

८८. गुरु करना और बाद में उनको धोखा देकर उनका त्याग

कर देना इसकी अपेक्षा गुरु नहीं करना और भवाटवी में भटकना बेहतर है।

८९. जो मनुष्य विषयवासना का दास है वह गुरु की सेवा नहीं कर सकता, गुरु को आत्मसमर्पण नहीं कर सकता। फलतः वह संसार के कीचड़ से अपने-आपको बचा नहीं सकता।

## मिलन की शक्ति

९०. गुरु से धोखा करना यह अपनी ही कब्र खोदने का साधन है।

९१. गुरु और शिष्य के बीच जो शक्ति जोड़ने का काम करती है वह शुद्ध प्रेम होना चाहिए।

९२. गुरु का कृपा-प्रसाद और शिष्य की कोशिश मिलती है तब अमरत्वरूपी बालक का जन्म होता है।

९३. शिष्य को ज्ञान दिये बिना ही गुरु को उसके पास से गुरुदक्षिणा नहीं लेना चाहिए।

९४. शिष्य को अपने समग्र जीवन के दौरान गुरु के यश की पताका लहराना चाहिए।

९५. गुरु के चरणकमल में आत्मसमर्पण करना यह शिष्य का आदर्श होना चाहिए।

९६. गुरु महान हैं। विपत्तियों से डरना नहीं। हे वीर शिष्यों! आगे बढ़ो।

९७. गुरुकृपा अणुशक्ति से अधिक शक्तिशाली है।

९८. शिष्य के ऊपर जो आपत्तियाँ आती हैं, वे छुपे वेश में गुरु के आशीर्वाद के समान होती हैं।

९९. गुरु के चरणकमलों में आत्मसमर्पण करना यह सच्चे शिष्य का जीवनमंत्र होना चाहिए।

## गुरु की सेवा

१००. साक्षात् प्रेम एवं आनन्दस्वरूप अपने गुरु की सेवा करने

का सौभाग्य प्राप्त हो जाय तो सेवा में असीम आनन्द एवं परम सुख मिलेगा।

१०१. नम्रतापूर्वक, स्वेच्छापूर्वक, संशयरहित होकर, बाह्य आडम्बर के बिना, द्वेषरहित बनकर, असीम प्रेम से अपने गुरु की सेवा करो।

१०२. पृथ्वी पर के साक्षात् ईश्वरस्वरूप गुरु के चरणकमलों में आत्मसमर्पण करोगे तो वे भयस्थानों से आपका रक्षण करेंगे, आपकी साधना में आपको प्रेरणा देंगे तथा अन्तिम ध्येय तक आपके पथप्रदर्शक बनेंगे।

१०३. गुरु की कृपा अखूट, असीम और अवर्णनीय है।

१०४. गुरु का उच्छिष्ट प्रसाद लेने से असाध्य रोग मिटते हैं।

१०५. गुरु पर श्रद्धा एक ऐसी चीज है जो प्राप्त करने के बाद और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता।

१०६. श्रद्धा के द्वारा निमेषमात्र में आप परम पदार्थ पा लेंगे।

१०७. गुरु के वचन एवं कर्म में श्रद्धा रखो, श्रद्धा रखो, श्रद्धा रखो। गुरुभक्ति विकसित करने का यही मार्ग है।

*प्रकरण : ३*

# साधक के सच्चे पथप्रदर्शक

## *शिष्यत्व के मूल सिद्धान्त*

१. साधक अगर श्रद्धा एवं भक्तिभाव से अपने गुरु की सेवा नहीं करेगा तो उसके तमाम व्रत, तप आदि कच्चे घड़े में से पानी की तरह टपककर बह जायेंगे।

२. मन एवं इन्द्रियों का संयम, गुरुभगवान का ध्यान, गुरु की सेवा में धैर्य, सहनशक्ति, आचार्य के प्रति भक्तिभाव, संतोष, दया,

स्वच्छता, सत्यवादिता, सरलता, गुरु की आज्ञा का पालन... ये सब अच्छे शिष्य के लक्षण हैं।

३. सत्य के साधक को मन एवं इन्द्रियों पर संयम रखकर अपने आचार्य के घर रहना चाहिए और खूब श्रद्धा एवं आदरपूर्वक गुरु की निगरानी में शास्त्रों का अभ्यास करना चाहिए।

४. उसे चुस्तता से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और आचार्य की पूजा करनी चाहिए।

५. शिष्य को चाहिए कि वह आचार्य को साक्षात् ईश्वर के रूप में माने, मनुष्य के रूप में कदापि नहीं।

६. शिष्य को आचार्य के दोष नहीं देखने चाहिए क्योंकि वे तमाम देवों के प्रतिनिधि हैं।

७. शिष्य को गुरु के लिए भिक्षा माँगकर लाना चाहिए एवं खूब श्रद्धा तथा भक्तिभावपूर्वक उन्हें भोजन कराना चाहिए।

८. शिष्य को सब सुख-वैभव का विष की तरह त्याग कर देना चाहिए और अपना शरीर गुरु की सेवा में सौंप देना चाहिए।

९. शास्त्रों का अभ्यास पूरा करके शिष्य को चाहिए कि वह गुरु को दक्षिणा दे और उनकी आज्ञा लेकर अपने घर वापस लौटे।

१०. जो गुरुपद का उपयोग आजीविका के साधन के रूप में करता है, वह धर्म का नाश करनेवाला है।

११. ब्रह्मचारी का मुख्य कर्त्तव्य पूरे हृदय से अपने आचार्य की सेवा करना है।

१२. गुरु की कृपा प्राप्त करने के लिए उनकी निजी सेवा और उनकी आज्ञा का पालन जितना सहायरूप है उतना सहायरूप तप, यात्रा, भेंट, दान आदि नहीं है।

१३. वेद, प्रत्यक्ष ज्ञान, गुरुवचन और अनुमान ये चार ज्ञान के प्रमाण हैं।

१४. हरएक कर्म में दुःख के बीज समाविष्ट हैं किन्तु गुरु की

सेवा के विषय में ऐसा नहीं है।

१५. गुरु के आदेशों का पालन करने के लिए शिष्य को कभी भी धन, भोग-विलास, सुख-वैभव और अपने शरीर का भी त्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

## गुरु सम्बन्धी धर्म

१६. जो तन, मन और धन को गुरु के चरणों में अर्पण कर देता है वह गुरुभक्ति का विकास कर लेता है।

१७. जिससे गुरुचरणों के प्रति भक्तिभाव बढ़े, वह परम धर्म है।

१८. नियम माने गुरुमंत्र का जप, गुरुसेवा के दौरान तपश्चर्या, गुरुवचन में श्रद्धा, आचार्य-सेवन, संतोष, पवित्रता, शास्त्र का अध्ययन और गुरुभक्ति अथवा गुरु की शरण।

१९. तितिक्षा माने गुरु के आदेशों का पालन करते हुए दुःख सहन करना।

२०. त्याग माने गुरु का निषेध हो ऐसे कर्मों का त्याग करना।

२१. जो अपने गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता तथा गुरु की सेवा नहीं करता वह मूर्ख है।

२२. भगवान श्रीकृष्ण उद्धवजी से कहते हैं : ''दुष्प्राप्य मनुष्यदेह मजबूत नौका जैसी है। गुरु उस नौका के कर्णधार हैं। वे नौका को सँभालते हैं। उस नौका को चलानेवाला मैं (कृष्ण) अनुकूल पवन हूँ।'' जो मनुष्य ऐसी नौका और ऐसे साधन से भवसागर पार करने का प्रयत्न नहीं करता वह सचमुच आत्मघातक है।

२३. मनुष्य अनादि अज्ञान के प्रभाव में होने के कारण गुरु की सहाय के बिना आत्म-साक्षात्कार नहीं कर सकता।

२४. गुरु जो कहते हैं उसमें कुछ गलत हो सकता है ? उसके लिए कारण होगा ही। मनुष्य-बुद्धि वहाँ पहुँच नहीं सकती।

२५. गुरु की निजी सेवा सर्वोच्च प्रकार का योग है।

२६. गुरु की निजी सेवा करते हुए शिष्य अपने मन को वश में कर सकता है।

## प्रकृति के तीन गुण

२७. क्रोध, लोभ, असत्य, क्रूरता, याचना, दंभ, झगड़ा, भ्रम, निराशा, शोक, दुःख, निद्रा, भय, आलस्य... ये सब तमोगुण हैं, जो अनेक जन्मों के यत्नों के बावजूद भी जीते नहीं जा सकते। किन्तु श्रद्धा एवं भक्ति से गुरु की की हुई निजी सेवा इन सब दुर्गुणों का नाश कर देती है।

२८. गुरु के वचन में और ईश्वर में श्रद्धा रखना यह सत्त्वगुण की निशानी है।

२९. गुरु के भोजन के बाद जो खुराक बचा हो, वह बहुत सात्त्विक होता है।

## कामवासना का बिल्कुल त्याग

३०. साधक को विजातीय व्यक्ति का सहवास नहीं करना चाहिए। जो लोग ऐसे सहवास के शौकीन हों, उनका संग भी नहीं करना चाहिए क्योंकि उससे मन क्षुब्ध होता है। फिर वह शिष्य भक्तिभाव और श्रद्धापूर्वक अपने गुरु की सेवा नहीं कर सकता।

३१. शिष्य अगर अपने आचार्य की आज्ञा का पालन नहीं करता है तो उसकी साधना व्यर्थ है।

३२. बुद्धिमान साधक को तमाम प्रकार के खराब संग से दूर रहना चाहिए। उसे संतों एवं गुरु का संग करना चाहिए। उनके संग से वैराग्य विकसित होता है, तमाम वासनाएँ दूर होकर मन शुद्ध बनता है।

३३. जैसे अग्नि के पास बैठने से ठण्ड, भय, अन्धकार दूर होते हैं ऐसे ही जो शिष्य गुरु के पास रहता है उसके अज्ञान, मृत्यु का भय तथा सब अनिष्टों का नाश होता है।

३४. जो इस संसारसागर में इधर-उधर डूबते-उतराते रहते हैं उनके लिए बुद्धिमान गुरु का आश्रय श्रेष्ठ है।

३५. सूर्य के पास से केवल एक बाह्य दृष्टि ही प्राप्त होती है किन्तु गुरु के पास से ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई प्रकार की अनेकों दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं।

## गुरु माने साक्षात् देवता

३६. गुरु इस पृथ्वी पर साक्षात् ईश्वर हैं, सच्चे मित्र एवं विश्वासपात्र बन्धु हैं।

३७. "हे भगवान ! हे भगवान ! मैं आपके आश्रय में आया हूँ। मुझ पर दया करो। मुझे जन्म-मृत्यु के सागर से बचाओ।" ऐसा कहकर शिष्य को अपने गुरु के चरणकमलों में दण्डवत् प्रणाम करना चाहिए।

३८. जो अपने गुरु के चरणों की पूजा निरपेक्ष भक्ति-भावपूर्वक करता है उसे गुरुकृपा सीधी प्राप्त होती है।

३९. आचार्य से प्राप्त की हुई तथा सेवा से तीक्ष्ण बनी हुई ज्ञानरूपी तलवार एवं ध्यान की सहायता से शिष्य मन, वचन, प्राण और देह के अहंकार को काट देता है तथा सब राग-द्वेष से मुक्त होकर इस संसार में स्वेच्छापूर्वक विहार करता है।

४०. तीव्र गुरुभक्ति के शक्तिशाली शस्त्र से मन को दूषित करनेवाली आसक्ति को मूलसहित काट न दिया जाय, तब तक विषयों का संग त्याग देना चाहिए।

४१. गुरु का आश्रय लेकर जो योग का अभ्यास करता है, वह विविध अवरोधों से पीछे नहीं हटता।

४२. सच्चे शिष्य को अपने गुरु के पवित्र चरणों में किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट या शर्म के बिना साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करना चाहिए। यह उसके सम्पूर्ण आत्मसमर्पण की निशानी है।

४३. किसी भी फल की आशा से रहित होकर जो गुरुसेवा और गुरुपूजा में लगा रहता है वह उलटे मार्ग में नहीं जायेगा। उसे सेवा-पूजा का लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

४४. ज्ञान का प्रकाश फैलानेवाली पवित्र गुरुगीता का जो हररोज अभ्यास करता है, वही सचमुच विशुद्ध है। उसे ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

४५. जो अपने गुरु के यश में आनन्दित होता है और दूसरों के समक्ष अपने गुरु के यश का वर्णन करने में आनन्द का अनुभव करता है उसे सचमुच गुरुकृपा प्राप्त होती है।

४६. परमात्मा और परब्रह्मस्वरूप गुरु की अज्ञाननाशक उपस्थिति में आपके सब संशयों का नाश होगा, जैसे सूर्योदय होते ही ओस की बूँदें नष्ट होती हैं।

४७. ''हे महान, परम सम्माननीय गुरु! मैं आदरपूर्वक आपको नमस्कार करता हूँ। मैं आपके चरणकमलों के प्रति अटूट भक्तिभाव कैसे प्राप्त कर सकूँ और आपके दयालु चरणों में मेरा मन हमेशा भक्ति-भावपूर्वक कैसे सराबोर रहे, यह कृपा करके मुझे कहें।'' इस प्रकार कहकर खूब नम्रतापूर्वक एवं आत्मसमर्पण की भावना से शिष्य को चाहिए कि वह गुरु को दण्डवत प्रणाम करे और उनके आगे गिड़गिड़ाए।

४८. साक्षात् ईश्वर जैसे सर्वोच्च पद प्राप्त किये हुए गुरु की जय हो! गुरु का यश गानेवाले धर्मशास्त्रों की जय हो! जिसने केवल ऐसे गुरु का ही आश्रय लिया है ऐसे सच्चे शिष्य की जय हो!

## गुरुकृपा से ईश्वर-साक्षात्कार

४९. वाद-विवाद, बुद्धि, गहन अभ्यास, दान या तप से ईश्वर-साक्षात्कार नहीं होता। वह तो जिसने गुरुकृपा प्राप्त की हो, उसको ही होता है।

५०. गुरुकृपा का छोटे-से-छोटा बिन्दु भी इस संसार के कष्टों

से मनुष्य को मुक्त करने में पर्याप्त है।

५१. केवल गुरुकृपा के द्वारा ही साधक आध्यात्मिक मार्ग में लगा रह सकता है एवं तमाम प्रकार के बन्धनों एवं आसक्तियों को तोड़ सकता है।

५२. जो शिष्य अहंकार से भरा हुआ है, जो गुरु के वचनों को सुनता नहीं है उसका आखिर नाश होता है।

५३. जिन गुरु को आत्म-साक्षात्कार हुआ है ऐसे गुरु में और ईश्वर में कोई फर्क नहीं है। दोनों समान हैं और एकरूप हैं।

५४. गुरु के सत्संग की सहाय के बिना नये-नये साधक के कुसंस्कारों में मूलतः परिवर्तन करने की बिल्कुल गुंजाइश नहीं है।

५५. गुरु का सहवास साधक के लिए एक सुरक्षित नौका है जो उसे अन्धकार के उस पार निर्भयता के किनारे पर पहुँचाती है।

## शास्त्रों में गुरु की प्रशंसा

५६. भागवत, रामायण, महाभारत, योगवाशिष्ठ आदि में गुरुभक्ति की महिमा सुन्दर ढंग से गायी गई है। हररोज उन ग्रंथों का अभ्यास करो। आपको उनसे प्रेरणा मिलेगी।

५७. आत्म-साक्षात्कारी गुरु के लिखे हुए ग्रंथ परोक्ष सत्संग जैसे हैं। आप जब संपूर्ण श्रद्धा और भक्ति से उनका अध्ययन करते हैं तब आपके पावन गुरु के साथ आपका पूर्ण सायुज्य होता है।

५८. जो अपने साधनापथ में सच्चे हृदय से प्रयत्न करता है और जो ईश्वर-साक्षात्कार के लिए तड़पता है ऐसे योग्य शिष्य पर ही गुरु की कृपा उतरती है।

५९. आज कल शिष्य लोग ऐशो-आरामवाला जीवन जीते हैं और गुरु की आज्ञा का पालन किये बिना ही उनकी कृपा की आशा रखते हैं।

६०. गुरु एवं महात्माओं के सत्संग की महिमा विषयक ग्रंथ गुरु नानक, तुलसीदास, शंकराचार्य, व्यास और वाल्मीकि ने लिखे हैं।

६१. पुरंदरदास, निश्चलदास, सहजोबाई, मीराबाई, ज्ञानेश्वर, एकनाथ आदि ने गुरुकृपा की महिमा गायी है।

६२. जो लोग नियमित रूप से सत्संग करते हैं उनमें ईश्वर और शास्त्रों में श्रद्धा, गुरु एवं ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति का धीरे-धीरे विकास होता है।

६३. गुरु का संग 'माँग और पूर्ति' का प्रश्न है। अगर सच्चे हृदय की माँग हो तो पूर्ति तुरन्त हो जायेगी। कुदरत का यह अटल नियम है।

६४. आपको अगर सचमुच ईश्वर-साक्षात्कार की तड़प होगी तो अपने आध्यात्मिक गुरु को आप अपने घर के द्वार पर खड़े पायेंगे।

६५. आत्म-साक्षात्कारी महान गुरु का संग प्राप्त करना मुश्किल है, किन्तु वह संग बहुत ही लाभकारी है। आप अगर भक्तिभावपूर्वक, ईमानदारी से प्रार्थना करेंगे तो वे स्वयं आपके पास आयेंगे।

६६. इस दुनिया में उत्तम वस्तुएँ अत्यंत अल्प मात्रा में होती हैं जैसे कि कस्तूरी, केसर, रेडियम, चन्दन, विद्वान, सदाचारी पुरुष तथा परोपकारी स्वभाव के लोग बहुत कम होते हैं। अगर ऐसा ही है तो संतों, भक्तों, योगियों, पैगम्बरों, दृष्टाओं तथा आत्म-साक्षात्कारी गुरु के विषय में तो कहना ही क्या ?

६७. आप अगर आत्म-साक्षात्कारी गुरु की सेवा करेंगे तो आपके मोक्ष की समस्या हल हो जायेगी।

६८. अगर पावनकारी आचार्य की सेवा में जीवन बिताओगे तो जीवन कृतार्थ हो जायेगा।

६९. महात्माओं का संग ईश्वरकृपा से ही प्राप्त होता है।

७०. गुरु की सेवा करके आशीर्वाद प्राप्त करने के इच्छुक साधकों को कुसंग से अवश्य दूर रहना चाहिए।

७१. इस माया का रहस्य कौन जान सकता है ? जो कुसंग का त्याग करते हैं, जो उदार हृदयवाले गुरु की सेवा करते हैं, जो अहंभाव से मुक्त हैं और जो ममतारहित हैं वे इस माया का रहस्य जान सकते हैं।

७२. राग-द्वेष से मुक्त ऐसे गुरु का संग करने से मनुष्य आसक्तिरहित बनता है। उसे वैराग्य प्राप्त होता है। उसमें गुरु के चरणकमलों के प्रति भक्ति जागती है।

७३. जो भक्तिभावपूर्वक गुरु की सेवा करता है वह जीवन के परम तत्त्व को प्राप्त करता है।

७४. गुरु की सेवा से साधक का मन किसी भी प्रकार के प्रयत्न बिना ही, अपने-आप एकाग्र होने लगता है।

७५. गुरु ग्रंथसाहब में कहा है कि गुरु के बिना ईश्वरप्राप्ति का मार्ग नहीं मिल सकता। स्वयं ईश्वरस्वरूप होने के कारण गुरु साधक को ईश्वरप्राप्ति के मार्ग में ले जाते हैं। वे उस मार्ग के पथप्रदर्शक बनते हैं। गुरु ही शिष्य को ऐसा अनुभव करा सकते हैं कि वह स्वयं ही ईश्वर है।

## गुरु का महान प्रेम

७६. दैवी गुणों का विकास करनेवाला महान रहस्य गुरुभक्ति में निहित है।

७७. जो शिष्य अपने गुरु के चरणकमलों में सम्पूर्ण आत्म-समर्पण करता है उसे गुरु स्वयं ही सब दैवी गुण प्रदान करते हैं।

७८. जो अपने मन पर संयम रखकर ध्यान नहीं कर सकते, उनके लिए तो गुरुभक्ति जगाकर गुरुसेवा करना ही एक उपाय है।

७९. गुरु शिष्य की मुश्किलों एवं अवरोधों को जानते हैं, क्योंकि वे त्रिकालज्ञानी हैं। अतः मन में ही उनकी प्रार्थना करो। वे आपके अवरोध दूर करेंगे।

८०. गुरु के दर्शन अन्धकार का सर्वथा नाश करते हैं और

असीम आनन्द देते हैं।

८१. भगवान आपका कल्याण करें और आप सब गुरुभक्ति जैसे दुर्लभ दैवी गुण का विकास करो।

८२. भगवान स्वयं ही आचार्य के रूप में दिखते हैं। वे मानव के स्वरूप में प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं अथवा ब्रह्मनिष्ठ महान ज्ञानी के रूप में दर्शन देते हैं।

८३. जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जीवन का एकमात्र हेतु महान गुरु की सेवा करना है।

## गुरु के साथ तादात्म्य

८४. केवल बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में एक व्यक्ति की कोई अहमियत नहीं है। उसे वास्तविकता का ज्ञान नहीं है किन्तु जब व्यक्ति गुरु के सम्पर्क में आता है तब उसमें सच्चा ज्ञान, सच्ची शक्ति और सच्चा आनन्द प्रकट होता है। वे गुरु भी ऐसे हों जिन्होंने परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित किया हो।

८५. शिष्य को घास के तिनके से भी अधिक नम्र होना चाहिए, तभी गुरु की कृपा उस पर उतरेगी।

८६. जब शिष्य ध्यान नहीं कर सकता हो, जब आध्यात्मिक जीवन का मार्ग नहीं जान सकता हो तब उसे गुरु की सेवा करना चाहिए, उनके आशीर्वाद प्राप्त करने चाहिए। उसके लिए केवल यही उपाय है।

८७. मन जब प्रशान्त और स्थिर हो, तब आप ध्यान कर सकते हो। मन अगर क्षुब्ध हो तो जप करो, पुस्तक पढ़ो और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गुरु की सेवा करो। गुरु के साथ मानसिक सम्बन्ध स्थापित करो, तभी आपका विकास जल्दी हो सकेगा।

८८. जन्म से लेकर मृत्यु तक सारा जीवन विद्यार्थी अवस्था का समय है। तभी विद्यार्थी मोक्षदायक आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

८९. जो शिष्य गुरुकुल में रहते हों, उन्हें इस नाशवंत दुनिया की किसी भी चीज की तृष्णा न रहे इसके लिए हो सके उतना प्रयास करना चाहिए।

९०. जिसने गुरु प्राप्त किये हैं, ऐसे शिष्य के लिए ही अमरत्व के द्वार खुलते हैं।

९१. साधकों को इतना ध्यान में रखना चाहिए कि केवल पुस्तकों का अभ्यास करने से या वाक्य रटने से अमरत्व नहीं मिलता। उससे तो वे अभिमानी बन जाते हैं। जिसके द्वारा जीवन का कूटप्रश्न हल हो सके, ऐसा सच्चा ज्ञान तो गुरुकृपा से ही प्राप्त हो सकता है।

९२. जिन्होंने ईश्वर के दर्शन किये हैं ऐसे गुरु का संग और सहवास ही शिष्य पर गहरा प्रभाव डालता है। तमाम प्रकार के अभ्यास की अपेक्षा गुरु का संग श्रेष्ठ है।

९३. गुरु का सत्संग शिष्य का पुनर्जीवन करनेवाला मुख्य तत्त्व है। वह उसे दिव्य प्रकाश देता है और उसके लिए स्वर्ग के द्वार खोल देता है।

९४. गुरु का संग ही साधक को उसके चारित्र्य के निर्माण में, उसकी चेतना को जागृत करके अपने स्वरूप का सच्चा दर्शन करने में सहाय कर सकता है।

## शिष्य को मार्गदर्शन

९५. गुरु की सेवा, गुरु की आज्ञा का पालन, गुरु की पूजा और गुरु का ध्यान, ये चीजें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। शिष्य के लिए आचरण करने योग्य उत्तम चीजें हैं।

९६. शिष्य को बार-बार देवी सरस्वती की, जिन्होंने आशीर्वाद दिये हों ऐसे गुरु की एवं सर्वोच्च पिता परमेश्वर की प्रार्थना करना चाहिए।

९७. गुरु के पास अभ्यास पूरा करने के बाद भी समग्र

जीवनपर्यन्त शिष्य को अपने आचार्य के प्रति कृतज्ञता का भाव बनाये रखना चाहिए।

९८. गुरु की कृपा तो सदा रहती है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शिष्य को गुरु के वचनों में श्रद्धा रखनी चाहिए और उनके आदेशों का पालन करना चाहिए।

९९. बुद्धि को तेजस्वी रखने के लिए स्वाध्याय की आवश्यकता है जिससे बुद्धि उलटे मार्ग में न जाय या उसका दुरुपयोग न हो। उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है महात्माओं का सत्संग अर्थात् हमें गुरु करना चाहिए जिससे हमें निरन्तर मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। वे हमें मार्ग में आनेवाले भयस्थान दिखाते रहें। फिर गुरु से प्राप्त ज्ञान की सहायता से शिष्य योग्य पथ पर आगे बढ़ने में सक्षम होगा।

## आत्म-साक्षात्कार का रहस्य

१००. जीवन के परम तत्त्वरूपी वास्तविकता के सम्पर्क का रहस्य गुरुभक्ति है।

१०१. सच्चे शिष्य के लिए तो गुरुवचन माने कानून।

१०२. गुरु का दास बनना माने ईश्वर का सेवक बनना।

१०३. जिन्होंने प्रभु को निहारा है और जो योग्य शिष्य को प्रभु के दर्शन करवाते हैं वे ही सच्चे गुरु हैं।

१०४. बनावटी गुरु से सावधान रहना। ऐसे गुरु पूरे-के-पूरे शास्त्र रट लेते हैं और शिष्यों को उनमें से दृष्टान्त देते हैं लेकिन वे जो उपदेश देते हैं उसका आचरण वे खुद नहीं कर सकते।

१०५. आलसी शिष्य को गुरुकृपा नहीं मिल सकती।

१०६. राजसी स्वभाव के शिष्य को लोकसंग्रह करनेवाले गुरु के कार्य समझ में नहीं आते।

१०७. किसी भी कार्य का प्रारंभ करने से पहले शिष्य को गुरु की सलाह लेनी चाहिए।

## प्रकरण : ४

# गुरुभक्ति का विवरण

## आध्यात्मिक शिक्षा का अर्थ

१. मुक्तात्मा गुरु की सेवा, उनकी लिखी हुई पुस्तकों का अभ्यास और उनकी पवित्र मूर्ति का ध्यान, **यह गुरुभक्ति विकसित करने का सुनहरा मार्ग है।**

२. जो शिष्य नाम, कीर्ति, सत्ता, धन और विषयवासना के पीछे दौड़ता है वह सद्गुरु के चरणकमलों के प्रति सच्चा भक्तिभाव नहीं रख सकता।

३. शिक्षा का क्षेत्र बहुत ही विशाल है और ज्ञानप्राप्ति की संभावनाएँ अपार हैं। अतः गुरु की आवश्यकता अनिवार्य है।

४. तैत्तीरीय उपनिषद् कहती है : ''अब, ज्ञान के विषय में बात करते हैं। आचार्य प्रथम स्वरूप हैं। शिष्य आखिरी स्वरूप है। ज्ञान इन दोनों के बीच की कड़ी है और उपदेश वह माध्यम है जो यह समन्वय कराता है। यह ज्ञान का क्षेत्र है।''

५. कठोपनिषद् कहती है : ''जिस आत्मा के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार से उपदेश दिया जाता है उस आत्मा विषयक उपदेश जब निम्न स्तर की बुद्धिवाले व्यक्ति के द्वारा दिया जाता है तब सरलता से समझ में नहीं आता। किन्तु जब उसी आत्मा के विषय में ब्रह्मनिष्ठ गुरु उपदेश देते हैं तब बिल्कुल सन्देह नहीं रहता, अर्थात् भली प्रकार समझ में आ जाता है। आत्मा तो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। केवल बौद्धिक कसरत से उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। केवल गुरुकृपा से ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

## गुरु-शिष्य का सम्बन्ध

६. शिष्य को आचार्य के घर रहना चाहिए, बारह वर्ष तक सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए तथा कठिन तप करना चाहिए।

उसे गुरु की सेवा करनी चाहिए तथा उनके मार्गदर्शन में पवित्र शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए।

७. जो शिष्य को शिक्षा दे सकें और स्वयं जो शिक्षा दें उसको अपने आचरण में भी ला सकें, वे ही गुरु हो सकते हैं।

८. मनुष्य को जिस किसीको भी गुरु के रूप में स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए। एक बार गुरु के रूप में स्वीकार कर लेने के बाद किसी भी परिस्थिति में उनका त्याग नहीं करना चाहिए।

९. आत्मसाक्षात्कारी गुरु इस जमाने में सचमुच बहुत दुर्लभ हैं।

१०. सचमुच में आध्यात्मिक विकास कर लेनेवाले व्यक्ति तब तक गुरु के रूप में फर्ज अपने सिर पर नहीं लेते जब तक परमात्मा की आज्ञा नहीं होती।

११. जब योग्य साधक आध्यात्मिक पथ की दीक्षा लेने के लिए गुरु की खोज में जाता है तब उसके समक्ष ईश्वर गुरु के स्वरूप में दिखते हैं और उसे दीक्षा देते हैं।

१२. जो मुक्तात्मा गुरु हैं वे एक निराली जाग्रत अवस्था में रहते हैं जिसे 'तुरीयावस्था' कहा जाता है। जो शिष्य गुरु के साथ एकता स्थापित करना चाहता हो, उसे संसार की क्षणभंगुर चीजों के प्रति सम्पूर्ण वैराग्य का गुण विकसित करना चाहिए।

## उच्चतर ज्ञान का मूल

१३. जो उच्चतर ज्ञान चित् में से निष्पन्न होता है वह विचारों के रूप में नहीं अपितु शक्ति के रूप में होता है। वह ज्ञान गुरु शिष्य के प्रति सीधे-सीधे संक्रमित करते हैं। ऐसे गुरु चित्शक्ति के साथ एकरूप होते हैं।

१४. ईश्वर-साक्षात्कार केवल स्वप्रयत्न से ही नहीं हो सकता। उसके लिए गुरुकृपा अत्यन्त आवश्यक है।

१५. शिष्य जब उच्चतर दीक्षा के योग्य बनता है तब गुरु स्वयं ही उसे योग के रहस्यों की दीक्षा देते हैं।

१६. गुरुश्रद्धा पर्वतों को हिला सकती है, गुरुकृपा चमत्कार कर सकती है। हे वीर ! नि:संशय होकर आगे बढ़ो।

१७. परमात्मा के साथ एकरूप बने हुए महान आध्यात्मिक पुरुष की जो सेवा करता है, वह संसार के कीचड़ को पार कर जाता है।

१८. अगर आप सांसारिक मनोवृत्तिवाले लोगों की सेवा करेंगे तो आपको सांसारिक लोगों के गुण मिलेंगे। इसके विपरीत, जो सदैव परम सुख में निमग्न रहते हैं, जो सर्व गुणों के धाम हैं, जो साक्षात् प्रेमस्वरूप हैं ऐसे गुरु के चरणकमलों की सेवा करेंगे तो आपको उनके गुण प्राप्त होंगे। अत: उनकी सेवा करो... बस, सेवा करो।

## आचरण के सिद्धान्त

१९. अपने गुरु की सेवा करनेवाले शिष्य को दूसरों के समक्ष लज्जित नहीं होना चाहिए, संकोच महसूस नहीं करना चाहिए।

२०. गुरु ने भोजन न किया हो तब तक आप कभी भोजन मत करो।

२१. गुरु का उच्छिष्ट प्रसाद (गुरु की थाली में बचा हुआ प्रसाद) जो ग्रहण करता है वह गुरु के साथ एकत्व का अनुभव करेगा। गुरुकृपा से वह उनके साथ एकरूप हो जायेगा।

२२. जब गुरु निद्राधीन हों या आराम करते हों तब अनिवार्य परिस्थितियों में भी उन्हें जगाना नहीं चाहिए, विघ्न नहीं डालना चाहिए।

२३. गुरु के साथ हँसी-मजाक कभी मत करो। अगर ऐसा करोगे तो धीरे-धीरे उनके प्रति आदर कम होता जायेगा और आपको लगेगा कि मैं उनके बराबर हो गया हूँ।

२४. बनावटी गुरु से सावधान रहना। उन्होंने अपनी बरबादी तो की है लेकिन वे आपकी भी बरबादी कर देंगे।

२५. अपना कोई गुरु होना अच्छी बात है लेकिन गुरु का त्याग

करना बहुत खराब बात है।

२६. गुरु होना अच्छी बात है और गहरी श्रद्धा से उनकी सेवा करना यह उससे भी अच्छी बात है।

२७. गुरु की आज्ञा का पालन करना ईश्वर की आज्ञा का पालन करने के बराबर है।

२८. अनेक गुरु करना खराब बात है। गुरु से धोखा करना और उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना बहुत खराब बात है।

२९. गुरु की सेवा करने के लिए सदैव तत्पर रहो।

३०. गुरु की अथक सेवा करके उनकी कृपा प्राप्त करो।

३१. जिसने गुरुकृपा प्राप्त की है वही साधना का रहस्य जानता है।

३२. गुरु होना अच्छी बात है। उनकी आज्ञा का पालन करना उससे भी अधिक अच्छी बात है और उनके आशीर्वाद प्राप्त करना श्रेष्ठ है।

३३. जो अपने गुरु की सेवा करता है वही परम सत्य के सम्पर्क में आने की कला जानता है।

३४. जो मोह से मुक्त होता है, वह कभी भी गुरु के प्रति द्रोह नहीं करेगा।

३५. गुरु महाराज के जीवित होते हुए जो उनकी गद्दी पर बैठने की इच्छा करता है उसे सीधा नर्क का पासपोर्ट मिल जाता है। यमराज भी ऐसे आदमी से डरते रहते हैं कि शायद वह आदमी मेरी गद्दी भी छीन लेगा।

३६. गुरुपूर्णिमा के दिन जो अपने गुरु की पादपूजा करता है, उसे पूरे वर्ष के दौरान सारे कर्मों में सफलता मिलती है।

३७. गुरुभाई पर प्रेम रखना यह गुरुदेव के प्रति प्रेम रखने के बराबर है।

३८. गुरुभाई को सहाय करना यह गुरुदेव की सेवा करने के बराबर है।

३९. गुरु की सेवा करना माने आत्मोद्धार करना।

४०. गुरु की सेवा करना माने माँ-बाप की सेवा करना।

४१. किसी भी चीज में अन्धश्रद्धा होना यह अच्छी बात नहीं है किन्तु ईश्वर के साथ एकत्व स्थापित किये हुए गुरु के वचनों में अन्धश्रद्धा रखना यह मोक्ष का राजमार्ग है।

४२. आप कुछ ही समय में एक महान विद्वान बन सकते हैं किन्तु आसानी से सच्चे शिष्य नहीं बन सकते।

## योग्य गुरु की खोज

४३. आज कल कई बनावटी गुरु तथा शिष्य दिखाई देते हैं। आपको गुरु की पसन्दगी करना हो तब ध्यान रखना।

४४. शिष्य का कर्त्तव्य है गुरु के पवित्र मुख से जो आज्ञाएँ निकलें उनका पालन करना।

४५. गुरु के निवास एवं आश्रम के आसपास के स्थान स्वच्छ एवं व्यवस्थित रखो।

४६. गुरु और शिष्य के बीच प्रेमी और प्रेमिका जैसा सम्बन्ध है।

४७. कभी-कभी गुरु अपने शिष्य की कसौटी करें या उसे प्रलोभन में डालें तो शिष्य को गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा के द्वारा उसका सामना करना चाहिए।

४८. शिष्य को कोई भी चीज गुरु से छिपाना नहीं चाहिए। उसे स्पष्टवक्ता और प्रामाणिक बनना चाहिए।

४९. राग-द्वेष से मुक्त गुरु के चरणकमलों की धूलि बनना यह तो महान सौभाग्य की बात है, दुर्लभ अधिकार है।

५०. परमात्मा के साथ एकत्व स्थापित किये हुए आचार्य के पवित्र चरणों की धूलि तो शिष्य के लिए अलौकिक अलंकार है।

५१. गुरुसेवा का एक भी दिन चूकना नहीं। किसी भी प्रकार के पंगु बहाने बनाना नहीं।

५२. जो अपने को गुरुचरणों की धूलि मानता है, ऐसा शिष्य धन्य है।

५३. जो शिष्य नम्र, सादा, आज्ञाकारी तथा गुरु के चरण-कमलों के प्रति भक्तिभाव रखनेवाला है उस पर गुरुकृपा उतरती है।

५४. गुरु के कार्य का एक साधन बनो।

५५. गुरु जब आपकी गलतियाँ बतावें तब केवल उनका कहा मानो, आपका कार्य उचित है ऐसा बचाव मत करो।

५६. जो गुरु विशेषज्ञ हों उनके मार्गदर्शन में आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि सीखो।

५७. जिसकी निद्रा तथा आहार आवश्यकता से अधिक है, वह गुरु की रुचि के मुताबिक उनकी सेवा नहीं कर सकता।

## गुरु के पदचिह्नों पर

५८. जो अधिक वाचाल है और शरीर की टीपटाप करना चाहता है वह गुरु की इच्छा के अनुसार सेवा नहीं कर सकता।

५९. हररोज भाव एवं भक्ति से गुरु के चरणकमलों की पूजा करो।

६०. अगर अलौकिक भाव से अपने गुरु की सेवा करना चाहते हो तो स्त्रियों से एवं सांसारिक मनोवृत्तिवाले लोगों से हिलोमिलो नहीं।

६१. गुरु के आशीर्वाद का खजाना खोलने के लिए गुरुसेवा गुरुचाबी है।

६२. जहाँ गुरु हैं वहाँ ईश्वर हैं, यह बात सदैव याद रखो।

६३. जो गुरु की खोज करता है वह ईश्वर की खोज करता है। जो ईश्वर की खोज करता है उसे गुरु मिलते हैं।

६४. शिष्य को अपने गुरु के कदम-कदम का अनुसरण करना चाहिए।

६५. गुरु की पत्नी को अपनी माता समझकर उनको इस प्रकार

मान देना चाहिए।

६६. अपने गुरु से क्षणभंगुर पार्थिव सुखों की याचना मत करना। अमरत्व के लिए याचना करो।

६७. अपने गुरु से सांसारिक आवश्यकताओं की भीख नहीं माँगना।

६८. सच्चे शिष्य के लिए आचार्य के चरणकमल ही एकमात्र आश्रय हैं।

६९. जो कोई अपने गुरु की भावपूर्वक, अहर्निश अथक सेवा करता है उसे काम, क्रोध और लोभ कभी सता नहीं सकते।

## गुरु के चरणों में

७०. जो दैवी गुरु के चरणों में आश्रय लेता है वह गुरु की कृपा से आध्यात्मिक मार्ग में आनेवाले तमाम विघ्नों को पार कर जायेगा।

७१. योग के लिए श्रेष्ठ एकान्त स्थान गुरु का निवास-स्थान है।

७२. शिष्य के साथ गुरु रहते नहीं हों तो ऐसा एकान्त सच्चा एकान्त नहीं है। ऐसा एकान्त काम और तमस का आश्रयस्थान बन जाता है।

७३. जिस शिष्य को अपने गुरु के प्रति भक्तिभाव है उसके लिए तो आदि से अंत तक गुरुसेवा मीठे शहद जैसी बन जाती है।

७४. गुरु के पवित्र मुख से बहते हुए अमृत का जो पान करता है वह मनुष्य धन्य है।

७५. जो सम्पूर्ण भाव से अपने गुरु की अथक सेवा करता है, उसे दुनियादारी के विचार नहीं आते। इस दुनिया में वह सबसे अधिक भाग्यवान है।

७६. बस, अपने गुरु की सेवा करो, सेवा करो, सेवा करो। गुरुभक्ति विकसित करने का यह राजमार्ग है।

७७. गुरु माने सच्चिदानन्द परमात्मा।

## गुरु की पूजा

७८. पूज्य आचार्य की सेवा जैसी हितकारी और आत्मोन्नति करनेवाली और कोई सेवा नहीं है।

७९. सच्चा आराम दैवी गुरु की सेवा में ही निहित है। ऐसा दूसरा कोई सच्चा आराम नहीं है।

८०. गुरुकृपा से जीवन का मर्म समझ में आता है।

८१. किसी भी प्रकार के स्वार्थी हेतु के बिना आचार्य की पवित्र सेवा जीवन को निश्चित आकार देती है।

८२. वेदान्त की थोड़ी-बहुत पुस्तकें स्वतंत्र रीति से पढ़ लेने के बाद यों कहना कि **'न गुरुः न शिष्यः'** – यह सत्य के खोजी के लिए एक महान भूल है।

८३. कभी-कभी शिष्य के पापों को हर लेने से गुरु को शारीरिक पीड़ा भुगतनी पड़ती है। वास्तव में गुरु कोई भी शारीरिक रोग या पीड़ा नहीं भोगते, किन्तु बहुत भक्तिभाव और तत्परता से गुरु की सेवा करके अपने हृदय को पवित्र बनाने के लिए शिष्य को प्राप्त यह एक विरल मौका होता है।

८४. पुण्यशाली आचार्य का उत्तम विचार शिष्य को पार्थिवता और इन्द्रियविषयक जीवन से ऊपर उठने में सहायरूप है।

८५. **'उप'** माने 'पास'। **'नि'** माने 'नीचे'। **'षद्'** माने 'बैठना'। **'उपनिषद्'** माने आचार्य के पास नीचे बैठना। शिष्यों का समूह ब्रह्म के सिद्धान्त का रहस्य जानने के लिए आचार्य के पास बैठता है।

## रहस्यविद्या का दान

८६. पवित्र शास्त्रों का गूढ़ रहस्य और प्राचीन सिद्धांतों का अर्थ केवल पुस्तकें पढ़ने से या पाण्डित्यपूर्ण भाषण सुनने से समझ में नहीं आता। जो भाग्यशाली शिष्य गुरु के साथ आजीवन रहकर उनकी सेवा करते हैं और गुरु के प्रति आदर तथा भक्तिभाव रखते

हैं उनको **'तत्त्वमसि... अहं ब्रह्मास्मि... सर्वं खल्विदं ब्रह्म... अयमात्मा ब्रह्म...'** आदि उपनिषदों के कथन अच्छी तरह समझ में आते हैं और उनके अर्थ का साक्षात्कार होता है।

८७. गुरुकृपा आत्मा का आन्तरदर्शन कराती है।

८८. अनेक बार की विनती और कठिन कसौटी के बाद ही सद्गुरु अपने विश्वसनीय शिष्य को उपनिषद् की रहस्य विद्या प्रदान करते हैं।

८९. उपनिषद् की परम्परा के मुताबिक आचार्य ब्रह्मविद्या का रहस्य अपने योग्य पुत्र अथवा तो विश्वसनीय शिष्य को ही दे सकते हैं, और किसीको भी नहीं। फिर वह चाहे कोई भी हो और भले ही चारों ओर से पानी से आवृत्त, वैभव से समृद्ध सारी पृथ्वी गुरु को देने के लिए तैयार हो।

९०. पावनकारी गुरु को दण्डवत् प्रणाम करने के बाद उनकी ओर पीठ करके शिष्य को जाना नहीं चाहिए।

९१. आचार्य यदि वेदान्त का सच्चा अर्थ जानते हों और जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में उसे किस प्रकार लागू किया जा सकता है वह समझते हों तो एक बालक को भी वे वेदान्त सिखा सकते हैं।

९२. जो व्यक्ति पैसे के पीछे दौड़ता है, वह गुरु की सम्पत्ति चुराने में भी झिझकता नहीं है।

९३. गुरु की सम्पत्ति के प्रति लोलुप मत बनो।

९४. जो मुक्तात्मा पावनकारी गुरु हैं वे शांति और आनन्दस्वरूप हैं। वे समदृष्टिवाले और स्थितप्रज्ञ हैं। उनके लिए मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, सुख-दुःख समान हैं। वे काम, क्रोध, लोभ, मद और मत्सर से मुक्त हैं। उनको रुचि-अरुचि नहीं होती। उन्हें कोई आसक्ति नहीं होती। वे बालक जैसे निर्दोष, फिर भी ज्ञान के भण्डार हैं। वे अपनी उपस्थितिमात्र से या कृपादृष्टि से ही शिष्यों के संशय दूर करते हैं।

९५. गरीब और बीमार की सुश्रूषा करना, गुरु और माँ-बाप की सेवा करना, दया के उत्तम कार्य करना, गुरुकृपा से आत्मज्ञान पाना... यह सब सचमुच सर्वश्रेष्ठ पुण्य हैं।

९६. गुरु की निजी सेवा जैसी पावनकारी और कोई चीज नहीं है।

९७. मोक्ष के श्रमजनक मार्ग में गुरुकृपा सचमुच विश्वसनीय साथी है।

## आत्मविजय का शस्त्र

९८. केवल गुरु की शरण में जाने से ही जीवन को जीता जा सकता है।

९९. गुरुभक्तियोग के अभ्यास से मन को संयम में लाने से कामवासना की शांति हो सकती है।

१००. गुरुसेवा आपको बिल्कुल स्वस्थ और तन्दुरुस्त रखती है।

१०१. गुरुभक्तियोग का अभ्यास आपको अमाप एवं अनहद आनन्द देता है।

१०२. गुरुसेवा अद्वैतभाव या एकरूपता पैदा करती है।

१०३. गुरुभक्तियोग साधक को चिरायु और अनंत सुख देता है।

१०४. गुरुसेवा के बिना वेदान्त का अभ्यास व्यक्ति को तोते जैसा वेदान्ती बनाता है। अत: अपने पूज्य आचार्य की सेवा करो, सेवा करो, सेवा करो।

१०५. अपने दैनिक जीवन में मार्गदर्शन के लिए प्रत्येक क्षण पूज्य गुरु की प्रार्थना करो।

१०६. जो प्रार्थना शिष्य के निखालिस, पवित्र हृदय से निकलती है उसे गुरु की ओर से तत्काल प्रत्युत्तर मिलता है।

१०७. जो साधु-संत पूज्य गुरु हैं उनके पास श्रद्धा, भक्ति और नम्रतापूर्वक जाओ। ज्ञानरूपी औषध लो। सम्पूर्ण आज्ञाकारिता पथ्य है। तभी अज्ञानरूपी रोग पूर्णत: निर्मूल होगा और आप सर्वोच्च सुख का अनुभव कर सकेंगे।

*प्रकरण : ५*

# गुरुभक्ति की नींव

## श्रद्धा का महत्त्व

१. गुरु में श्रद्धा गुरुभक्तियोग की सीढ़ी का प्रथम सोपान है।

२. गुरु में श्रद्धा दैवी कृपा प्राप्त करने के लिए शिष्य को आशा एवं प्रेरणा देती है।

३. गुरु में सम्पूर्ण विश्वास रखो। तमाम भय, चिन्ता और जंजाल का त्याग कर दो। बिल्कुल चिन्तामुक्त रहो।

४. ''गुरुवचन में श्रद्धा अखूट बल, शक्ति एवं सत्ता देती है। संशय मत कर। हे शिष्य ! आगे बढ़।''

५. ज्ञानीजनों के समागम से तथा पुराण और पवित्र शास्त्रों के अध्ययन से गुरु पर श्रद्धा दृढ़ करो।

६. गुरु के उपदेशों में गहरी श्रद्धा रखो। सद्गुरु के स्वभाव और महिमा को स्पष्ट रीति से समझो। गुरु की सेवा करके दिव्य जीवन बिताओ। तभी ईश्वर की जीवन्त मूर्ति के समान सद्गुरु के पवित्र चरणों में सम्पूर्ण आत्मसमर्पण कर सकोगे।

७. गुरु को विघ्नरूप बनने से तो मरना बेहतर है।

८. गुरु पर भक्तिभाव सब हीन वृत्तियों और आवेगों को दबा देता है तथा सब अवरोधों को दूर करता है।

९. गुरुभक्तियोग में गुरु के प्रति भक्तिभाव सबसे महान चीज है।

# भक्ति के स्वरूप

१०. गुरु की अचल भक्ति ईश्वर-साक्षात्कार करने के लिए बहुत असरकारक पद्धति मानी जाती है।

११. गुरु की महिमा का सतत स्मरण और उनके दिव्य सन्देश को सर्वत्र फैलाना यह गुरु के प्रति सच्चा भक्तिभाव है।

१२. आचार्य के पवित्र चरणों की भक्ति फूल है और उनके आशीर्वाद अमर फल हैं।

१३. जीवन का ध्येय है परिणाम में दुःख देनेवाली कुसंगति का त्याग करना और अमरत्व देनेवाले पवित्र आचार्य के चरणकमलों की सेवा करना।

१४. साधक जब इहलोक और परलोक में चिरंतन सुख देनेवाले गुरुभक्तियोग का आश्रय लेता है तभी उसका सच्चा जीवन शुरू होता है।

१५. ''जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, हर्ष-शोक के अविरत चक्र से मुक्ति नहीं होगी क्या ? हे शिष्य ! सावधान होकर सुन। उसके लिए एक निश्चित उपाय है। नाशवंत इन्द्रियविषयक पदार्थों में से अपना मन हटा ले और इन द्वन्द्वों से पार ले जानेवाले गुरुभक्तियोग का आश्रय ले।''

१६. सच्चा एवं स्थायी सुख बाहर के नाशवंत पदार्थों से नहीं अपितु गुरुशरणयोग का आश्रय लेने से मिल सकता है।

१७. गुरुसेवायोग, गुरुशरणयोग आदि गुरुभक्तियोग के समानार्थी शब्द हैं। वे सब एक ही हैं।

१८. गुरुभक्तियोग का अभ्यास माने गुरु के प्रति गहरा पवित्र प्रेम।

१९. आचार्य के पावनकारी चरणकमलों के प्रति पवित्र प्रेम धीरे-धीरे विकसित करना चाहिए। उसके लिए कोई छोटा मार्ग नहीं है।

२०. गुरुभक्तियोग सब विज्ञानों में श्रेष्ठ विज्ञान है।

२१. सच्चे शिष्य के लिए पावनकारी आचार्य के चरणकमल ध्यान का मुख्य विषय है।

२२. गुरुभक्तियोग सब योगों का राजा है।

२३. गुरुभक्ति के अभ्यास से जब मन की बिखरी हुई शक्ति की किरणें एकत्रित होती हैं तब यह योग चमत्कार कर देता है।

२४. सब महात्माओं तथा आचार्यों ने गुरुभक्तियोग के अभ्यास द्वारा महान कार्य किये हैं। जनार्दन स्वामी के शिष्य एकनाथजी गुरुभक्ति से महान हो गये और उनका शिष्य पूरणपोड़ा अविद्वान होते हुए भी गुरु का अपूर्ण ग्रंथ पूर्ण कर सका। शंकराचार्य के शिष्य तोटकाचार्य ने गुरुभक्ति से चमत्कार कर दिखाया। एकलव्य और सहजोबाई गुरुभक्तियोग के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। और भी असंख्य गुरुभक्तों ने गुरु के दैवी चिन्तन से, मधुर स्मृति से अथवा गुरु के दैवी कार्यों में सेवा करने से हृदय की ऐसी शीतलता, मन की मधुरता महसूस की है कि किताबें पढ़कर कथा करनेवाले या सुननेवाले जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। ऐसी है गुरुभक्ति की महिमा !

२५. गुरुभक्तियोग की 'फिलॉसफी' (दर्शन) के मुताबिक गुरु और ईश्वर एक और अभिन्न ही हैं। अतः गुरु को सम्पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण करना अनिवार्य है।

२६. गुरुभक्तियोग में अन्य सब योग समाविष्ट हो जाते हैं। गुरुभक्तियोग का आश्रय लिये बिना कोई भी व्यक्ति अन्य कठिन योगों का अभ्यास नहीं कर सकता।

२७. गुरुभक्तियोग की 'फिलॉसफी' आचार्य की उपासना के द्वारा गुरुकृपा प्राप्त करने के लिए मुख्य दृष्टान्त आगे रखती है।

२८. गुरुभक्तियोग वेद और उपनिषदों के समय जितना प्राचीन है।

२९. हृदय की पवित्रता प्राप्त करने के लिए, ध्यान के लिए

और आत्म-साक्षात्कार के लिए गुरुभक्तियोग की 'फिलॉसफी' गुरुसेवा पर काफी जोर देती है।

३०. जो अपने गुरु की आरोग्यता के लिए लगा रहता है, वह मनुष्य धन्य है।

## कृपा का कार्य

३१. गुरुकृपा एक परिवर्तनकारी बल है।

३२. जहाँ गुरुकृपा है वहाँ विजय है।

३३. आचार्य के पावन चरणों की पूजा करने में और उनके दिव्य आदेशों का पालन करने में ही सच्चा जीवन निहित है।

३४. गुरुभक्तियोग के निरन्तर अभ्यास द्वारा मन की चंचल वृत्ति को निर्मूल करो।

३५. इस लोक के आपके जीवन का परम ध्येय और लक्ष्य अमरत्व प्रदान करनेवाली गुरुकृपा प्राप्त करना है।

३६. गुरु की सेवा करते समय श्रद्धा, आज्ञापालन और आत्मसमर्पण, इन तीनों को याद रखो।

३७. गुरुसेवा के आदर्श को अपने हृदय में गहरा उतर जाने दो।

३८. कुसंग में से अपने मन को अलग करो और जो पूर्णता के प्रतीक हैं, सत्यवेत्ता हैं, सार्वत्रिक प्रेम के केन्द्र और मनुष्य जाति के नम्र सेवक हैं ऐसे गुरु के पावन चरणों में अपने मन को लगा दो।

३९. ज्ञानी गुरु की सहायता से सतत आध्यात्मिक अभ्यास जारी रखो।

४०. सच्चा साधक गुरुभक्तियोग के अभ्यास में रत रहता है।

४१. हो सके उतनी मात्रा में आचार्य के प्रति भक्तिभाव जगाओ, तभी उनके सर्वश्रेष्ठ आशीर्वाद का सुख भोग सकोगे।

४२. पावनकारी आचार्य के पवित्र चरणों को निहारते- निहारते सच्चे आनंद की कोई सीमा नहीं रहती।

४३. एक भी क्षण गँवाओ नहीं। जीवन थोड़ा है। समय जल्दी से सरक जाता है। मृत्यु कब आ जाय, कोई पता नहीं। उठो... जागो... तत्परतापूर्वक आचार्य की सेवा में लग जाओ।

४४. आचार्य की सेवा में डूब जाओ।

४५. गुरु पर श्रद्धा और उनके ज्ञान के वचनों से सज्ज बनो।

## आध्यात्मिक मार्ग और जीवन

४६. आध्यात्मिक मार्ग तीक्ष्ण धारवाली तलवार का मार्ग है। जिनको इस मार्ग का अनुभव है ऐसे गुरु की अनिवार्य आवश्यकता है।

४७. अपने सब अहंभाव का त्याग करो और गुरु के चरणकमलों में अपने-आपको सौंप दो।

४८. गुरु आपको मार्ग दिखाएँगे और प्रेरणा देंगे। मार्ग में आपको स्वयं ही चलना होगा।

४९. जीवन अल्प है। समय जल्दी से सरक रहा है। उठो... जागो... आचार्य के पावन चरणों में पहुँच जाओ।

५०. जीवन थोड़ा है। मृत्यु कब आयेगी, निश्चित नहीं है। अतः गंभीरता से गुरुसेवा में लग जाओ।

५१. हररोज आध्यात्मिक दैनिकी लिखो। उसमें अपनी प्रगति और निष्फलता की सच्ची नोट लिखो और हर महीने अपने गुरु के पास भेजो।

५२. अपने गुरु से ऐसी शिकायत नहीं करना कि आपके अधिक काम के कारण साधना के लिए समय नहीं बचता। नींद के तथा गपशप लगाने के समय में कटौती करो और कम खाओ, तो आपको साधना के लिए काफी समय मिलेगा। आचार्य की सेवा ही सर्वोच्च साधना है।

५३. गुरु की सेवा और गुरु के ही विचारों से दुनिया विषयक विचारों को दूर रखो।

५४. अपने आध्यात्मिक आचार्य के आगे अपनी शक्ति की बड़ाई नहीं करना या प्रमाण नहीं देना। नम्र और सादे बनो। इससे आध्यात्मिक मार्ग में शीघ्र प्रगति कर सकोगे।

५५. आचार्य के कार्यों की निन्दा, आलोचना एवं दोषदर्शन छोड़ देना। उनके प्रत्याघातों से सावधान रहना।

५६. आचार्य की सेवा करते समय चाहे कितने भी दुःख आ जायें, उन्हें सह लेने की तैयारी रखना।

५७. प्रेम एवं अनुकंपा की साक्षात मूर्तिरूप अपने गुरु के समक्ष अपने दोषों को प्रकट करके एकरार करो।

५८. आपके गुरु आपसे जितनी अपेक्षा रखें, उससे भी अधिक सेवा करो।

५९. गुरु के सिवाय और किसीसे प्रगाढ़ सम्बन्ध मत रखो। अन्य लोगों से कम हिलोमिलो।

६०. गुरु का प्रेम, उनकी दयादृष्टि शिष्य की स्थूल प्रकृति का परिवर्तन करके शुद्धीकरण कर सकती है।

## शिष्यत्व की भावना

६१. गुरु की महिमा को पहचानकर उसका अनुभव करो और उनका प्रेम-संदेश मनुष्य जाति में फैलाओ। ऐसा करने से गुरु की कृपा आप पर उतरेगी।

६२. आचार्य के प्रति अपने कर्त्तव्यों से कभी भी विचलित मत हो।

६३. श्रद्धा, विनय एवं भक्तिभावपूर्वक गुरु को खूब मूल्यवान भेंट देनी चाहिए।

६४. गुरु को श्रेष्ठ दान दो। गुरु को लापरवाही में दी हुई भेंट भी शिष्य को वापस नहीं लेना चाहिए।

६५. गुरु की सेवा करते समय अपने भीतर के हेतुओं पर

निगरानी रखो। किसी भी प्रकार के फल, नाम, कीर्ति, सत्ता, धन आदि की आशा के बिना ही गुरु की सेवा करनी चाहिए।

६६. जब आप अपने गुरु के साथ व्यवहार करो, तब सच्चाई एवं निष्ठा रखना।

६७. गुरुभक्तियोग में ईमानदारी के बिना आध्यात्मिक प्रगति संभव नहीं है।

६८. जिस प्रकार चातक पक्षी केवल वर्षा के पानी की आशा में ही जीता है, उसी प्रकार केवल गुरुकृपा की आशा से ही शिष्य आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ सकता है।

६९. गुरु के प्रति आतिथ्यभावना दिखाना यह सर्वोच्च यज्ञ है। **गुरुसेवारूपी यज्ञ के पास अश्वमेध और अन्य महान यज्ञों की भी कोई कीमत नहीं है।**

## ईश्वर-साक्षात्कार का सबसे सरल मार्ग

७०. गुरुचरण में आश्रय लेकर प्रेरणा पाओ।

७१. प्रेम गुरु के चरणकमलों के साथ शिष्य के हृदय को बाँधनेवाली सुवर्ण की कड़ी है।

७२. ईश्वर का अनुभव करने के लिए गुरुभक्तियोग सबसे सरल, सचोट, त्वरित और सलामत मार्ग है। आप सब गुरुभक्ति-योग के अभ्यास से इसी जन्म में ईश्वर का अनुभव प्राप्त करो।

७३. गुरु के नाम की शरण लो। सदैव गुरु के नाम का रटन करो। कलियुग में गुरु की महिमा गाओ और उनका ध्यान करो। ईश्वर-साक्षात्कार के लिए यह श्रेष्ठ और सरल मार्ग है।

७४. मोक्ष अथवा सनातन सुख के द्वार खोलने की गुरुचाबी गुरुभक्ति है।

७५. जीवन मधुर फूल है, जिसमें गुरुभक्ति मीठा शहद है।

७६. गुरु के चरणों की भक्ति सच्चे शिष्य के लिए श्वासोच्छ्वास के बराबर है।

७७. गुरुभक्तियोग के अभ्यास से अमरत्व, सर्वोत्तम शांति और शाश्वत आनंद प्राप्त होता है।

७८. गुरु प्रेम और करुणा की मूर्ति हैं। आपको अगर उनके आशीर्वाद प्राप्त करने हों तो आपको भी प्रेम और करुणा की मूर्ति बनना चाहिए।

७९. गुरु के प्रति भक्ति में शिष्य के हृदय में स्वार्थ की एक बूँद भी नहीं होनी चाहिए।

८०. गुरु के प्रति भक्ति अखूट और स्थायी होनी चाहिए।

८१. गुरुसेवा के लिए पूरे हृदय की इच्छा ही गुरुभक्ति का सार है।

८२. शरीर या चमड़ी का प्रेम वासना कहलाती है, जबकि गुरु के प्रति प्रेम भक्ति कहलाता है। ऐसा प्रेम प्रेम के खातिर होता है।

८३. गुरु के प्रति भक्तिभाव ईश्वर के प्रति भक्तिभाव का माध्यम है।

८४. जप, कीर्तन, प्रार्थना, ध्यान, साधुसेवा, अध्ययन और साधुसमागम के द्वारा अपने हृदयकुँज में शुद्ध गुरुभक्ति का फूल विकसित करो।

८५. गुरु की सेवा आपके जीवन का एकमात्र लक्ष्य और ध्येय होना चाहिए।

८६. स्वयं की अपेक्षा गुरु के प्रति अधिक प्रेम रखो।

## विश्वप्रेम का विकास

८७. अपने शत्रुओं के प्रति प्रेम रखो। अपने से निम्न कोटि के लोगों के प्रति प्रेम रखो। प्राणियों के प्रति प्रेम रखो। अपने गुरु के प्रति प्रेम रखो। सब साधु-संतों के प्रति प्रेम रखो।

८८. गुरु की निःस्वार्थ सेवा, महात्माओं का सत्संग, प्रार्थना और गुरुमंत्र के जप द्वारा धीरे धीरे विश्वप्रेम का विकास करो।

८९. अन्य लोगों ने जो चीज महाप्रयत्न से सिद्ध की हो वह चीज आप गुरुकृपा से प्राप्त कर सकते हैं।

९०. धन्यवाद है विनम्र लोगों को, क्योंकि उन्हें तुरन्त गुरुकृपा मिल जाती है। जिन्होंने गुरु की शरण ली है ऐसे पवित्र आत्माओं को धन्यवाद है, क्योंकि उनको परम सुख अवश्य प्राप्त होता है।

९१. गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए नम्रता एकमात्र राजमार्ग है।

९२. आध्यात्मिक आचार्य अथवा सच्चे महापुरुष की प्रथम कसौटी उनकी नम्रता है। यह उनका मूल सद्‌गुण है।

## गुरु के साथ तादात्म्य

९३. सूई के छेद से ऊँट गुजर सके इससे भी अत्यधिक मुश्किल बात है गुरुकृपा के बिना ईश्वरकृपा प्राप्त करना।

९४. जैसे पानी को दूध में डाला जाय तो वह दूध में मिल जाता है और अपना व्यक्तित्व गँवा देता है वैसे ही सच्चे शिष्य को चाहिए कि वह अपने-आपको सम्पूर्णतः गुरु को सौंप दे, उनके साथ एकरूप हो जाय।

९५. जैसे छोटे-छोटे झरने एवं नदियाँ महान पवित्र नदी गंगा से मिल जाने के कारण खुद भी पवित्र होकर पूजे जाते हैं और अन्तिम लक्ष्य समुद्र को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार सच्चा शिष्य गुरु के पवित्र चरणों का आश्रय लेकर तथा गुरु के साथ एकरूप बनकर शाश्वत सुख को प्राप्त होता है।

९६. बालक बोलना-चलना क्या एक ही दिन में सीखता है? बोलना-चलना सीखने के लिए बालक को माँ-बाप के लम्बे सहवास एवं योग्य निगरानी की आवश्यकता नहीं पड़ती क्या? पड़ती ही है। इसी प्रकार सच्चे और ईमानदार शिष्य को गुरु के साथ लम्बे समय तक रहना चाहिए और तन-मन से सब सेवा करना चाहिए। इस पूरे समय के दौरान सर्वोच्च विद्या सीखने के लिए हृदयपूर्वक

ध्यान देना चाहिए और उसमें रस लेना चाहिए। इस प्रकार उसे परम ज्ञान प्राप्त होगा, और किसी प्रकार से नहीं।

## सब वरदान देनेवाले

९७. कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि माँगनेवाले को उसका मनोवांछित वरदान अवश्य देते ही हैं, इसी प्रकार गुरु भी माँगनेवाले को इष्ट वस्तु अवश्य देते हैं। अत: सच्चा शिष्य तो केवल मोक्ष प्राप्त करने के लिए उपनिषद् की महाविद्या ही माँगता है।

९८. जिस प्रकार बालक जब धीरे-धीरे कदम रखता है और स्वतंत्र रीति से चलने की कोशिश करता है तब कभी-कभी गिर पड़ता है और फिर खड़ा होता है तथा माँ की सहायता की जरूरत पड़ने पर उसकी सहायता माँगता है, इसी प्रकार साधना के प्रारंभ के स्तरों में शिष्य को करुणामय गुरु की सहायता एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। अत: उसे वह माँगना चाहिए।

९९. सच्चे शिष्य को मोक्ष के लिए तीव्र आकांक्षा होनी चाहिए तथा संभव हो उतनी तमाम रीतियों से वह आकांक्षा प्रकट करनी चाहिए तभी उसकी इच्छा की पूर्ति करने में गुरु उसे सहायभूत हो सकते हैं। इस आकांक्षा को प्रयत्न कह सकते हैं और गुरु की करुणामय सहाय को माता की वात्सल्यमयी कृपा कह सकते हैं।

१००. सुन्दर ढंग से निर्मित मूर्ति के लिए दो चीजें आवश्यक हैं : एक है अखण्ड, कमीरहित अच्छा संगमरमर का टुकड़ा और दूसरी चीज है कुशल शिल्पी। संगमरमर का टुकड़ा शिल्पी के हाथ में रहना अनिवार्य है जिससे छीनी के द्वारा उसे कुरेदकर सुन्दर मूर्ति बनाया जा सके। इसी प्रकार शिष्य को भी चाहिए कि वह अपने-आपको स्वच्छ और शुद्ध करके बिल्कुल क्षतिरहित संगमरमर के टुकड़े जैसा बनाए और अपने गुरु के कुशल मार्गदर्शन में रख दे, जिससे गुरु छीनी से उसे कुरेदकर प्रभु की दिव्य मूर्ति में परिवर्तित कर सकें।

१०१. जैसे सूर्योदय होते ही तमाम अंधकार का तुरन्त नाश हो जाता है वैसे ही गुरुकृपा उतरते ही शिष्य के मन में आवरण और अविद्या का तुरन्त नाश हो जाता है।

१०२. जिस प्रकार सूर्य की प्रखर किरणों से तप्त मनुष्य वृक्ष की शीतल छाया में और दिनभर की गर्मी के बाद शीतल चाँदनी में असीम आनन्द की अनुभूति करता है उसी प्रकार संसार की प्रखर किरणों से जला हुआ और शांति के लिए व्याकुल बना हुआ मनुष्य ब्रह्मनिष्ठ गुरु के चरणों में इच्छित शांति और आनन्द की अनुभूति करता है।

१०३. जिस प्रकार चातक पक्षी लम्बे समय तक इन्तजार करने के बाद वर्षा के केवल एक ही जलबिंदु से अपनी प्यास बुझाता है उसी प्रकार सच्चे शिष्य को अपने गुरु की सेवा करनी चाहिए और उपदेश-वचन का इन्तजार करना चाहिए। इससे उसकी तमाम व्यथाएँ शांत होंगी और वह सदा के लिए मुक्त हो जायेगा।

१०४. जैसे अग्नि का स्वभाव ही ऐसा है कि उसके निकट आनेवाली प्रत्येक वस्तु को जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही जो मनुष्य कृपालु गुरु की प्राप्ति कर लेता है उसके किसी भी गुण-दोषों को देखे बिना ब्रह्मनिष्ठ गुरु की कृपा उसके तमाम पापों को जलाकर भस्म कर देती है।

## आध्यात्मिक प्रवृत्ति की आवश्यकता

१०५. जो कोई मनुष्य दुःखों से पार होकर सुख एवं आनंद प्राप्त करना चाहता हो उसे सच्चे अंतःकरण से गुरुभक्तियोग का अभ्यास करना चाहिए।

१०६. गुरु के पवित्र चरणों के प्रति भक्तिभाव सर्वोत्तम गुण है। इस गुण को तत्परता एवं परिश्रमपूर्वक विकसित किया जाय तो इस संसार के दुःख और अज्ञान के कीचड़ से मुक्त होकर शिष्य

अखूट आनन्द और परम सुख के स्वर्ग को प्राप्त करता है।

१०७. प्रारंभ में तरंग के रूप में दिखनेवाली विषय-वृत्तियाँ कुसंग के कारण महासागर का रूप धारण कर लेती हैं। अत: कुसंग का त्याग करके आचार्य के जीवनरक्षक चरणों का आश्रय लो।

१०८. अगर आप गुरुसेवा में रममाण रहते हैं तो आप चिन्ताओं को जीत सकते हैं। सब चिन्ताओं का यह अचूक मारण है।

१०९. उत्तम शिष्य को अपने गुरु पर किसी भी परिस्थिति में सन्देह नहीं लाना चाहिए या उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

११०. आदरणीय गुरु के पवित्र चरणों में साष्टांग दण्डवत प्रणाम करने में लज्जित होना, यह गुरुभक्तियोग के अभ्यास में बड़ा अवरोध है।

१११. स्वावलम्बन, आत्मन्यायीपन की भावना, मिथ्याभिमान, आत्माभिमान, अपनी बात ही सत्य है ऐसा मानना, आलस्य, हठाग्रह, कूथली, कुसंग, बेईमानी, उद्दण्डता, काम, क्रोध, लोभ और 'मैं'पना... ये चीजें गुरुभक्तियोग के मार्ग में महान भयस्थान हैं।

११२. कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, हठयोग, ज्ञानयोग आदि सब योगों की नींव गुरुभक्तियोग है। जो शिष्य मानता है कि मैं सब कुछ जानता हूँ वह 'मैं'पने की भावना के कारण अपने गुरु से कुछ भी नहीं सीख सकेगा।

११३. 'मैं खुद सच्चा हूँ...' ऐसा गुरु के समक्ष दिखाना, यह शिष्य के लिए बहुत ही खतरनाक आदत है।

११४. आप जब गुरु की सेवा करते हों तब नम्र, मधुरभाषी, मृदु और विवेकी बनो। इससे गुरु का हृदय जीत सकोगे। गुरु के समक्ष वाणी या वर्तन में कभी उद्दण्डता मत दिखाओ।

११५. मोटी बुद्धि का विद्यार्थी गुरुभक्तियोग के अभ्यास में किसी भी प्रकार की ठोस प्रगति नहीं कर सकता।

११६. शिष्य को आदरणीय आचार्य के जीवन की उज्ज्वल

बातें ही देखनी चाहिए।

११७. मन में अगर गुरु के विषय में कुविचार आयें तो अपने-आपको दण्ड दो।

११८. आपके लिए केवल इतना ही आवश्यक है कि गुरुभक्तियोग के मार्ग में अन्तःकरणपूर्वक प्रामाणिक प्रयत्न करना है।

११९. अपना गुरुमंत्र अथवा गुरु का पवित्र नाम हररोज एक घण्टे तक स्वच्छ नोटबुक में लिखो।

१२०. चलते हुए, खाते हुए, कार्यालय में काम करते हुए भी सदैव अपने गुरुमंत्र का जप करते रहो।

## गुरु का उन्नतिकारक सान्निध्य

१२१. महान गुरु में स्थित चमत्कारिक आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा शिष्य में जो अद्भुत परिवर्तन किया जाता है उस उपकार के महान ऋण का पूरा वर्णन करने की शक्ति वाणी में नहीं है।

१२२. 'सद्गुरु साक्षात ईश्वर हैं' ऐसा जो कहा गया है वह सत्य ही है। उनकी महानता शब्दातीत है।

१२३. गुरु का सान्निध्य प्रबल आध्यात्मिक स्पन्दनों के द्वारा शिष्य को ऊँची भूमिका पर ले जाता है और उसे प्रेरणा देता है। गुरु की महिमा शिष्य की स्थूल प्रकृति का परिवर्तन करने में निहित है।

१२४. सद्गुरु के पूज्य चरणों में आश्रय लेना ही सच्चा जीवन है, जीवन जीने की सही रीति है।

१२५. गुरु की शरणागति में जाना, यही आत्म-साक्षात्कार का मार्ग है।

१२६. जब तक गुरु में अविचल श्रद्धा न हो, तब तक किसीको भी परम सुख भोगने को नहीं मिलता।

१२७. हमें अयोग्य लगता हो फिर भी गुरु जो करते हैं वह

योग्य ही है।

१२८. गुरु के उपदेश में अविचल और अविरत श्रद्धा सच्ची गुरुभक्ति का मूल है।

१२९. गुरु सदैव अपने शिष्य के हृदय में बसते हैं।

१३०. कबीरजी कहते हैं : ''गुरु और गोविन्द दोनों मेरे समक्ष खड़े हैं, तो मैं किसको प्रणाम करूँ ? धन्य हैं वे गुरुदेव जिन्होंने मुझे गोविन्द के दर्शन करवाये !''

१३१. केवल गुरु ही अपने योग्य शिष्य को दिव्य प्रकाश दिखा सकते हैं।

१३२. गुरु अपने शिष्य को असत् में से सत् में, मृत्यु में से अमरत्व में, अन्धकार में से प्रकाश में और भौतिकता में से आध्यात्मिकता में ले जाते हैं।

## जगहितकारी गुरु

१३३. सच्चे गुरु शिष्य का प्रारब्ध बदल सकते हैं।

१३४. सद्गुरु पैगंबर और देवदूत हैं, विश्व के मित्र और जगत के लिए कल्याणमय हैं, पीड़ित मानवजाति के ध्रुवतारक हैं।

१३५. सच्चे गुरु की सेवा करने से काल का शस्त्र बुट्ठा बन जाता है। गुरु के ज्ञान के पवित्र शब्द शिष्य के हृदय में प्रवेश करते हैं। गुरुकृपा के बिना बन्धन से मुक्ति नहीं है।

१३६. जो गुरुभक्तियोग के मार्ग से विमुख बना है वह मृत्यु, अन्धकार और अज्ञान के भँवर में घूमता रहता है।

१३७. स्त्री एवं पुरुष अपनी आनुवंशिक शक्ति के मुताबिक मानवता के पथ का अनुसरण करने की कोशिश कर सकते हैं। उनको महान गुरु का उपदेश सूर्य की प्रखर किरण की तरह जगत के भ्रांतिरूपी अन्धकार को विदीर्ण करके प्रकाशित करता है।

१३८. गुरुकृपा से ही मनुष्य को जीवन का सच्चा उद्देश्य समझ

में आता है और आत्म-साक्षात्कार करने की प्रबल आकांक्षा उत्पन्न होती है।

१३९. शिष्य के हृदय के तमाम दुर्गुणरूपी रोग पर गुरुकृपा सबसे अधिक असरकारक, प्रतिरोधक एवं सार्वत्रिक औषध है।

१४०. यदि कोई मनुष्य गुरु के साथ अखण्ड और अविच्छिन्न सम्बन्ध बाँध ले तो जितनी सरलता से एक घट में से दूसरे घट में पानी बहता है उतनी ही सरलता से गुरुकृपा बहने लगती है।

१४१. केवल यंत्रवत प्रणाम करने से गुरुकृपा प्राप्त नहीं की जा सकती। वह तो गुरु के उपदेश को जीवन में उतारने से ही प्राप्त हो सकती है।

१४२. रात्रि को निद्राधीन होने से पहले अन्तर्मुख होकर शिष्य को निरीक्षण करना चाहिए कि गुरु की आज्ञा का पालन कितनी मात्रा में किया है।

१४३. हररोज गुरु की सेवा का प्रारंभ करने से पहले शिष्य को मन में निश्चय करना चाहिए कि पूर्व की अपेक्षा अब अधिक भक्तिभाव से एवं अधिक आज्ञाकारिता से गुरु की सेवा करूँगा।

१४४. गुरु में तथा शास्त्रों में जो थोड़ी-बहुत श्रद्धा होती है वह भी कुसंग से शीघ्र नष्ट हो जाती है।

## नैतिक पूर्णता की आवश्यकता

१४५. जो गुरु के पवित्र चरणों के प्रति सच्चा भक्तिभाव विकसित करना चाहते हों, उन्हें सब प्रकार की खराब आदतों का त्याग कर देना चाहिए। जैसे कि धूम्रपान करना, पान खाना, नास सूँघना, मद्यपान करना, जुआ खेलना, सिनेमा देखना, अखबार-नोवेल पढ़ना, फैशन करना, मांस खाना, चोरी करना, दिन में सोना, गाली बोलना, निन्दा-आलोचना करना आदि।

१४६. जो गुरुभक्तियोग का अभ्यास करना चाहते हों उन्हें

सब दिव्य गुणों का विकास करना चाहिए। जैसे कि सत्य बोलना, न्यायपरायणता, अहिंसा, इच्छाशक्ति, सहिष्णुता, सहानुभूति, स्वाश्रय, आत्मश्रद्धा, आत्मसंयम, त्याग, आत्मनिरीक्षण, तत्परता, सहनशक्ति, समता, निश्चय, विवेक, वैराग्य, संन्यास, हिम्मत, आनन्दी स्वभाव, हरएक वस्तु में मर्यादा रखना आदि।

१४७. आनन्द के लिए बाहर क्यों व्यर्थ खोज करते हो? सद्गुरु-चरणों के समीप जाओ और शाश्वत् सुख उपभोग करो।

१४८. सद्गुरु के चरणों में श्रद्धा और भक्तिभाव- ये दो पंख हैं, जिनकी सहायता से शिष्य पूर्णता के शिखर पर पहुँचने में शक्तिमान बनता है।

*प्रकरण : ६*

# गुरुभक्ति का संविधान

## *योग्य व्यवहार के नियम*

१. गुरु के कार्य की अविचारी आलोचना नहीं करना चाहिए।

२. गुरु को अविचारी सलाह नहीं देना चाहिए। हमेशा चुप रहो।

३. जाने-अनजाने गुरु की भावना को ठेस मत पहुँचाओ।

४. सद्गुरु के चरणकमल की धूलि अमरत्व प्रदान करती है।

५. गुरु के पावनकारी चरणों की पवित्र धूलि शिष्य के लिए सचमुच वरदानस्वरूप है।

६. आचार्य के पवित्र चरणों की धूलि ललाट पर लगाना सबसे महान भाग्य की बात है।

७. जीवन का सबसे महान और दुर्लभ सौभाग्य गुरु के चरणकमल का स्पर्श है।

८. गुरुकृपा और स्त्री का मुख (काम) ये दोनों परस्पर विरुद्ध चीजें हैं। अगर आपको एक की आवश्यकता हो तो दूसरी का त्याग करो।

९. गुरु के पावन चरणों की पवित्र धूलि शिष्य को रिद्धि-सिद्धि दिलाती है।

१०. सद्गुरु के जीवनदायी चरणों की धूलि पूजने योग्य है।

११. शिष्य की सबसे महान संपत्ति अपने सद्गुरु के चरणकमल की पवित्र धूलि है।

१२. जो व्यक्ति अपने गुरु के चरणकमल की पवित्र धूलि को अपने ललाट पर लगाता है, उसका हृदय शीघ्र पवित्र बनता है।

१३. गुरु के चरणकमल की धूलि की महिमा अवर्णनीय है।

१४. इस पृथ्वी पर हमारा जीवन अन्तःकरणपूर्वक सद्गुरु के प्रति दिनोंदिन वर्धमान भक्तिभाव से, अधिक-से-अधिक उनकी सेवा करने के लिए उनकी आज्ञा में रहने के लिए एक उत्तम मौका है।

१५. गुरुभक्तियोग की नींव गुरु के प्रति अखण्ड श्रद्धा में निहित है।

१६. शिष्य को समझ में आता है कि हिमालय की एकान्त गुफा में समाधि लगाने की अपेक्षा गुरु की निजी सेवा करने से वह उनके ज्यादा संयोग में आ सकता है, गुरु के साथ अधिक एकता स्थापित कर सकता है।

१७. गुरु को सम्पूर्ण, बिनशरती आत्मसमर्पण करने से अचूक गुरुभक्ति प्राप्त होती है।

## जीवन के जंजाल से परे

१८. जब आप मुश्किलों एवं मुसीबतों में आ जायें तब गुरु की कृपा के लिए प्रार्थना करें। अपने सच्चे हृदय से बार-बार प्रार्थना करें। सब सरल बन जायेगा।

१९. प्रातःकाल में जागने के तुरन्त बाद और रात्रि में सोने से पहले गुरु का चिन्तन करो। पूर्णतः उनकी शरण में जाओ।

२०. दिन के दौरान अगर गुरु की सेवा के बारे में आज्ञापालन में निष्ठा का अभाव या ऐसी कोई भूल हुई हो तो रात्रि में सोने से पहले उसका विचार करो।

२१. अपनी आवश्यकताएँ कम करो। पैसे बचाओ और गुरु के चरणकमलों में अर्पण करो। इसमें आपकी गुरुभक्ति की कसौटी है।

२२. ब्रह्मनिष्ठ गुरु के चरणकमलों के सान्निध्य में जाने के लिए कला, विज्ञान या विद्वत्ता कुछ भी आवश्यक नहीं है। आवश्यकता है केवल उनके प्रति प्रेम और भक्ति से पूर्ण हृदय की, जो फल की अपेक्षा से रहित हो, केवल उनमें ही निरत रहने के संकल्पवाला हो, केवल उनके ही कार्य में लगा हुआ हो, केवल उनके ही प्रेम में मग्न रहनेवाला हो।

२३. मानसिक शांति और आनन्द गुरु को किये हुए आत्मसमर्पण का फल है।

२४. गुरु के प्रति सच्चे भक्तिभाव की कसौटी आन्तरिक शांति और उनके आदेशों का पालन करने की तत्परता में निहित है।

२५. गुरुसेवा के द्वारा ज्ञान में वृद्धि करो और मुक्ति पाओ।

२६. गुरुकृपा से जिनको विवेक और वैराग्य प्राप्त हुआ है उनको धन्यवाद है ! वे सर्वोत्तम शांति और सनातन सुख का भोग करेंगे।

२७. शिष्य गुरु को जब तक योग्य गुरुदक्षिणा नहीं देगा, तब तक गुरु के दिये हुए ज्ञान का फल मिलेगा नहीं।

२८. गुरुभक्तियोग मन का संयम और गुरु की सेवा द्वारा उसमें होनेवाला परिवर्तन है।

# शिष्यों के प्रकार

२९. उत्तम शिष्य पैट्रोल जैसा होता है। काफी दूर होते हुए भी गुरु के उपदेश की चिंगारी को तुरन्त पकड़ लेता है।

३०. दूसरी कक्षा का शिष्य कपूर जैसा होता है। गुरु के स्पर्श से उसकी अन्तरात्मा जाग्रत होती है और वह उसमें आध्यात्मिकता की अग्नि को प्रज्वलित करता है।

३१. तीसरी कक्षा का शिष्य कोयले जैसा होता है। उसकी अन्तरात्मा को जाग्रत करने में गुरु को बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है।

३२. चौथी कक्षा का शिष्य केले के तने जैसा है। उसके लिए किये गये कोई भी प्रयास काम नहीं लगते। गुरु कितना भी करें फिर भी वह ठण्डा और निष्क्रिय रहता है।

३३. "हे शिष्य ! सुन। तू केले के तने जैसा मत होना। तू पैट्रोल जैसा शिष्य बनने का प्रयास करना अथवा तो कम-से-कम कपूर जैसा तो अवश्य बनना।"

३४. आप जब अपने गुरु के पवित्र चरणों की शरण में जाओ तब उनसे दुन्यावी आवश्यकताएँ या और कोई चीजें नहीं माँगना किन्तु उनकी कृपा ही माँगना जिसके कारण आपमें उनके प्रति सच्चा भक्तिभाव और स्थायी श्रद्धा जगे।

३५. गुरु ही मार्ग हैं, जीवन हैं और आखिरी ध्येय हैं। गुरुकृपा के बिना किसीको भी सर्वोत्तम सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

३६. गुरु ही मोक्षद्वार हैं। गुरु ही मूर्तिमन्त कृपा हैं।

३७. जीने के लिए मरो। अपने गुरु के चरणकमलों में मरो। अहंभाव का त्याग करके मरो जिससे पुनः सच्चा दिव्य जीवन जी सको। जिस जीवन में गुरुकृपा के प्राणों की धड़कन नहीं है, जो जीवन गुरुकृपा से दिव्य स्वरूप को प्राप्त नहीं हुआ है वह सच्चा

जीवन नहीं है।

३८. गुरु और शिष्य के बीच जो वास्तविक सम्बन्ध है उसका वर्णन नहीं हो सकता, वह लिखा नहीं जा सकता, वह समझाया नहीं जा सकता। सत्य के सच्चे खोजी को करुणा-स्वरूप ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास श्रद्धा और भक्तिभाव से जाना चाहिए। उनके साथ चिरकाल तक रहकर सेवा करनी चाहिए।

३९. गुरुभक्तियोग एक स्वतंत्र योग है।

४०. शिष्य की कसौटी करने के लिए गुरु जब विघ्न डालें, तब धैर्य रखना चाहिए।

४१. गुरुसेवा के कार्य में आत्मभोग देना, यह गुरु के पवित्र चरणों के प्रति भक्तिभाव विकसित करने का उत्तम साधन है।

४२. प्रार्थना, जप, कीर्तन, समाधि, गुरुसेवा, ऊँचे भव्य विचार और समझ से मन की शांति उत्पन्न होती है।

## गुरु के आश्रय में

४३. गुरु की सेवा के दौरान शिष्य को बहुत ही नियमित रहना चाहिए।

४४. गुरु के दिव्य कार्य हेतु शिष्य को मन, वचन और कर्म में बहुत ही पवित्र रहना चाहिए।

४५. आपके हृदयरूपी उद्यान में निष्ठा, सादगी, शांति, सहानुभूति, आत्मसंयम और आत्मत्याग जैसे पुष्प सुविकसित करो और वे पुष्प अपने गुरु को अर्घ्य के रूप में अर्पण करो।

४६. शिष्य को गुरु की संपत्ति पर निगरानी रखनी चाहिए। रक्षक की तरह उस पर सतत दृष्टि रखनी चाहिए।

४७. ब्रह्मनिष्ठ गुरु की कृपा से प्राप्त न हो सके, ऐसा तीनों लोकों में कुछ भी नहीं है।

४८. गुरुभक्तियोग का अभ्यास किये बिना साधक के लिए

ईश्वर-साक्षात्कार की ओर ले जानेवाले आध्यात्मिक मार्ग में प्रविष्ट होना संभव नहीं है।

४९. गुरुभक्तियोग दिव्य सुख के द्वार खोलने के लिए गुरुचाबी है।

५०. गुरुभक्तियोग के अभ्यास से सर्वोच्च शांति के राजमार्ग का प्रारंभ होता है।

५१. सद्‌गुरु के पवित्र चरणों में आत्मसमर्पण करना ही गुरुभक्तियोग की नींव है।

५२. अगर आपको सद्‌गुरु के जीवनदायक चरणों में दृढ़ श्रद्धा एवं भक्तिभाव होगा तो आपको गुरुभक्तियोग के अभ्यास में अवश्य सफलता मिलेगी।

५३. केवल मनुष्य का पुरुषार्थ ही योगाभ्यास के लिए पर्याप्त नहीं है, गुरुकृपा अनिवार्यतः आवश्यक है।

५४. बाघ, सिंह या हाथी जैसे जंगली प्राणियों को पालना बहुत ही आसान है, पानी या आग पर चलना बहुत आसान है लेकिन मनुष्य में अगर गुरुभक्तियोग के अभ्यास के लिए तमन्ना न हो तो गुरु के चरणकमलों में आत्मसमर्पण करना बहुत कठिन है।

५५. गुरुभक्तियोग के अभ्यास से शिष्य को सर्वोत्तम शांति, आनन्द और अमरता प्राप्त होती है।

५६. जीवन का ध्येय गुरुभक्तियोग का अभ्यास करके सद्‌गुरु की कल्याणकारी कृपा प्राप्त करना है।

५७. गुरुभक्तियोग के अभ्यास से जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्ति मिलती है।

५८. गुरुभक्तियोग अमरता, सनातन सुख, मुक्ति, पूर्णता, अखूट आनन्द एवं चिरंतन शांति देता है।

५९. संसार या सांसारिक प्रक्रिया के मूल में मन है। बन्धन और मुक्ति, सुख और दुःख का कारण मन है। इस मन को

गुरुभक्तियोग के अभ्यास से ही नियंत्रित किया जा सकता है।

६०. सद्‌गुरु के दिव्य कार्य के वास्ते आत्मसमर्पण करना अथवा तन, मन, धन अर्पण करना चाहिए। सद्‌गुरु की कल्याणकारी कृपा प्राप्त करने के लिए उनके पवित्र चरणों का ध्यान करना चाहिए। गुरु के पवित्र उपदेशों को सुनकर निष्ठापूर्वक उनके मुताबिक चलना चाहिए।

६१. उल्लू सूर्यप्रकाश के अस्तित्व को माने या न माने फिर भी सूर्य तो सदा प्रकाशित रहता है। उसी प्रकार अज्ञानी और चंचल मनवाला शिष्य माने या न माने फिर भी गुरु की कल्याणकारी कृपा तो चमत्कारिक परिणाम देती ही है।

६२. अपने गुरु को ईश्वर मानकर उनमें विश्वास रखो, उनका आश्रय लो, ज्ञान की दीक्षा लो।

६३. केवल शुद्ध भक्ति से ही गुरु प्रसन्न होते हैं। गुरुभक्तियोग के अभ्यास से मन की शांति और स्थिरता प्राप्त होती है।

६४. जिसने सद्‌गुरु के पवित्र चरणों में आश्रय लिया हैं, ऐसे शिष्य के पास से मृत्यु पलायन हो जाती है।

६५. गुरुभक्तियोग का अभ्यास सांसारिक पदार्थों के प्रति वैराग्य और अनासक्ति पैदा करता है और अमरता प्रदान करता है।

६६. सद्‌गुरु के जीवनप्रदायक चरणों की भक्ति महा पापी का भी उद्धार कर देती है।

६७. जिसने सद्‌गुरु के पवित्र चरणों में आश्रय लिया है ऐसे पवित्र हृदयवाले शिष्य के लिए कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं है।

६८. साधुत्व और संन्यास से, अन्य योगों से एवं दान से, मंगल कार्य करने आदि से जो कुछ भी प्राप्त होता है वह सब गुरुभक्तियोग के अभ्यास से शीघ्र प्राप्त होता है।

६९. गुरुभक्तियोग शुद्ध विज्ञान है। वह निम्न प्रकृति को वश में लाने की एवं परम आनंद प्राप्त करने की रीति सिखाता है।

७०. गुरुदेव की कल्याणकारी कृपा प्राप्त करने के लिए अपने अंतःकरण की गहरायी से उनको प्रार्थना करो। ऐसी प्रार्थना चमत्कार कर सकती है।

७१. जिस शिष्य को गुरुभक्तियोग का अभ्यास करना है, उसके लिए कुसंग एक महान शत्रु है।

७२. जो नैतिक पूर्णता, गुरु की भक्ति आदि के बिना ही गुरुभक्तियोग का अभ्यास करता है उसे गुरुकृपा नहीं मिल सकती।

## गुरुभक्ति के लाभ

७३. गुरु में अविचल श्रद्धा शिष्य को कैसी भी मुसीबत से पार होने की गूढ़ शक्ति देती है।

७४. गुरु में दृढ़ श्रद्धा साधक को अनन्त ईश्वर के साथ एकरूप बनाती है।

७५. जिस शिष्य को गुरु में श्रद्धा है वह दलील नहीं करता, विचार नहीं करता, तर्क नहीं करता। वह तो केवल आज्ञा ही मानता है।

७६. शिष्य जब गुरु में श्रद्धा खो देता है तब उसका जीवन उजाड़ मरुभूमि जैसा बन जाता है। साधक जब गुरु में श्रद्धा खो बैठता है तब उसके जीवन का वैभव नष्ट हो जाता है।

७७. जीवन का पानी गुरु में दृढ़ श्रद्धा है।

७८. सदैव याद रखो : मनुष्य जब पवित्र गुरु के शब्दों मे श्रद्धा खो देता है तब वह सब कुछ खो बैठता है। अतः गुरु में पूण श्रद्धा रखो।

७९. गुरु के चरणकमलों की प्रार्थना शिष्य के हृदय को प्रफुल्ल बनाती है। उसके मन को शक्ति, शांति एवं शुद्धि से भर देती है।

८०. गुरुदेव के पावन चरणों का भावपूर्वक प्रक्षालन करके उ चरणोदक को अपने सिर पर छिड़को। यह महान शुद्धि करनेवाला है

८१. दिव्य गुरु के पवित्र चरणों की धूलि बनना यह जीवन का अमूल्य लाभ है।

८२. आध्यात्मिक गुरु के पवित्र चरणों की प्रार्थना सुबह की चाबी और शाम का ताला है। अर्थात् सुबह होने से पहले एवं शाम होने के बाद प्रार्थना करनी चाहिए।

८३. सद्‌गुरु के चरणों के प्रति श्रद्धा एवं भक्तिभावरहित जीवन मरुभूमि में खड़े हुए रसहीन वृक्ष जैसा है।

८४. गुरु के पवित्र चरणों की प्रार्थना शिष्य के हृदय की गहराई में से निकलनी चाहिए।

८५. शिष्य के शुद्ध, निखालिस हृदय से निकली हुयी आर्जवपूर्ण प्रार्थना ब्रह्मनिष्ठ गुरु तुरन्त सुनते हैं।

८६. दुःख से मुक्ति पाने के लिए नहीं अपितु दुःख सहन करने की शक्ति एवं तितिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करो।

८७. सब दोषों से पार होने की शक्ति के लिए सद्‌गुरु के चरणकमलों की प्रार्थना करो।

८८. हर एक अपने ढंग से गुरु की सेवा करना चाहता है लेकिन गुरु चाहें उस प्रकार गुरु की सेवा कोई नहीं करना चाहता।

८९. शिष्य अपने गुरु की सेवा करना तो चाहता है, पर किसी प्रकार का कष्ट सहना नहीं चाहता।

## सच्चे सुख का मूल

९०. सच्चा सुख सद्‌गुरु की सेवा में निहित है।

९१. शिष्य गुरुसेवा के द्वारा ही देहाध्यास से छूटकर ऊँची कक्षा प्राप्त कर सकता है।

९२. अपने गुरु में, गुरु की महिमा में और गुरु के नामजप के प्रभाव में सच्ची, पूर्ण, जीवन्त और अविचल श्रद्धा रखो।

९३. गुरु की सम्पूर्णतः शरणागति लेना गुरुभक्ति की अनिवार्य शर्त है।

९४. जब तक आपको गुरु में अखण्ड श्रद्धा न जगे तब तक गुरु की कृपा आप पर उतरेगी, ऐसी आशा मत करना।

९५. जो गुरु मुक्तात्मा हैं उनके कार्य को अश्रद्धा से या सन्देह से नहीं देखना चाहिए।

९६. ईश्वर, मनुष्य एवं ब्रह्माण्ड के विषय में सच्चा ज्ञान गुरु से लिया जाता है।

९७. गुरु साधनारूपी नाव के कर्णधार हैं लेकिन पतवार तो साधक को ही चलानी होगी।

९८. गुरुभक्ति तमाम आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का मूल है।

९९. गुरु के प्रति भक्तिभाव ईश्वरप्राप्ति का सरल एवं आनन्ददायक मार्ग है।

१००. गुरुभक्ति धर्म का सार है।

१०१. गुरु के चरणकमलों के प्रति भक्तिभाव जीवन को सचमुच सार्थक बनाता है।

१०२. गुरुभक्ति का आदि, मध्य और अंत मधुर एवं सुखदायक है।

१०३. गुरुप्रेम एवं संसारप्रेम दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

१०४. गुरु की एवं लक्ष्मी की एक साथ सेवा नहीं हो सकती।

१०५. गुरुद्रोह ईश्वरद्रोह के बराबर है।

## भक्ति का अर्थ

१०६. गुरु के प्रति भक्तिभाव होना आध्यात्मिक निर्माण- कार्य की नींव है।

१०७. भावना की उफान या उत्तेजना गुरुभक्ति नहीं कहलाती।

१०८. शरीरप्रेम यानी गुरुप्रेम का इन्कार। शिष्य अगर अपने शरीर की अधिक देखभाल करता है तो वह गुरु की सेवा नहीं कर पाता।

१०९. साधक के दुष्ट स्वभाव के नाश का एकमात्र उपाय गुरुसेवा है।

११०. गुरु बिल्कुल हिचकिचाहट से रहित, निःशेष एवं सम्पूर्ण आत्मसमर्पण के सिवाय और कुछ नहीं चाहते। जैसे प्रायः आज कल के शिष्य करते हैं वैसे आत्मसमर्पण केवल शब्दों की बात ही नहीं होनी चाहिए।

१११. गुरु को जितनी अधिक मात्रा में आत्मसमर्पण करोगे उतनी अधिक गुरुकृपा प्राप्त करोगे।

११२. कितनी मात्रा में गुरुकृपा उतरेगी, इसका आधार कितनी मात्रा में आत्मसमर्पण हुआ है इस पर निर्भर करता है।

११३. शिष्य का कर्त्तव्य गुरु के प्रति प्रेम रखने का एवं गुरु की सेवा करने का है।

११४. गुरु की कृपा गुरुभक्तियोग का आखिरी लक्ष्य है।

११५. गुरुभक्तियोग का अभ्यास जीवन के परम लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार का स्पष्ट एवं सचोट मार्ग प्रस्तुत करता है।

११६. जहाँ गुरुकृपा है वहाँ योग्य व्यवहार है और जहाँ योग्य व्यवहार है वहाँ रिद्धि-सिद्धि और अमरता है।

११७. मायारूपी नागिन के द्वारा डसे हुए लोगों के लिए गुरु का नाम एक शक्तिशाली रामबाण औषधि है।

११८. पवित्रता, भक्तिभाव, प्रकाश एवं ज्ञान के लिए गुरु की प्रार्थना करो।

११९. गुरुसेवा की भावना आपकी रग-रग में, नस-नस में, प्रत्येक हड्डी में एवं शरीर के तमाम कोषों में गहरी उतर जानी चाहिए। गुरुसेवा की भावना को उग्र बनाओ। उसका बदला अमूल्य है।

१२०. गुरुभक्तियोग ही सर्वोत्तम योग है।

१२१. कुछ शिष्य गुरु के महान शिष्य होने का आडम्बर करते हैं लेकिन उनको गुरुवचन में या कार्य में विश्वास और श्रद्धा नहीं होती।

१२२. जो अद्वितीय हैं ऐसे सर्वशक्तिमान गुरु की सम्पूर्ण शरण में जाओ।

१२३. गुरुभक्तियोग आपको इसी जन्म में धीरे-धीरे दृढ़ता, निश्चितता एवं अविचलतापूर्वक ईश्वर के प्रति ले जाता है।

१२४. अहंभाव के विनाश से गुरुभक्तियोग का प्रारंभ होता है और शाश्वत सुख की प्राप्ति में परिणत होता है।

१२५. गुरुभक्तियोग जीवन के तमाम दुःख-दर्दों को निर्मूल करने का मार्ग बताता है।

१२६. गुरुभक्तियोग का अभ्यास आपको भय, अज्ञान, निराशावादी स्वभाव, मानसिक अशांति, रोग, निराशा, चिन्ता आदि से मुक्त होने में सहायभूत होता है।

१२७. गुरुभक्तियोग जीवन के अनिष्टों का एक ही उपाय है।

१२८. गुरुभक्तियोग के अभ्यास से सर्वसुखमय, अविनाशी आत्मा को भीतर ही खोजो।

१२९. एक अन्धा दूसरे अंधे का मार्गदर्शन नहीं कर सकता। एक कैदी दूसरे कैदी को नहीं छुड़ा सकता। इसी प्रकार जो खुद दुनियादारी के कीचड़ में फँसा हुआ हो वह दूसरों की मुक्ति नहीं करा सकता। इसीलिए गुरुभक्तियोग के अभ्यास के लिए गुरु की अनिवार्य आवश्यकता है।

१३०. गुरुभक्तियोग को जीवन का एकमात्र हेतु, ध्येय एवं वास्तविक रस का विषय बनाओ। आप सर्वोच्च सुख प्राप्त करोगे।

१३१. गुरु के प्रति भक्तिभाव के बिना आध्यात्मिकता नहीं आ सकती।

१३२. यदि आपको गुरुभक्तियोग का अभ्यास करना हो तो कामवासनावाला जीवन जीना छोड़ दो।

१३३. अगर आपको सचमुच ईश्वरप्राप्ति की कामना हो तो दुन्यावी भोगविलासों से विमुख बनो और गुरुभक्तियोग का आश्रय लो।

१३४. गुरुकृपा से शिष्य के हृदय में विवेक-वैराग्य का उदय होता है।

१३५. ध्यान के समय शिष्य को सद्‌गुरु से प्रार्थना करनी चाहिए कि उनके चरणकमलों की भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाय और वह अविचल श्रद्धा प्रदान करें।

१३६. जो गुरु के नाम का जप करता है उसको केवल मोक्ष ही नहीं बल्कि सांसारिक समृद्धि, आरोग्यता, दीर्घायु एवं दिव्य ऐश्वर्य की भी प्राप्ति होती है।

१३७. शिष्य को अपने गुरुदेव का जन्मदिन बड़ी भव्यता से मनाना चाहिए।

# सत्‌शिष्य को सीख

जगत में सर्वाधिक पाप काटने और आध्यात्मिक तौर पर ऊँचा उठानेवाला कोई साधन है तो वह है ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की डाँट, मार व उनके मर्मभेदी शब्द। शिष्यों के विशेष पापों की सफाई के लिए अथवा सद्‌गुरु द्वारा उन्हें ऊँचा उठाने के लिए दी जानेवाली डाँट-मार के पीछे शिष्य की गलती निमित्तमात्र होती है। मूल कारण तो सर्वत्र व्याप्त गुरुतत्त्व द्वारा बनाया गया माहौल होता है।

जब भी किसी ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु द्वारा किसी शिष्य को दी जानेवाली डाँट-मार अथवा मर्मभेदी शब्दों से शिष्य को मृत्युतुल्य कष्ट हो और सद्‌गुरु का सान्निध्य छोड़कर घर भाग जाने के विचार आएँ तो उसे भागना नहीं चाहिए लेकिन समझना चाहिए कि इस मनस्ताप से अपने कई जन्मों के पाप भस्म हो रहे हैं।

सच्चे सद्‌गुरु तो तुम्हारे स्वरचित सपनों की धज्जियाँ उड़ा देंगे, सपनों को तोड़ेंगे। अपने मर्मभेदी शब्दों से तुम्हारे अंतःकरण को झकझोर देंगे। वज्र की तरह वे गिरेंगे तुम्हारे ऊपर। तुमको नया

रूप देना है, नई मूर्ति बनाना है, नया जन्म देना है न ! वे तरह-तरह की चोट पहुँचाएँगे, तुम्हें तरह-तरह से काटेंगे तभी तो तुम पूजनीय मूर्ति बनोगे। अन्यथा तो निरे पत्थर रह जाओगे। तुम पत्थर न रह जाओ इसीलिए तो तुम्हारे अहंकार को तोड़ना है, भ्रांतियों के जाल को काटना है। तुम्हें नये जन्म के लिए नौ माह का गर्भवास और प्रसव-पीड़ा तो सहनी पड़ेगी न ! बीज से वृक्ष बनने के लिए बीज के पिछले रूप को तो सड़ना-गलना पड़ेगा न ! शिष्य के लिए सद्गुरु की कृपापूर्ण क्रिया एक शल्यक्रिया के समान है। सद्गुरु के चरणों में रहना है तो एक बात मत भूलना : चोट लगेगी। छाती फट जायेगी गुरु के शब्द-बाणों से। खून भी बहेगा। घाव भी होंगे। पीड़ा भी होगी। उस पीड़ा से लाखों जन्मों की पीड़ा मिटती है। **पीड़ोद्भवा सिद्धयः।** सिद्धियाँ पीड़ा से प्राप्त होती हैं। जो हमारे आत्मा के आत्मा हैं, जो सब कुछ हैं उन्हीं की प्राप्तिरूप सिद्धि मिलेगी। ...लेकिन भैया ! याद रखना : अपने बिना किसी स्वार्थ के अपनी शल्यक्रिया द्वारा शिष्यों को दुश्मन की तरह दिखनेवाले साहसी महापुरुष कभी-कभी आते हैं इस धरा पर। उन्हीं के द्वारा लोगों का कल्याण होता है बड़ी भारी संख्या में। कई जन्मों के संचित पुण्यों का उदय होने पर भाग्य से अगर इतने करुणावान महापुरुष मिल जायें तो हे मित्र ! प्राण जायें तो जायें, पर भागना मत।

कबीरजी कहते हैं :

**शीश दिए सद्गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान।**

अतः कायरता मत दिखाना। भागना मत। भगोड़े मत हो जाना। अन्यथा तो क्या होगा कि पुनः पुनः आना पड़ेगा। पूछोगे :

"कहाँ ?" ...तो जवाब है : यहीं... इसी धरा पर घोड़ा, गधा, कुत्ता, वृक्षादि बनकर... पता नहीं क्या-क्या बनकर आना पड़ेगा। अब तुम्हीं निर्णय कर लो।

बहुत-से साधकों को सद्गुरु के सान्निध्य में रहना तब तक

अच्छा लगता है जब तक वे प्रेम देते हैं। परन्तु जब उनके उत्थानार्थ सद्गुरु उनका तिरस्कार करते हैं, फटकारते हैं, उनका देहाध्यास तोड़ने के लिए उन्हें विभिन्न कसौटियों में कसते हैं तब साधक कहता है : ''मैं सद्गुरु के सान्निध्य में रहना तो चाहता हूँ, पर क्या करूँ ? बड़ी परेशानी है। इतना कठोर नियंत्रण !''

भैया ! घबरा मत। एक तेरे लिए सद्गुरु अपने नियम नहीं बदलेंगे। उन्हें लाखों का कल्याण करना है। उनकी लड़ाई तेरे से नहीं, तेरी मलिन कल्पनाओं से है। तेरे मन को, तेरे अहंकार को मिटाना है, तेरे मन के ऊपर गाज गिराना है... तभी तो तू ब्रह्मस्वरूप में जागेगा। तेरे अहं का अस्तित्व मिटेगा तभी तो तेरा कल्याण होगा।

अभी तो मन तुझे दगा दे रहा है। मन के द्वारा माँगी जानेवाली यह स्वतंत्रता वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है अपितु स्वेच्छाचार है। सच्ची स्वतंत्रता तो आत्मज्ञान में है। आत्मज्ञान के रास्ते जल्दी आगे बढ़ाने के लिए ही सद्गुरु साधक को कंचन की तरह तपाना शुरू करते हैं। परंतु साधक में यदि विवेक जागृत न हो तो उसका मन उसे ऐसे खड्डे में पटकता है कि जहाँ से उठने में उसे वर्षों नहीं, जन्मों लग जाते हैं। फिर तो वह...

**घर का रहा न घाट का, ज्यों धोबी का श्वान।**

याद रखो : जब भी तुम्हें सद्गुरु की गढ़ाई का सामना करना पड़े, अपनी दिनचर्या को झाँक लो, अपनी गलतियों को निहार लो। निश्चित ही तुमसे कोई गलती हुई है, कोई पाप हुआ है आगे-पीछे अथवा कोई पकड़ हो गयी है। तात्कालिक गलती तो निमित्तमात्र है। सद्गुरु तो तुम्हारे एक-एक पाप की सफाई करके तुम्हें आगे बढ़ाना चाहते हैं। सबके भाग्य में नहीं होती सद्गुरु की गढ़ाई। तुम भाग्यशाली हो कि सद्गुरु ने तुम्हें गढ़ने के योग्य समझा है। तुम अपनी सहनशक्ति का परिचय देते हुए उन्हें सहयोग दो और जरा सोचो कि तुमसे उन्हें कुछ पाना नहीं है, उनका किसी

प्रकार का स्वार्थ नहीं है। केवल एवं केवल तुम्हारे कल्याण के लिए ही वे अपना ब्रह्मभाव छोड़कर ऐसा क्रोधपूर्ण वीभत्स रूप धारण करते हैं। अरे, रो ले एकान्त में बैठकर... रो ले भैया ! इतना जानकर भी सद्‌गुरु के प्रति तुम्हारे अंतःकरण में द्वेष उत्पन्न हो रहा है तो फट नहीं जाती छाती तेरी ?

वैसे ऑपरेशन के समय सद्‌गुरु इतनी माया फैलाकर रखते हैं कि गढ़ाई से उत्पन्न विचारों का पोषण करने की शिष्य की औकात नहीं क्योंकि... **अंतर हाथ सहारि दे, बाहर मारे चोट।**

फिर भी चित्त सद्‌गुरु का अपमान करता है, अहंकारवश ज्यादा हठ करता है तो सद्‌गुरु से दूर हो सकता है। अतः हे साधक ! सावधान !

**दुर्जन की करुणा बुरी, भलो साँईं को त्रास।**
**सूरज जब गर्मी करे, तब बरसन की आस॥**

## श्रीमद् आद्य शंकराचार्यविरचितम्

# ॥ गुर्वष्टकम् ॥

**शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं**
**यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम्।**
**मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे**
**ततः किं ततः किं ततः किम्॥ १॥**

यदि शरीर रूपवान हो, पत्नी भी रूपसी हो और सत्कीर्ति चारों दिशाओं में विस्तरित हो, मेरु पर्वत के तुल्य अपार धन हो, किन्तु गुरु के श्रीचरणों में यदि मन आसक्त न हो तो इन सारी उपलब्धियों से क्या लाभ ?

**कलत्रं धनं पुत्रपौत्रादि सर्वं**
**गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम् ।**
**मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे**
**ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ २ ॥**

सुन्दरी पत्नी, धन, पुत्र-पौत्र, घर एवं स्वजन आदि प्रारब्ध से सर्व सुलभ हो किन्तु गुरु के श्रीचरणों में मन की आसक्ति न हो तो इस प्रारब्ध-सुख से क्या लाभ ?

**षडंगादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या**
**कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति ।**
**मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे**
**ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ३ ॥**

वेद एवं षट्वेदांगादि शास्त्र जिन्हें कंठस्थ हों, जिनमें सुन्दर काव्य-निर्माण की प्रतिभा हो, किन्तु उसका मन यदि गुरु के श्रीचरणों के प्रति आसक्त न हो तो इन सद्गुणों से क्या लाभ ?

**विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः**
**सदाचारवृत्तेषु मत्तो न चान्यः ।**
**मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे**
**ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ४ ॥**

जिन्हें विदेशों में समादर मिलता हो, अपने देश में जिनका नित्य जय-जयकार से स्वागत किया जाता हो और जो सदाचार-पालन में भी अनन्य स्थान रखता हो, यदि उसका भी मन गुरु के श्रीचरणों के प्रति अनासक्त हो तो इन सद्गुणों से क्या लाभ ?

**क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः**
**सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम् ।**
**मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे**
**ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ५ ॥**

जिन महानुभाव के चरणकमल पृथ्वीमण्डल के राजा-महाराजाओं से नित्य पूजित रहा करते हों, किन्तु उनका मन यदि गुरु के श्रीचरणों में आसक्त न हो तो इस सद्भाग्य से क्या लाभ ?

**यशो मे गतं दिक्षु दानप्रतापात्**
**जगद्वस्तु सर्वं करे सत्प्रसादात्।**
**मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे**
**ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ६ ॥**

दानवृत्ति के प्रताप से जिनकी कीर्ति दिग्‌दिगान्तरों में व्याप्त हो, अति उदार गुरु की सहज कृपादृष्टि से जिन्हें संसार के सारे सुख-ऐश्वर्य हस्तगत हों, किन्तु उनका मन यदि गुरु के श्रीचरणों में आसक्तिभाव न रखता हो तो इन सारे ऐश्वर्यों से क्या लाभ ?

**न भोगे न योगे न वा वाजिराजौ**
**न कान्तासुखे नैव वित्तेषु चित्तम्।**
**मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे**
**ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ७ ॥**

जिनका मन भोग, योग, अश्व, राज्य, धनोपभोग और स्त्रीसुख से कभी विचलित न हुआ हो, फिर भी गुरु के श्रीचरणों के प्रति आसक्त न बन पाया हो तो इस मन की अटलता से क्या लाभ ?

**अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये**
**न देहे मनो वर्तते मे त्वनर्घ्ये।**
**मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे**
**ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥ ८ ॥**

जिनका मन वन या अपने विशाल भवन में, अपने कार्य या शरीर में तथा अमूल्य भंडार में आसक्त न हो, पर गुरु के श्रीचरणों में भी यदि वह मन आसक्त न हो पाये तो उसकी सारी अनासक्तियों का क्या लाभ ?

**अनर्घ्याणि रत्नादि मुक्तानि सम्यक्**
**समालिंगिता कामिनी यामिनीषु ।**
**मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे**
**ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ।। ९ ।।**

अमूल्य मणि-मुक्तादि रत्न उपलब्ध हों, रात्रि में समालिंगिता विलासिनी पत्नी भी प्राप्त हो, फिर भी मन गुरु के श्रीचरणों के प्रति आसक्त न बन पाये तो इन सारे ऐश्वर्यभोगादि सुखों से क्या लाभ ?

**गुरोरष्टकं यः पठेत्पुण्यदेही**
**यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही ।**
**लभेत् वांछितार्थ पदं ब्रह्मसंज्ञं**
**गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लग्नम् ।। १० ।।**

जो यती, राजा, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ इस गुरु-अष्टक का पठन-पाठन करता है और जिसका मन गुरु के वचन में आसक्त है, वह पुण्यशाली शरीरधारी अपने इच्छितार्थ एवं ब्रह्मपद इन दोनों को सम्प्राप्त कर लेता है यह निश्चित है ।

# जीवन रसायन

१. जो मनुष्य इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना चाहता है उसे एक ही जन्म में हजारों वर्षों का काम कर लेना होगा। उसे इस युग की रफ्तार से बहुत आगे निकलना होगा। जैसे स्वप्न में मान-अपमान, मेरा-तेरा, अच्छा-बुरा दिखता है और जागने के बाद उसकी सत्यता नहीं रहती वैसे ही इस जाग्रत जगत में भी अनुभव करना होगा। बस... हो गया हजारों वर्षों का काम पूरा। ज्ञान की यह बात हृदय में ठीक से जमा देनेवाले कोई महापुरुष मिल जायें तो हजारों वर्षों के संस्कार, मेरे-तेरे के भ्रम को दो पल में ही निवृत्त कर दें और कार्य पूरा हो जाय।

२. यदि तू निज स्वरूप का प्रेमी बन जाय तो आजीविका की चिन्ता, रमणियों का श्रवण-मनन और शत्रुओं का दुःखद स्मरण-यह सब छूट जाय।

**उदरचिन्ता प्रियचर्चा विरही को जैसे खले।**
**निज स्वरूप में निष्ठा हो तो ये सभी सहज में टले ॥**

३. स्वयं को अन्य लोगों की आँखों से देखना, अपने वास्तविक स्वरूप को न देखकर अपना निरीक्षण अन्य लोगों की दृष्टि से करना, यह जो स्वभाव है वही हमारे सब दुःखों का कारण है। अन्य लोगों की दृष्टि में खूब अच्छा दिखने की इच्छा करना - यही हमारा सामाजिक दोष है।

४. लोग क्यों दुःखी हैं ? क्योंकि अज्ञान के कारण वे अपना सत्यस्वरूप भूल गये हैं और अन्य लोग जैसा कहते हैं वैसा ही अपने को मान बैठते हैं। यह दुःख तब तक दूर नहीं होगा जब तक मनुष्य आत्म-साक्षात्कार नहीं कर लेगा।

५. शारीरिक, मानसिक, नैतिक व आध्यात्मिक ये सब पीड़ाएँ वेदान्त का अनुभव करने से तुरन्त दूर होती हैं और... कोई आत्मनिष्ठ महापुरुष का संग मिल जाय तो वेदान्त का अनुभव करना कठिन कार्य नहीं है।

६. अपने अंदर के परमेश्वर को प्रसन्न करने का प्रयास करो। जनता एवं बहुमति को आप किसी प्रकार से सन्तुष्ट नहीं कर सकते। जब आपके आत्मदेवता प्रसन्न होंगे तब जनता आपसे अवश्य संतुष्ट होगी।

७. सब वस्तुओं में ब्रह्मदर्शन करने में यदि आप सफल न हो सको तो जिनको आप सबसे अधिक प्रेम करते हो ऐसे, कम-से-कम एक व्यक्ति में ब्रह्म-परमात्मा का दर्शन करने का प्रयास करो। ऐसे किसी तत्त्वज्ञानी महापुरुष की शरण पा लो जिनमें ब्रह्मानन्द छलकता हो। उनका दृष्टिपात होते ही आपमें भी ब्रह्मानन्द का प्रादुर्भाव होने की सम्भावना पनपेगी। जैसे एक्स-रे मशीन की किरण कपड़े, चमड़ी, मांस को चीरकर हड्डियों का फोटो खींच लाती है, वैसे ही ज्ञानी की दृष्टि आपके चित्त में रहनेवाली देहाध्यास की पर्तें चीरकर आपमें ईश्वर को निहारती है। उनकी दृष्टि से चीरी हुई पर्तों को चीरना आपके लिए भी सरल हो जायेगा। आप भी स्वयं में ईश्वर को देख सकेंगे। अतः अपने चित्त पर ज्ञानी महापुरुष की दृष्टि पड़ने दो। पलकें गिराये बिना, अहोभाव से, शांत भाव से उनके समक्ष बैठो तो आपके चित्त पर उनकी दृष्टि पड़ेगी।

८. जैसे मछलियाँ जलनिधि में ही रहती हैं, पक्षी वायुमंडल में ही रहते हैं वैसे आप भी ज्ञानरूपी प्रकाशपुंज में ही रहो, प्रकाश में चलो, प्रकाश में विचरो, प्रकाश में ही अपना अस्तित्व रखो। फिर देखो खाने-पीने का मजा, घूमने-फिरने का मजा, जीने-मरने का मजा।

९. ओ तूफान! उठ। जोर-शोर से आँधी और पानी की वर्षा कर दे। ओ आनंद के महासागर! पृथ्वी और आकाश को तोड़कर एक कर दे। ओ मानव! गहरे से गहरा गोता लगा जिससे विचार एवं चिन्ताएँ छिन्न-भिन्न हो जायें। आओ, अपने हृदय से द्वैत की भावना को चुन-चुनकर बाहर निकाल दें। अपने सीमित अस्तित्व की दीवारों को नींव से धराशायी कर दें जिससे आनन्द का महासागर प्रत्यक्ष लहराने लगे।

ओ प्रेम की मादकता ! तू जल्दी आ। ओ आत्मध्यान की, आत्मरस की मदिरा ! तू हम पर जल्दी आच्छादित हो जा। हमको तुरन्त डुबो दे। विलम्ब करने का क्या प्रयोजन ? मेरा मन अब एक पल भी दुनियादारी में फँसना नहीं चाहता। अतः इस मन को प्यारे प्रभु में डुबो दे। 'मैं और मेरा... तू और तेरा' के ढेर को आग लगा दे। आशंका और आशाओं के चीथड़ों को उतार फेंक। टुकड़े-टुकड़े करके पिघला दे। द्वैत की भावना को जड़ से उखाड़ दे। चूर-चूर करके उसे हवा में उड़ा दे। रोटी नहीं मिलेगी ? कोई परवाह नहीं। आश्रय और विश्राम नहीं मिलेगा? कोई फिकर नहीं। लेकिन मुझे चाहिए प्रेम की, उस दिव्य प्रेम की प्यास और तड़प।

**मुझे वेद पुराण कुरान से क्या ?**
**मुझे सत्य का पाठ पढ़ा दे कोई ॥**
**मुझे मंदिर मस्जिद जाना नहीं।**
**मुझे प्रेम का रंग चढ़ा दे कोई ॥**
**जहाँ ऊँच या नीच का भेद नहीं।**
**जहाँ जात या पाँत की बात नहीं ॥**
**न हो मंदिर मस्जिद चर्च जहाँ।**
**न हो पूजा नमाज में फर्क कहीं ॥**
**जहाँ सत्य ही सार हो जीवन का।**
**रिधवार सिंगार हो त्याग जहाँ ॥**
**जहाँ प्रेम ही प्रेम की सृष्टि मिले।**
**चलो नाव को ले चलें खे के वहाँ ॥**

१०. स्वप्नावस्था में स्वप्नदृष्टा स्वयं अकेला ही होता है। अपने भीतर ही कल्पना के आधार पर सिंह, सियार, भेड़, बकरी, नदी, नगर, बाग-बगीचे की एक पूरी सृष्टि का सर्जन कर लेता है। उस सृष्टि में स्वयं एक जीव बन जाता है और अपनेको सबसे अलग मानकर भयभीत होता है। खुद ही शेर है और खुद ही बकरी है। खुद ही खुद को डराता है। चालू स्वप्न में सत्य का भान न होने से दुःखी

होता है। स्वप्न से जाग जाय तो पता चले कि स्वयं के सिवाय और कोई था ही नहीं। सारा प्रपंच कल्पना से रचा गया था। इसी प्रकार यह जाग्रत प्रपंच भी जाग्रत के दृष्टा द्वारा कल्पित है, वास्तविक नहीं है। यदि जाग्रत का दृष्टा अपने आत्मस्वरूप में जाग जाय तो उसके तमाम दुःख-दारिद्रय पल भर में अदृश्य हो जायें।

११. स्वर्ग का साम्राज्य आपके भीतर ही है। पुस्तकों में, मंदिरों में, तीर्थों में, पहाड़ों में, जंगलों में आनंद की खोज करना व्यर्थ है। खोज करना ही हो तो उस अन्तस्थ आत्मानंद का खजाना खोल देनेवाले किसी तत्त्ववेत्ता महापुरुष की खोज करो।

१२. जब तक आप अपने अंतःकरण के अंधकार को दूर करने के लिए कटिबद्ध नहीं होंगे तब तक तीन सौ तैंतीस करोड़ कृष्ण अवतार ले लें फिर भी आपको परम लाभ नहीं होगा।

१३. शरीर अंदर के आत्मा का वस्त्र है। वस्त्र को उसके पहननेवाले से अधिक प्यार मत करो।

१४. जिस क्षण आप सांसारिक पदार्थों में सुख की खोज करना छोड़ देंगे और स्वाधीन हो जायेंगे, अपने अन्दर की वास्तविकता का अनुभव करेंगे, उसी क्षण से आपको ईश्वर के पास जाना नहीं पड़ेगा। ईश्वर स्वयं आपके पास आयेंगे। यही दैवी विधान है।

१५. क्रोधी यदि आपको शाप दे और आप समत्व में स्थिर रहो, कुछ न बोलो तो उसका शाप आशीर्वाद में बदल जायेगा।

१६. जब हम ईश्वर से विमुख होते हैं तब हमें कोई मार्ग नहीं दिखता और घोर दुःख सहना पड़ता है। जब हम ईश्वर में तन्मय होते हैं तब योग्य उपाय, योग्य प्रवृत्ति, योग्य प्रवाह अपने-आप हमारे हृदय में उठने लगता है।

१७. जब तक मनुष्य चिन्ताओं से उद्विग्न रहता है, इच्छा एवं वासना का भूत उसे बैठने नहीं देता तब तक बुद्धि का चमत्कार प्रकट नहीं होता। जंजीरों से जकड़ी हुई बुद्धि हिलडुल नहीं सकती। चिन्ताएँ, इच्छाएँ और वासनाएँ शांत होने से स्वतंत्र वायुमंडल का

आविर्भाव होता है। उसमें बुद्धि को विकसित होने का अवकाश मिलता है। पंचभौतिक बन्धन कट जाते हैं और शुद्ध आत्मा अपने पूर्ण प्रकाश में चमकने लगती है।

१८. ओ सजा के भय से भयभीत होनेवाले अपराधी! न्यायाधीश जब तेरी सजा का हुक्म लिखने के लिए कलम लेकर तत्पर हो, उस समय यदि एक पल भर भी तू परमानन्द में डूब जाय तो न्यायाधीश अपना निर्णय भूले बिना नहीं रह सकता। फिर उसकी कलम से वही लिखा जायेगा जो परमात्मा के साथ, तेरी नूतन स्थिति के अनुकूल होगा।

१९. पवित्रता और सच्चाई, विश्वास और भलाई से भरा हुआ मनुष्य उन्नति का झण्डा हाथ में लेकर जब आगे बढ़ता है तब किसकी मजाल है कि बीच में खड़ा रहे ? यदि आपके दिल में पवित्रता, सच्चाई और विश्वास है तो आपकी दृष्टि लोहे के पर्दे को भी चीर सकेगी। आपके विचारों की ठोकर से पहाड़-के-पहाड़ भी चकनाचूर हो सकेंगे। ओ जगत के बादशाहों! आगे से हट जाओ। यह दिल का बादशाह पधार रहा है।

२०. यदि आप संसार के प्रलोभनों एवं धमकियों से न हिलें तो संसार को अवश्य हिला देंगे। इसमें जो संदेह करता है वह मंदमति है, मूर्ख है।

२१. वेदान्त का यह सिद्धान्त है कि हम बद्ध नहीं हैं बल्कि नित्य मुक्त हैं। इतना ही नहीं, 'बद्ध हैं' यह सोचना भी अनिष्टकारी है, भ्रम है। ज्यों ही आपने सोचा कि 'मैं बद्ध हूँ... दुर्बल हूँ... असहाय हूँ...' त्यों ही अपना दुर्भाग्य शुरू हुआ ही समझो। आपने अपने पैरों में एक जंजीर और बाँध दी। अतः सदा मुक्त होने का विचार करो और मुक्ति का अनुभव करो।

२२. रास्ते चलते जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को देखो, चाहे वह इंग्लैण्ड का सर्वाधीश हो, चाहे अमेरिका का 'प्रेसिडेन्ट' हो, रूस का सर्वेसर्वा हो चाहे चीन का 'डिक्टेटर' हो- तब अपने मन में

किसी प्रकार की ईर्ष्या या भय के विचार मत आने दो। उनकी शाही नजर को अपनी ही नजर समझकर मजा लूटो कि 'मैं ही वह हूँ।' जब आप ऐसा अनुभव करने की चेष्टा करेंगे तब आपका अनुभव ही सिद्ध कर देगा कि सब एक ही हैं।

२३. यदि हमारा मन ईर्ष्या-द्वेष से रहित, बिल्कुल शुद्ध हो तो जगत की कोई वस्तु हमें नुकसान नहीं पहुँचा सकती। आनन्द और शांति से भरपूर ऐसे महात्माओं के पास क्रोध की मूर्ति जैसा मनुष्य भी पानी के समान तरल हो जाता है। ऐसे महात्माओं को देखकर जंगल के सिंह और भेड़िये भी प्रेमविह्वल हो जाते हैं। साँप-बिच्छू भी अपना दुष्ट स्वभाव भूल जाते हैं।

२४. अविश्वास और धोखे से भरा संसार, वास्तव में सदाचारी और सत्यनिष्ठ साधक का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

२५. 'सम्पूर्ण विश्व मेरा शरीर है' ऐसा जो कह सकता है वही आवागमन के चक्कर से मुक्त है। वह तो अनन्त है। फिर कहाँ से आयेगा और कहाँ जायेगा ? सारा ब्रह्माण्ड उसीमें है।

२६. किसी भी प्रसंग को मन में लाकर हर्ष-शोक के वशीभूत नहीं होना। 'मैं अजर हूँ... अमर हूँ... मेरा जन्म नहीं... मेरी मृत्यु नहीं... मैं निर्लिप्त आत्मा हूँ...' यह भाव दृढ़ता से हृदय में धारण करके जीवन जियो। इसी भाव का निरन्तर सेवन करो। इसीमें सदा तल्लीन रहो।

२७. बाह्य संदर्भों के बारे में सोचकर अपनी मानसिक शांति का भंग कभी न होने दो।

२८. जब इन्द्रियाँ विषयों की ओर जाने के लिए जबरदस्ती करने लगें तब उन्हें लाल आँख दिखाकर चुप कर दो। जो आत्मानंद के आस्वादन की इच्छा से आत्मचिन्तन में लगा रहे, वही सच्चा धीर है।

२९. किसी भी चीज को ईश्वर से अधिक मूल्यवान मत समझो।

३०. यदि हम देहाभिमान को त्यागकर साक्षात् ईश्वर को अपने शरीर में कार्य करने दें तो भगवान बुद्ध या जिसस क्राइस्ट हो जाना

इतना सरल है जितना निर्धन पाल (Poor Paul) होना।

३१. मन को वश करने का उपाय : मन को अपना नौकर समझकर स्वयं को उसका प्रभु मानो। हम अपने नौकर मन की उपेक्षा करेंगे तो कुछ ही दिनों में वह हमारे वश में हो जायेगा। मन के चंचल भावों को न देखकर अपने शांत स्वरूप की ओर ध्यान देंगे तो कुछ ही दिनों में मन नष्ट होने लगेगा। इस प्रकार साधक अपने आनन्दस्वरूप में मग्न हो सकता है।

३२. समग्र संसार के तत्त्वज्ञान, विज्ञान, गणित, काव्य और कला आपकी आत्मा में से निकलते हैं और निकलते रहेंगे।

३३. ओ खुदा को खोजनेवाले ! तुमने अपनी खोजबीन में खुदा को लुप्त कर दिया है। प्रयत्नरूपी तरंगों में अनंत सामर्थ्यरूपी समुद्र को छुपा दिया है।

३४. परमात्मा की शांति को भंग करने का सामर्थ्य भला किसमें है ? यदि आप सचमुच परमात्म-शांति में स्थित हो जाओ तो समग्र संसार उलटा होकर टंग जाय फिर भी आपकी शांति भंग नहीं हो सकती।

३५. महात्मा वही है जो चित्त को डावाँडोल करनेवाले प्रसंग आयें फिर भी चित्त को वश में रखे, क्रोध और शोक को प्रविष्ट न होने दे।

३६. वृत्ति यदि आत्मस्वरूप में लीन होती हो तो उसे सत्संग, स्वाध्याय या अन्य किसी भी काम के लिए बाहर नहीं लाना चाहिए।

३७. सुदृढ़ अचल संकल्पशक्ति के आगे मुसीबतें इस प्रकार भागती हैं जैसे आँधी-तूफान से बादल बिखर जाते हैं।

३८. सुषुप्ति (गहरी नींद) आपको बलात् अनुभव कराती है कि जाग्रत का जगत चाहे कितना ही प्यारा और सुन्दर लगता हो, पर उसे भूले बिना शांति नहीं मिलती। सुषुप्ति में बलात् विस्मरण हो, उसकी सत्यता भूल जाय तो छः घंटे निद्रा की शांति मिले। जाग्रत में उसकी सत्यता का अभाव लगने लगे तो परम शांति को

प्राप्त प्राज्ञ पुरुष बन जाय। निद्रा रोजाना सीख देती है कि यह ठोस जगत जो आपके चित्त को भ्रमित कर रहा है, वह समय की धारा में सरकता जा रहा है। घबराओ नहीं, चिंतित मत हो। तुम बातों में चित्त को भ्रमित मत करो। सब कुछ स्वप्न में सरकता जा रहा है। जगत की सत्यता के भ्रम को भगा दो।

ओ शक्तिमान आत्मा ! अपने अंतरतम को निहार। ॐ का गुँजन कर। दुर्बल विचारों एवं चिंताओं को कुचल डाल। दुर्बल एवं तुच्छ विचारों तथा जगत को सत्य मानने के कारण तूने बहुत-बहुत सहन किया है। अब उसका अंत कर दे।

३९. ज्ञान के कठिन मार्ग पर चलते वक्त आपके सामने जब भारी कष्ट एवं दुःख आयें तब आप उसे सुख समझो क्योंकि इस मार्ग में कष्ट एवं दुःख ही नित्यानन्द प्राप्त करने में निमित्त बनते हैं। अतः उन कष्टों, दुःखों और आघातों से किसी भी प्रकार साहसहीन मत बनो, निराश मत बनो। सदैव आगे बढ़ते रहो। जब तक अपने सत्यस्वरूप को यथार्थ रूप से न जान लो, तब तक रुको नहीं।

४०. स्वप्नावस्था में आप शेर को देखते हैं और डरते हैं कि वह आपको खा जायेगा। परन्तु जिसको आप देखते हैं वह शेर नहीं, आप स्वयं हैं। शेर आपकी कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इस प्रकार जाग्रतावस्था में भी आपका घोर-से-घोर शत्रु भी स्वयं आप ही हैं, दूसरा कोई नहीं। पृथकत्व, अलगाव केविचार को अपने हृदय से दूर हटा दो। आपसे भिन्न कोई मित्र या शत्रु होना केवल स्वप्न-भ्रम है।

४१. अशुभ का विरोध नहीं करो। सदा शांत रहो। जो कुछ सामने आये उसका स्वागत करो, वह चाहे आपकी इच्छा की धारा से विपरीत भी हो। तब आप देखेंगे कि प्रत्यक्ष बुराई, भलाई में बदल जायेगी।

४२. रात्रि में निद्राधीन होने से पहले बिस्तर पर सीधे, सुखपूर्वक बैठ जाओ। आँखें बन्द करो। नाक से श्वास लेकर फेफड़ों

को भरपूर भर दो। फिर उच्च स्वर से 'ॐ...' का लम्बा उच्चारण करो। फिर से गहरा श्वास लेकर 'ॐ...' का लम्बा उच्चारण करो। इस प्रकार दस मिनट तक करो। कुछ ही दिनों के नियमित प्रयोग के बाद इसके चमत्कार का अनुभव होगा। रात्रि की नींद साधना में परिणत हो जायेगी। दिल-दिमाग में शांति एवं आनन्द की वर्षा होगी। आपकी लौकिक निद्रा योगनिद्रा में बदल जायेगी।

४३. हट जाओ, ओ संकल्प और इच्छाओं ! हट जाओ। तुम संसार की क्षणभंगुर प्रशंसा एवं धन-संपत्ति के साथ सम्बन्ध रखती हो। शरीर चाहे कैसी भी दशा में रहे, उसके साथ मेरा कोई सरोकार नहीं। सब शरीर मेरे ही हैं।

४४. किसी भी तरह समय बिताने के लिए मजदूर की भाँति काम मत करो। आनंद के लिए, उपयोगी कसरत समझकर, सुख, क्रीड़ा या मनोरंजक खेल समझकर एक कुलीन राजकुमार की भाँति काम करो। दबे हुए, कुचले हुए दिल से कभी कोई काम हाथ में मत लो।

४५. समग्र संसार को जो अपना शरीर समझते हैं, प्रत्येक व्यक्ति को अपना आत्मस्वरूप समझते हैं ऐसे ज्ञानी किससे अप्रसन्न होंगे ? उनके लिए विक्षेप कहाँ रहा ?

४६. संसार की तमाम वस्तुएँ सुखद हों या भयानक, वास्तव में तो तुम्हारी प्रफुल्लता और आनंद के लिए ही प्रकृति ने बनायी हैं। उनसे डरने से क्या लाभ ? तुम्हारी नादानी ही तुम्हें चक्कर में डालती है। अन्यथा, तुम्हें नीचा दिखलानेवाला कोई नहीं। पक्का निश्चय रखो कि यह जगत तुम्हारे किसी शत्रु ने नहीं बनाया है। तुम्हारे ही आत्मदेव का यह सब विलास है।

४७. महात्मा वे हैं जिनकी विशाल सहानुभूति एवं जिनका मातृवत् हृदय सब पापियों को, दीन-दुःखियों को प्रेम से अपनी गोद में स्थान देता है।

४८. यह नियम है कि भयभीत प्राणी ही दूसरों को भयभीत करता है। भयरहित हुए बिना अभिन्नता आ नहीं सकती, अभिन्नता

के बिना वासनाओं का अंत सम्भव नहीं है और निर्वासनिकता के बिना निर्वैरता, समता, मुदिता आदि दिव्य गुण प्रकट नहीं होते। जो बल दूसरों की दुर्बलता को दूर न कर सके, वह वास्तव में बल नहीं ।

४९. ध्यान में बैठने से पहले अपना समग्र मानसिक चिन्तन तथा बाहर की तमाम संपत्ति ईश्वर के या सद्गुरु के चरणों में अर्पण करके शांत हो जाओ। इससे आपको कोई हानि न होगी। ईश्वर आपकी सम्पत्ति, देह, प्राण और मन की रक्षा करेंगे। ईश्वरार्पणबुद्धि से कभी हानि नहीं होती। इतना ही नहीं, देह, प्राण में नवजीवन का सिंचन होता है। इससे आप शांति व आनंद का स्रोत बनकर जीवन को सार्थक कर सकेंगे। आपकी और पूरे विश्व की वास्तविक उन्नति होगी।

५०. प्रकृति प्रसन्नचित्त एवं उद्योगी कार्यकर्त्ता को हर प्रकार से सहायता करती है।

५१. प्रसन्नमुख रहना यह मोतियों का खजाना देने से भी उत्तम है।

५२. चाहे करोड़ों सूर्य प्रलय हो जायें, चाहे असंख्य चन्द्रमा पिघलकर नष्ट हो जायें परंतु ज्ञानी महापुरुष अटल एवं अचल रहते हैं।

५३. भौतिक पदार्थों को सत्य समझना, उनमें आसक्ति रखना, दुःख-दर्द व चिन्ताओं को आमंत्रण देने के समान है। अतः बाह्य नामरूप पर अपनी शक्ति व समय को नष्ट करना यह बड़ी गलती है।

५४. जब अपने व्यक्तित्व विषयक विचार का सर्वथा त्याग कर दिया जाता है तब उसके समान अन्य कोई सुख नहीं, उसके समान श्रेष्ठ अन्य कोई अवस्था नहीं।

५५. जो लोग आपको सबसे अधिक हानि पहुँचाने का प्रयास करते हैं उन पर कृपापूर्ण होकर प्रेममय चिन्तन करें। वे आपके ही आत्मस्वरूप हैं।

५६. संसार में केवल एक ही रोग है। **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**–इस वेदान्तिक नियम का भंग ही सर्व व्याधियों का मूल है। वह कभी एक दुःख का रूप लेता है तो कभी दूसरे दुःख का। इन सर्व व्याधियों की एक ही दवा है : अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्मत्व में जाग जाना।

५७. बुद्ध ध्यानस्थ बैठे थे। पहाड़ पर से एक शिलाखण्ड लुढ़कता हुआ आ रहा था। बुद्ध पर गिरे इससे पहले ही वह एक दूसरे शिलाखण्ड के साथ टकराया। भयंकर आवाज के साथ उसके दो भाग हो गये। उसने अपना मार्ग बदल लिया। ध्यानस्थ बुद्ध की दोनों तरफ से दोनों भाग गुजर गये। बुद्ध बच गये। केवल एक छोटा-सा कंकड़ उनके पैर में लगा। पैर से थोड़ा खून बहा। बुद्ध स्वस्थता से उठ खड़े हुए और शिष्यों से कहा :

''भिक्षुओं ! सम्यक् समाधि का यह ज्वलन्त प्रमाण है। मैं यदि ध्यान-समाधि में न होता तो शिलाखण्ड ने मुझे कुचल दिया होता। लेकिन ऐसा न होकर उसके दो भाग हो गये। उसमें से सिर्फ एक छोटा-सा कंकड़ उछलकर मेरे पैर में लगा। यह जो छोटा-सा जख्म हुआ है वह ध्यान की पूर्णता में रही हुई कुछ न्यूनता का परिणाम है। यदि ध्यान पूर्ण होता तो इतना भी न लगता।''

५८. कहाँ है वह तलवार जो मुझे मार सके ? कहाँ है वह शस्त्र जो मुझे घायल कर सके ? कहाँ है वह विपत्ति जो मेरी प्रसन्नता को बिगाड़ सके ? कहाँ है वह दुःख जो मेरे सुख में विघ्न डाल सके ? मेरे सब भय भाग गये। सब संशय कट गये। मेरा विजय-प्राप्ति का दिन आ पहुँचा है। कोई सांसारिक तरंग मेरे निश्चल चित्त को आन्दोलित नहीं कर सकती। इन तरंगों से मुझे न कोई लाभ है न हानि है। मुझे शत्रु से द्वेष नहीं, मित्र से राग नहीं। मुझे मौत का भय नहीं, नाश का डर नहीं, जीने की वासना नहीं, सुख की इच्छा नहीं और दुःख से द्वेष नहीं क्योंकि यह सब मन में रहता है और मन मिथ्या कल्पना है।

५९. सम्पूर्ण स्वास्थ्य की अजीब युक्ति : रोज सुबह तुलसी

के पाँच पत्ते चबाकर एक गिलास बासी पानी पी लो। फिर जरा घूम लो, दौड़ लो या कमरे में ही पंजों के बल थोड़ा कूद लो। नहा-धोकर स्वस्थ, शांत होकर एकान्त में बैठ जाओ। दस बारह गहरे-गहरे श्वास लो। आगे-पीछे के कर्त्तव्यों से निश्चिन्त हो जाओ। आरोग्यता, आनंद, सुख, शांति प्रदान करनेवाली विचारधारा को चित्त में बहने दो। बीमारी के विचार को हटाकर इस प्रकार की भावना पर मन को दृढ़ता से एकाग्र करो कि :

'मेरे अंदर आरोग्यता व आनंद का अनन्त स्रोत प्रवाहित हो रहा है। मेरे अंतराल में दिव्यामृत का महासागर लहरा रहा है। मैं अनुभव कर रहा हूँ कि समग्र सुख, आरोग्यता, शक्ति मेरे भीतर है। मेरे मन में अनन्त शक्ति और सामर्थ्य है। मैं स्वस्थ हूँ। पूर्ण प्रसन्न हूँ। मेरे अंदर-बाहर सर्वत्र परमात्मा का प्रकाश फैला हुआ है। मैं विक्षेपरहित हूँ। सब द्वन्द्वों से मुक्त हूँ। स्वर्गीय सुख मेरे अन्दर है। मेरा हृदय परमात्मा का गुप्त प्रदेश है। वहाँ परमात्मा का निवास है। फिर रोग-शोक वहाँ कैसे रह सकते हैं ? मैं दैवी ओज के मण्डल में प्रविष्ट हो चुका हूँ। वह मेरे स्वास्थ्य का प्रदेश है। मैं तेज का पुंज हूँ। आरोग्यता का अवतार हूँ।'

याद रखो : आपके अन्तःकरण में स्वास्थ्य, सुख, आनन्द और शांति ईश्वरीय वरदान केरूप में विद्यमान हैं। अपने अन्तःकरण की आवाज सुनकर निःशंक जीवन व्यतीत करो। मन में से कल्पित रोग के विचारों को निकाल दो। प्रत्येक विचार, भाव, शब्द और कार्य को ईश्वरीय शक्ति से परिपूर्ण रखो। ॐकार का सतत गुँजन करो। सुबह-शाम उपरोक्त विचारों का चिन्तन-मनन करने से विशेष लाभ होगा। ॐ आनन्द... ॐ शांति... पूर्ण स्वस्थ... पूर्ण प्रसन्न...

६०. भय केवल अज्ञान की छाया है, दोषों की काया है, मनुष्य को धर्ममार्ग से गिरानेवाली आसुरी माया है।

६१. याद रखो : चाहे समग्र संसार के तमाम पत्रकार, निंदक एकत्रित होकर आपके विरुद्ध आलोचना करें फिर भी आपका कुछ

बिगाड़ नहीं सकते। हे अमर आत्मा ! स्वस्थ रहो।

६२. लोग प्रायः जिनसे घृणा करते हैं ऐसे निर्धन, रोगी इत्यादि को साक्षात् ईश्वर समझकर उनकी सेवा करना यह अनन्य भक्ति एवं आत्मज्ञान का वास्तविक स्वरूप है।

६३. रोज प्रातःकाल उठते ही ॐ का गान करो। ऐसी भावना से चित्त को सराबोर कर दो कि : 'मैं यह शरीर नहीं हूँ। ये सब प्राणी, कीट, पतंग, गन्धर्व में मेरा ही आत्मा विलास कर रहा है। अरे, उनके रूप में मैं ही विलास कर रहा हूँ भैया !' हररोज ऐसा अभ्यास करने से यह सिद्धांत हृदय में स्थिर हो जायेगा।

६४. प्रेमी आगे-पीछे का चिन्तन नहीं करता। वह न तो किसी आशंका से भयभीत होता है और न वर्त्तमान परिस्थिति में प्रेमास्पद में प्रीति के सिवाय अन्यत्र कहीं आराम पाता है।

६५. जैसे बालक प्रतिबिम्ब के आश्रयभूत दर्पण की ओर ध्यान न देकर प्रतिबिम्ब के साथ खेलता है, जैसे पामर लोग यह समग्र स्थूल प्रपंच के आश्रयभूत आकाश की ओर ध्यान न देकर केवल स्थूल प्रपंच की ओर ही ध्यान देते हैं, वैसे ही नाम-रूप के भक्त, स्थूल दृष्टि के लोग अपने दुर्भाग्य के कारण समग्र संसार के आश्रय सच्चिदानन्द परमात्मा का ध्यान न करके संसार के पीछे पागल होकर भटकते रहते हैं।

६६. इस सम्पूर्ण जगत को पानी के बुलबुले की तरह क्षणभंगुर जानकर तुम आत्मा में स्थिर हो जाओ। तुम अद्वैत दृष्टिवाले को शोक और मोह कैसे ?

६७. एक आदमी आपको दुर्जन कहकर परिच्छिन्न करता है तो दूसरा आपको सज्जन कहकर भी परिच्छिन्न ही करता है। कोई आपकी स्तुति करके फुला देता है तो कोई निन्दा करके सिकुड़ा देता है। ये दोनों आपको परिच्छिन्न बनाते हैं। भाग्यवान तो वह पुरुष है जो ऐसे तमाम बन्धनों के विरुद्ध खड़ा होकर अपने देवत्व की, अपने ईश्वरत्व की घोषणा करता है, अपने आत्मस्वरूप का

अनुभव करता है। जो पुरुष ईश्वर के साथ अपनी अभेदता पहचान सकता है और अपने इर्दगिर्द के लोगों के समक्ष, समग्र संसार के समक्ष निडर होकर अपने ईश्वरत्व का निरूपण कर सकता है उस पुरुष को ईश्वर मानने के लिए सारा संसार बाध्य हो जाता है। पूरी सृष्टि उसे अवश्य परमात्मा मानती है।

६८. यह स्थूल भौतिक पदार्थ इन्द्रियों की भ्रांति के सिवाय और कुछ नहीं है। जो नाम व रूप पर भरोसा रखता है उसे सफलता नहीं मिलती। सूक्ष्म सिद्धांत अर्थात् सत्य आत्म-तत्त्व पर निर्भर रहना ही सफलता की कुंजी है। उसे ग्रहण करो, उसका मनन करो, निदिध्यासन करो, अनुभव करो और व्यवहार करो। फिर नाम-रूप आपको खोजते फिरेंगे।

६९. सुख का रहस्य यह है : आप ज्यों-ज्यों पदार्थों को खोजते-फिरते हो, त्यों-त्यों उनको खोते जाते हो। आप जितने कामना से परे होते हो, उतने आवश्यकताओं से भी परे हो जाते हो और पदार्थ भी आपका पीछा करते हुए आते हैं।

७०. आनंद से ही सबकी उत्पत्ति, आनंद में ही सबकी स्थिति एवं आनंद में ही सबकी लीनता देखने से आनंद की पूर्णता का अनुभव होता है।

७१. हम बोलना चाहते हैं तभी शब्दोच्चारण होता है, बोलना न चाहें तो नहीं होता। हम देखना चाहें तभी बाहर का दृश्य दिखता है, नेत्र बंद कर लें तो नहीं दिखता। हम जानना चाहें तभी पदार्थ का ज्ञान होता है, जानना न चाहें तो ज्ञान नहीं होता। अतः जो कोई पदार्थ देखने, सुनने या जानने में आता है उसको बाधित करके बाधित करनेवाली ज्ञानरूप बुद्धि की वृत्ति को भी बाधित कर दो। उसके बाद जो शेष रहे वह ज्ञाता है। ज्ञातृत्व धर्मरहित शुद्धस्वरूप ज्ञाता ही नित्य सच्चिदानन्द ब्रह्म है। निरन्तर ऐसा विवेक करते हुए ज्ञान व ज्ञेयरहित केवल चिन्मय, नित्य, विज्ञानानन्दघनरूप में स्थिर रहो।

७२. यदि आप सर्वांगपूर्ण जीवन का आनन्द लेना चाहते हो तो कल की चिन्ता छोड़ो। अपने चारों ओर जीवन के बीज बोओ। भविष्य में सुनहरे स्वप्न साकार होते देखने की आदत बनाओ। सदा के लिए मन में यह बात पक्की बैठा दो कि आपका आनेवाला कल अत्यन्त प्रकाशमय, आनन्दमय एवं मधुर होगा। कल आप अपनेको आज से भी अधिक भाग्यवान पायेंगे। आपका मन सर्जनात्मक शक्ति से भर जायेगा। जीवन ऐश्वर्यपूर्ण हो जायेगा। आपमें इतनी शक्ति है कि विघ्न आपसे भयभीत होकर भाग खड़े होंगे। ऐसी विचारधारा से निश्चित रूप से कल्याण होगा। आपके संशय मिट जायेंगे।

७३. ओ मानव ! तू ही अपनी चेतना से सब वस्तुओं को आकर्षक बना देता है। अपनी प्यारभरी दृष्टि उन पर डालता है तब तेरी ही चमक उन पर चढ़ जाती है और... फिर तू ही उनके प्यार में फँस जाता है !

७४. मैंने विचित्र एवं अटपटे मार्ग द्वारा ऐसे तत्त्वों की खोज की जो मुझे परमात्मा तक पहुँचा सकें। लेकिन मैं जिस-जिस नये मार्ग पर चला उन सब मार्गों से पता चला कि मैं परमात्मा से दूर चला गया। फिर मैंने बुद्धिमत्ता एवं विद्या से परमात्मा की खोज की फिर भी परमात्मा से अलग रहा। ग्रन्थालयों एवं विद्यालयों ने मेरे विचारों में उलटी गड़बड़ कर दी। मैं थककर बैठ गया। निस्तब्ध हो गया। संयोगवश अपने भीतर ही झाँका, ध्यान किया तो उस अंतर्दृष्टि से मुझे सर्वस्व मिला जिसकी खोज मैं बाहर कर रहा था। मेरा आत्मस्वरूप सर्वत्र व्याप्त हो रहा है।

७५ . जैसे सामान्य मनुष्य को पत्थर, गाय, भैंस स्वाभाविक रीति से दृष्टिगोचर होते हैं, वैसे ही ज्ञानी को निजानन्द का स्वाभाविक अनुभव होता है।

७६. वेदान्त का यह अनुभव है कि नीच, नराधम, पिशाच, शत्रु कोई है ही नहीं। पवित्र स्वरूप ही सर्व रूपों में हर समय

शोभायमान है। अपने-आपका कोई अनिष्ट नहीं करता। मेरे सिवा और कुछ है ही नहीं तो मेरा अनिष्ट करनेवाला कौन है? मुझे अपने-आपसे भय कैसा ?

७७. यह चराचर सृष्टिरूपी द्वैत तब तक ही भासता है जब तक उसे देखनेवाला मन बैठा है। मन शांत होते ही द्वैत की गंध तक नहीं रहती।

७८. जिस प्रकार एक धागे में उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ फूल पिरोये हुए होते हैं, उसी प्रकार मेरे आत्मस्वरूप में उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ शरीर पिरोये हुए हैं। जैसे फूलों की गुणवत्ता का प्रभाव धागे पर नहीं पड़ता, वैसे ही शरीरों की गुणवत्ता का प्रभाव मेरी सर्वव्यापकता पर नहीं पड़ता। जैसे सब फूलों के विनाश से धागे को कोई हानि नहीं, वैसे ही शरीरों के विनाश से मुझ सर्वगत आत्मा को कोई हानि नहीं होती।

७९. मैं निर्मल, निश्चल, अनन्त, शुद्ध, अजर, अमर हूँ। मैं असत्स्वरूप देह नहीं। सिद्ध पुरुष इसीको 'ज्ञान' कहते हैं।

८०. मैं भी नहीं और मुझसे अलग अन्य भी कुछ नहीं। साक्षात् आनन्द से परिपूर्ण, केवल, निरन्तर और सर्वत्र एक ब्रह्म ही है। उद्वेग छोड़कर केवल यही उपासना सतत करते रहो।

८१. जब आप जान लेंगे कि दूसरों का हित करना अपना ही हित करने के बराबर है और दूसरों का अहित करना अपना ही अहित करने के बराबर है, तब आपको धर्म के स्वरूप का साक्षात्कार हो जायेगा।

८२. आप आत्म-प्रतिष्ठा, दलबन्दी और ईर्ष्या को सदा के लिए छोड़ दो। पृथ्वी माता की तरह सहनशील हो जाओ। संसार आपके कदमों में न्योछावर होने का इन्तजार कर रहा है।

८३. मैं निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य मुक्त और अच्युत हूँ। मैं असत्स्वरूप देह नहीं। सिद्ध पुरुष इसीको 'ज्ञान' कहते हैं।

८४. जो दूसरों का सहारा खोजता है, वह सत्यस्वरूप ईश्वर

की सेवा नहीं कर सकता।

८५. सत्यस्वरूप महापुरुष का प्रेम सुख-दुःख में समान रहता है, सब अवस्थाओं में हमारे अनुकूल रहता है। हृदय का एकमात्र विश्रामस्थल वह प्रेम है। वृद्धावस्था उस आत्मरस को सुखा नहीं सकती। समय बदल जाने से वह बदलता नहीं। कोई विरला भाग्यवान ही ऐसे दिव्य प्रेम का भाजन बन सकता है।

८६. शोक और मोह का कारण है प्राणियों में विभिन्न भावों का अध्यारोप करना। मनुष्य जब एक को सुख देनेवाला, प्यारा, सुहृद समझता है और दूसरे को दुःख देनेवाला शत्रु समझकर उससे द्वेष करता है तब उसके हृदय में शोक और मोह का उदय होना अनिवार्य है। वह जब सर्व प्राणियों में एक अखण्ड सत्ता का अनुभव करने लगेगा, प्राणिमात्र को प्रभु का पुत्र समझकर उसे आत्मभाव से प्यार करेगा तब उस साधक के हृदय में शोक और मोह का नामोनिशान नहीं रह जायेगा। वह सदा प्रसन्न रहेगा। संसार में उसके लिए न ही कोई शत्रु रहेगा और न ही कोई मित्र। उसको कोई क्लेश नहीं पहुँचायेगा। उसके सामने विषधर नाग भी अपना स्वभाव भूल जायेगा।

८७. जिसको अपने प्राणों की परवाह नहीं, मृत्यु का नाम सुनकर बिल्कुल विचलित न होकर उसका स्वागत करने के लिए जो सदा तत्पर रहता है उसके लिए संसार में कोई कार्य असाध्य नहीं। उसे किसी बाह्य शस्त्रों की जरूरत नहीं, साहस ही उसका शस्त्र है। उस शस्त्र से वह अन्याय का पक्ष लेनेवालों को पराजित कर देता है फिर भी उनके लिए बुरे विचारों का सेवन नहीं करता।

८८. चिन्ता ही आनंद व उल्लास का विध्वंस करनेवाली राक्षसी है।

८९. कभी-कभी मध्यरात्रि को जाग जाओ। उस समय इन्द्रियाँ अपने विषयों के प्रति चंचल नहीं रहतीं। बहिर्मुख स्फुरण की गति मंद होती है। इस अवस्था का लाभ लेकर इन्द्रियातीत अपने चिदाकाश स्वरूप का अनुभव करो। जगत, शरीर व इन्द्रियों के

अभाव में भी अपने अखण्ड अस्तित्व को जानो।

९०. दृश्य में प्रीति नहीं रहना ही असली वैराग्य है।

९१. रोग हमें दबाना चाहता है। उससे हमारे विचार मंद भी हो जाते हैं। अतः रोग की निवृत्ति करनी चाहिए। लेकिन जो विचारवान पुरुष है, वह केवल रोगनिवृत्ति के पीछे ही नहीं लग जाता। वह तो यह निगरानी रखता है कि भयंकर दुःख के समय भी अपना विचार छूट तो नहीं गया! ऐसा पुरुष 'हाय-हाय' करके प्राण नहीं त्यागता क्योंकि वह जानता है कि रोग उसका दास है। रोग कैसा भी भय दिखाये लेकिन विचारवान पुरुष इससे प्रभावित नहीं होता।

९२. जिस साधक के पास धारणा की दृढ़ता एवं उद्देश्य की पवित्रता, ये दो गुण होंगे वह अवश्य विजेता होगा। इन दो शस्त्रों से सुसज्जित साधक समस्त विघ्न-बाधाओं का सामना करके आखिर में विजयपताका फहरायेगा।

९३. जब तक हमारे मन में इस बात का पक्का निश्चय नहीं होगा कि यह सृष्टि शुभ है तब तक मन एकाग्र नहीं होगा। जब तक हम समझते रहेंगे कि सृष्टि बिगड़ी हुई है तब तक मन सशंक दृष्टि से चारों ओर दौड़ता रहेगा। सर्वत्र मंगलमय दृष्टि रखने से मन अपने-आप शांत होने लगेगा।

९४. आसन स्थिर करने के लिए संकल्प करें कि जैसे पृथ्वी को धारण करते हुए भी शेषजी बिल्कुल अचल रहते हैं वैसे मैं भी अचल रहूँगा। मैं शरीर और प्राण का दृष्टा हूँ।

९५. 'संसार मिथ्या है' - यह मंद ज्ञानी की धारणा है। 'संसार स्वप्नवत् है' - यह मध्यम ज्ञानी की धारणा है। 'संसार का अत्यन्त अभाव है, संसार की उत्पत्ति कभी हुई ही नहीं' - यह उत्तम ज्ञानी की धारणा है।

९६. आप यदि भक्तिमार्ग में हों तो सारी सृष्टि भगवान की है इसलिए किसीकी भी निन्दा करना ठीक नहीं। आप यदि ज्ञानमार्ग में हों तो यह सृष्टि अपना ही स्वरूप है। आप अपनी ही निन्दा कैसे कर

सकते हैं ? इस प्रकार दोनों मार्गों में परनिन्दा का अवकाश ही नहीं है।

९७. दृश्य में दृष्टा का भान एवं दृष्टा में दृश्य का भान हो रहा है। इस गड़बड़ का नाम ही अविवेक या अज्ञान है। दृष्टा को दृष्टा तथा दृश्य को दृश्य समझना ही विवेक या ज्ञान है।

९८. आसन व प्राण स्थिर होने से शरीर में विद्युत पैदा होती है। शरीर के द्वारा जब भी क्रिया की जाती है तब वह विद्युत बाहर निकल जाती है। इस विद्युत को शरीर में रोक लेने से शरीर निरोगी बन जाता है।

९९. स्वप्न की सृष्टि अल्पकालीन और विचित्र होती है। मनुष्य जब जागता है तब जानता है कि मैं पलंग पर सोया हूँ। मुझे स्वप्न आया। स्वप्न में पदार्थ, देश, काल, क्रिया इत्यादि पूरी सृष्टि का सर्जन हुआ। लेकिन मेरे सिवाय और कुछ भी न था। स्वप्न की सृष्टि झूठी थी। इसी प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुष अज्ञानरूपी निद्रा से ज्ञानरूपी जाग्रत अवस्था को प्राप्त हुए हैं। वे कहते हैं कि एक ब्रह्म के सिवा और कुछ है ही नहीं। जैसे स्वप्न से जागने के बाद हमें स्वप्न की सृष्टि मिथ्या लगती है वैसे ही ज्ञानवान को यह जगत मिथ्या लगता है।

१००. शारीरिक कष्ट पड़े तब ऐसी भावना हो जाय कि : 'यह कष्टमेरे प्यारे प्रभु की ओर से है...' तो वह कष्ट तप का फल देता है।

१०१. चलते-चलते पैर में छाले पड़ गये हों, भूख व्याकुल कर रही हो, बुद्धि विचार करने में शिथिल हो गयी हो, किसी पेड़ के नीचे पड़े हों, जीवन असम्भव हो रहा हो, मृत्यु का आगमन हो रहा हो तब भी अन्दर से वही निर्भय ध्वनि उठे : **'सोऽहम्... सोऽहम्...** मुझे कोई भय नहीं... मेरी मृत्यु नहीं... मुझे भूख नहीं... प्यास नहीं... प्रकृति की कोई भी व्यथा मुझे नष्ट नहीं कर सकती... मैं वही हूँ... वही हूँ...'

१०२. जिनके आगे प्रिय-अप्रिय, अनुकूल-प्रतिकूल, सुख-दुःख और भूत-भविष्य एक समान हैं ऐसे ज्ञानी, आत्मवेत्ता

महापुरुष ही सच्चे धनवान हैं।

१०३. दु:ख में दु:खी और सुख में सुखी होनेवाले लोहे जैसे होते हैं। दु:ख में सुखी रहनेवाले सोने जैसे होते हैं। सुख-दु:ख में समान रहनेवाले रत्न जैसे होते हैं परन्तु जो सुख-दु:ख की भावना से परे रहते हैं वे ही सच्चे सम्राट हैं।

१०४. स्वप्न से जागकर जैसे स्वप्न को भूल जाते हैं वैसे जाग्रत से जागकर थोड़ी देर के लिए जाग्रत को भूल जाओ। रोज प्रात:काल में पन्द्रह मिनट इस प्रकार संसार को भूल जाने की आदत डालने से आत्मा का अनुसन्धान हो सकेगा। इस प्रयोग से सहजावस्था प्राप्त होगी।

१०५. त्याग और प्रेम से यथार्थ ज्ञान होता है। दु:खी प्राणी में त्याग व प्रेम विचार से आते हैं। सुखी प्राणी में त्याग व प्रेम सेवा से आते हैं क्योंकि जो स्वयं दु:खी है वह सेवा नहीं कर सकता पर विचार कर सकता है। जो सुखी है वह सुख में आसक्त होने के कारण उसमें विचार का उदय नहीं हो सकता लेकिन वह सेवा कर सकता है।

१०६. लोगों की पूजा व प्रणाम से जैसी प्रसन्नता होती है वैसी ही प्रसन्नता जब मार पड़े तब भी होती हो तो ही मनुष्य भिक्षान्न ग्रहण करने का सच्चा अधिकारी माना जाता है।

१०७. हरेक साधक को बिल्कुल नये अनुभव की दिशा में आगे बढ़ना है। इसके लिए ब्रह्मज्ञानी महात्मा की अत्यन्त आवश्यकता होती है। जिसको सच्ची जिज्ञासा हो, उसे ऐसे महात्मा मिल ही जाते हैं। दृढ़ जिज्ञासा से शिष्य को गुरु के पास जाने की इच्छा होती है। योग्य जिज्ञासु को समर्थ गुरु स्वयं दर्शन देते हैं।

१०८. बीते हुए समय को याद न करना, भविष्य की चिन्ता न करना और वर्त्तमान में प्राप्त सुख-दु:खादि में सम रहना ये जीवन्मुक्त पुरुष के लक्षण हैं।

१०९. जब बुद्धि एवं हृदय एक हो जाते हैं तब सारा जीवन साधना बन जाता है।

११०. बुद्धिमान पुरुष संसार की चिन्ता नहीं करते लेकिन अपनी मुक्ति के बारे में सोचते हैं। मुक्ति का विचार ही त्यागी, दानी, सेवापरायण बनाता है। मोक्ष की इच्छा से सब सद्गुण आ जाते हैं। संसार की इच्छा से सब दुर्गुण आ जाते हैं।

१११. परिस्थिति जितनी कठिन होती है, वातावरण जितना पीड़ाकारक होता है, उससे गुजरनेवाला भी उतना ही बलवान बन जाता है। अतः बाह्य कष्टों और चिन्ताओं का स्वागत करो। ऐसी परिस्थितियों में भी वेदान्त को आचरण में लाओ। जब आप वेदान्ती जीवन व्यतीत करेंगे तब देखेंगे कि समस्त वातावरण और परिस्थितियाँ आपके वश में हो रही हैं, आपके लिए उपयोगी सिद्ध हो रही हैं।

११२. हरेक पदार्थ पर से अपने मोह को हटा लो और एक सत्य पर, एक तथ्य पर, अपने ईश्वरत्व पर समग्र ध्यान को केन्द्रित करो। तुरन्त आपको आत्म-साक्षात्कार होगा।

११३. जैसे बड़े होते ही बचपन के खेलकूद छोड़ देते हो, वैसे ही संसार के खेलकूद छोड़कर आत्मानन्द का उपभोग करना चाहिए। जैसे अन्न व जल का सेवन करते हो, वैसे ही आत्म-चिन्तन का निरन्तर सेवन करना चाहिए। भोजन ठीक से होता है तो तृप्ति की डकार आती है वैसे ही यथार्थ आत्मचिन्तन होते ही आत्मानुभव की डकार आयेगी, आत्मानन्द में मस्त होंगे। आत्मज्ञान के सिवा शांति का और कोई उपाय नहीं।

११४. आत्मज्ञानी के हुक्म से सूर्य प्रकाशता है। उनके लिए इन्द्र पानी बरसाता है। उन्हीं के लिए पवन दूत बनकर गमनागमन करता है। उन्हीं के आगे समुद्र रेत में अपना सिर रगड़ता है।

११५. यदि आप अपने आत्मस्वरूप को परमात्मा समझो और अनुभव करो तो आपके सब विचार व मनोरथ सफल होंगे, उसी क्षण पूर्ण होंगे।

११६. राजा-महाराजा, देवी-देवता, वेद-पुराण आदि जो कुछ

हैं वे आत्मदर्शी के संकल्पमात्र हैं।

११७. जो लोग प्रतिकूलता को अपनाते हैं, ईश्वर उनके सम्मुख रहते हैं। ईश्वर जिन्हें अपने से दूर रखना चाहते हैं, उन्हें अनुकूल परिस्थितियाँ देते हैं। जिसको सब वस्तुएँ अनुकूल एवं पवित्र, सब घटनाएँ लाभकारी, सब दिन शुभ, सब मनुष्य देवता के रूप में दिखते हैं वही पुरुष तत्त्वदर्शी संत है।

११८. समता के विचार से चित्त जल्दी वश में होता है, हठ से नहीं।

११९. ऐसे लोगों से सम्बन्ध रखो कि जिससे आपकी सहनशक्ति बढ़े, समझ की शक्ति बढ़े, जीवन में आनेवाले सुख-दुःख की तरंगों का अपने भीतर शमन करने की ताकत आये, समता बढ़े, जीवन तेजस्वी बने।

१२०. लोग बोलते हैं कि ध्यान व आत्मचिन्तन के लिए हमें फुरसत नहीं मिलती। लेकिन भले मानुष ! जब नींद आती है तब सब महत्त्वपूर्ण काम भी छोड़कर सो जाना पड़ता है कि नहीं? जैसे नींद को महत्त्व देते हो वैसे ही चौबीस घण्टों में से कुछ समय ध्यान व आत्मचिन्तन में भी बिताओ। तभी जीवन सार्थक होगा। अन्यथा, कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

१२१. भूल जाओ कि तुम मनुष्य हो, अमुक जाति के हो, अमुक उम्र के हो, अमुक डिग्रीवाले हो, अमुक धन्धेवाले हो। तुम निर्गुण, निराकार, साक्षीरूप हो, ऐसा दृढ़ निश्चय करो। इसीमें तमाम प्रकार की साधनाएँ, क्रियाएँ, योगादि समाविष्ट हो जाते हैं। आप सर्वव्यापक अखण्ड चैतन्य हो। सारे ज्ञान का यह मूल है।

१२२. दोष तभी दिखता है जब हमारे लोचन प्रेम के अभावरूप पीलिया रोग से ग्रस्त होते हैं।

१२३. साधक यदि अभ्यास के मार्ग पर उसी प्रकार आगे बढ़ता जाय, जिस प्रकार प्रारम्भ में इस मार्ग पर चलने के लिए उत्साहपूर्वक कदम रखा था, तो आयुरूपी सूर्य अस्त होने से पहले, जीवनरूपी

दिन रहते ही अवश्य 'सोऽहं सिद्धि' के स्थान तक पहुँच जाय।

१२४. लोग जल्दी से उन्नति क्यों नहीं करते ? क्योंकि बाहर के अभिप्राय एवं विचारधाराओं का बहुत बड़ा बोझ हिमालय की तरह उनकी पीठ पर लदा हुआ है।

१२५. अपने प्रति होनेवाले अन्याय को सहन करते हुए अन्यायकर्त्ता को यदि क्षमा कर दिया जाय तो द्वेष प्रेम में परिणत हो जाता है।

१२६. साधना की शुरूआत श्रद्धा से होती है लेकिन समाप्ति ज्ञान से होनी चाहिए। ज्ञान माने स्वयंसहित सर्व ब्रह्मस्वरूप है ऐसा अपरोक्ष अनुभव।

१२७. अपने शरीर के रोम-रोम में से ॐ... का उच्चारण करो। पहले धीमे स्वर में प्रारम्भ करो। शुरू में ध्वनि गले से निकलेगी, फिर छाती से, फिर नाभि से और अन्त में रीढ़ की हड्डी के आखिरी छोर से निकलेगी। तब विद्युत के धक्के से सुषुम्ना नाड़ी तुरंत खुलेगी। सब कीटाणुसहित तमाम रोग भाग खड़े होंगे। निर्भयता, हिम्मत व आनंद का फव्वारा छूटेगा। हररोज प्रातःकाल में स्नानादि करके सूर्योदय के समय किसी एक नियत स्थान में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर कम-से-कम आधा घण्टा करके तो देखो !

१२८. आप जगत के प्रभु बनो अन्यथा जगत आप पर प्रभुत्व जमा लेगा। ज्ञान के मुताबिक जीवन बनाओ अन्यथा जीवन के मुताबिक ज्ञान हो जायेगा। फिर युगों की यात्रा से भी दुःखों का अन्त नहीं आयेगा।

१२९. वास्तविक शिक्षण का प्रारंभ तो तभी होता है जब मनुष्य सब प्रकार की बाह्य सहायताओं से विमुख होकर अपने भीतर के अनन्त स्रोत की तरफ अग्रसर होता है।

१३०. दृश्य प्रपंच की निवृत्ति के लिए, अंतःकरण को आनन्द में सराबोर रखने के लिए कोई भी कार्य करते समय विचार करोः 'मैं कौन हूँ और कार्य कौन करता है ?' भीतर से जवाब मिलेगाः

'मन और शरीर कार्य करते हैं। मैं साक्षीस्वरूप हूँ।' ऐसा करने से कर्त्तापन का अहं पिघलेगा, सुख-दुःख के आघात मंद होंगे।

१३१. राग-द्वेष की निवृत्ति का क्या उपाय है ? उपाय यही है कि सारे जगत-प्रपंच को मनोराज्य समझो। निन्दा-स्तुति से, राग-द्वेष से प्रपंच में सत्यता दृढ़ होती है।

१३२. जब कोई खूनी हाथ आपकी गरदन पकड़ ले, कोई शस्त्रधारी आपको कत्ल करने के लिए तत्पर हो जाय तब यदि आप उसके लिए प्रसन्नता से तैयार रहें, हृदय में किसी प्रकार का भय या विषाद उत्पन्न न हो तो समझना कि आपने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर लिया है। जब आपकी दृष्टि पड़ते ही सिंहादि हिंसक जीवों की हिंसावृत्ति गायब हो जाय तब समझना कि अब राग-द्वेष का अभाव हुआ है।

१३३. आत्मा के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है - ऐसी समझ रखना ही आत्मनिष्ठा है।

१३४. आप स्वप्नदृष्टा हैं और यह जगत आपका ही स्वप्न है। बस, जिस क्षण यह ज्ञान हो जायेगा उसी क्षण आप मुक्त हो जाएँगे।

१३५. दिन के चौबीसों घण्टों को साधनामय बनाने के लिए निकम्मा होकर व्यर्थ विचार करते हुए मन को बार-बार सावधान करके आत्मचिंतन में लगाओ। संसार में संलग्न मन को वहाँ से उठाकर आत्मा में लगाते रहो।

१३६. एक बार सागर की एक बड़ी तरंग एक बुलबुले की क्षुद्रता पर हँसने लगी। बुलबुले ने कहा :

''ओ तरंग ! मैं तो छोटा हूँ फिर भी बहुत सुखी हूँ। कुछ ही देर में मेरी यह देह टूट जायेगी, बिखर जायेगी। मैं जल के साथ जल हो जाऊँगा। वामन मिटकर विराट बन जाऊँगा। मेरी मुक्ति बहुत नजदीक है। मुझे आपकी स्थिति पर दया आती है। आप इतनी बड़ी हुई हो। आपका छुटकारा जल्दी नहीं होगा। आप भाग-भागकर

सामनेवाली चट्टान से टकराओगी। अनेक छोटी-छोटी तरंगों में विभक्त हो जाओगी। उन असंख्य तरंगों में से अनंत-अनंत बुलबुलों के रूप में परिवर्तित हो जाओगी। ये सब बुलबुले फूटेंगे तब आपका छुटकारा होगा। बड़प्पन का गर्व क्यों करती हो ?''

जगत की उपलब्धियों का अभिमान करके परमात्मा से दूर मत जाओ। बुलबुले की तरह सरल रहकर परमात्मा के साथ एकता का अनुभव करो।

१३७. जब आप ईर्ष्या, द्वेष, छिद्रान्वेषण, दोषारोपण, घृणा और निन्दा के विचार किसीके प्रति भेजते हैं तब साथ-ही-साथ वैसे ही विचारों को आमंत्रित भी करते हैं। जब आप अपने भाई की आँख में तिनका भोंकते हैं तब अपनी आँख में भी आप ताड़ भोंक रहे हैं।

१३८. शरीर अनेक हैं, आत्मा एक है। वह आत्मा-परमात्मा मुझसे अलग नहीं। मैं ही कर्त्ता, साक्षी व न्यायाधीश हूँ। मैं ही कर्कश आलोचक हूँ और मैं ही मधुर प्रशंसक हूँ। मेरे लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र व स्वच्छंद है। बंधन, परिच्छिन्नता और दोष मेरी दृष्टि में आते ही नहीं। मैं मुक्त हूँ ...परम मुक्त हूँ और अन्य लोग भी स्वतंत्र हैं। ईश्वर मैं ही हूँ। आप भी वही हो।

१३९. जिस प्रकार बालक अपनी परछाईं में वैताल की कल्पना कर भय पाता है उसी प्रकार जीव अपने ही संकल्प से भयभीत होता है और कष्ट पाता है।

१४०. कभी-कभी ऐसी भावना करो कि आपके सामने चैतन्य का एक महासागर लहरा रहा है। उसके किनारे खड़े रहकर आप आनन्द से उसे देख रहे हैं। आपका शरीर सागर की सतह पर घूमने गया है। आपके देखते-ही-देखते वह सागर में डूब गया। इस समस्त परिस्थिति को देखनेवाले आप, साक्षी आत्मा शेष रहते हैं। इस प्रकार साक्षीरूप में अपना अनुभव करो।

१४१. यदि हम चाहते हों कि भगवान हमारे सब अपराध माफ करें तो इसके लिए सुगम साधना यही है कि हम भी अपने साथ

सम्बन्धित सब लोगों के सब अपराध माफ कर दें। कभी किसीके दोष या अपराध पर दृष्टि न डालें क्योंकि वास्तव में सब रूपों में हमारा प्यारा इष्टदेव ही क्रीड़ा कर रहा है।

१४२. पूर्ण पवित्रता का अर्थ है बाह्य प्रभावों से प्रभावित न होना। सांसारिक मनोहरता एवं घृणा से परे रहना, राजी-नाराजगी से अविचल रहना, किसी में भेद न देखना और आत्मानुभव के द्वारा आकर्षणों व त्यागों से अलिप्त रहना। यही वेदान्त का, उपनिषदों का रहस्य है।

१४३. ईश्वर-साक्षात्कार तभी होगा जब संसार की दृष्टि से प्रतीत होनेवाले बड़े-से-बड़े वैरियों को भी क्षमा करने का आपका स्वभाव बन जायेगा।

१४४. चालू व्यवहार में से दो मिनट के लिए एकदम उपराम होकर विराम लो। सोचो कि : 'मैं कौन हूँ ? सर्दी-गर्मी शरीर को लगती है। भूख-प्यास प्राणों को लगती है। अनुकूलता-प्रतिकूलता मन को लगती है। शुभ-अशुभ एवं पाप-पुण्य का निर्णय बुद्धि करती है। मैं न शरीर हूँ , न प्राण हूँ , न मन हूँ, न बुद्धि हूँ। मैं तो हूँ इन सबको सत्ता देनेवाला, इन सबसे न्यारा निर्लेप आत्मा।'

१४५. जो मनुष्य निरन्तर 'मैं मुक्त हूँ...' ऐसी भावना करता है वह मुक्त ही है और 'मैं बद्ध हूँ...' ऐसी भावना करनेवाला बद्ध ही है।

१४६. आप निर्भय हैं, निर्भय हैं, निर्भय हैं। भय ही मृत्यु है। भय ही पाप है। भय ही नर्क है। भय ही अधर्म है। भय ही व्यभिचार है। जगत में जितने असत् या मिथ्या भाव हैं वे सब इस भयरूपी शैतान से पैदा हुए हैं।

१४७. परहित के लिए थोड़ा काम करने से भी भीतर की शक्तियाँ जागृत होती हैं। दूसरों के कल्याण के विचारमात्र से हृदय में एक सिंह के समान बल आ जाता है।

१४८. हम यदि निर्भय होंगे तो शेर को भी जीतकर उसे पाल सकेंगे। यदि डरेंगे तो कुत्ते भी हमें फाड़ खायेंगे।

१४९. प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक व्यवहार, प्रत्येक प्राणी ब्रह्मस्वरूप दिखे- यही सहज समाधि है।

१५०. जब कठिनाइयाँ आयें तब ऐसा मानना कि मुझमें सहनशक्ति बढ़ाने के लिए ईश्वर ने ये संयोग भेजे हैं। कठिन संयोगों में हिम्मत रहेगी तो संयोग बदलने लगेंगे। विषयों में राग-द्वेष रह गया होगा तो वे विषय कसौटी के रूप में सामने आयेंगे और उनसे पार होना पड़ेगा।

१५१. तत्त्वदृष्टि से न तो आपने जन्म लिया है न कभी लेंगे। आप तो अनन्त हैं, सर्वव्यापी हैं, नित्य मुक्त, अजर-अमर, अविनाशी हैं। जन्म-मृत्यु का प्रश्न ही गलत है, महा मूर्खतापूर्ण है। जहाँ जन्म ही नहीं हुआ, वहाँ मृत्यु हो ही कैसे सकती है ?

१५२. आप ही इस जगत के ईश्वर हो। आपको कौन दुर्बल बना सकता है? जगत में आप ही एकमात्र सत्ता हो। आपको किसका भय है ? खड़े हो जाओ। मुक्त हो जाओ। ठीक से समझ लो कि जो कोई विचार या शब्द आपको दुर्बल बनाता है वही एकमात्र अशुभ है। मनुष्य को दुर्बल व भयभीत करनेवाला जो कुछ इस संसार में है, वह पाप है।

१५३. आप अपना कार्य या कर्त्तव्य करो लेकिन न उसके लिए कोई चिन्ता रहे, न ही कोई इच्छा। अपने कार्य में सुख का अनुभव करो क्योंकि आपका कार्य स्वयं सुख या विश्राम है। आपका कार्य आत्मानुभव का ही दूसरा नाम है। कार्य में लगे रहो। कार्य आपको आत्मानुभव कराता है। किसी अन्य हेतु से कार्य न करो। स्वतंत्र वृत्ति से अपने कार्य पर डट जाओ। अपनेको स्वतंत्र समझो, किसीके कैदी नहीं।

१५४. आप यदि सत्य के मार्ग से नहीं हटते तो शक्ति का प्रवाह आपके साथ है, समय आपके साथ है, क्षेत्र आपके साथ है। लोगों को उनके भूतकाल की महिमा पर फूलने दो, भविष्यकाल की संपूर्ण महिमा आपके हाथ में है।

१५५. जब आप दिव्य प्रेम के साथ चाण्डाल में, चोर में, पापी में, अभ्यागत में और सबमें प्रभु के दर्शन करेंगे तब आप भगवान श्रीकृष्ण के प्रेमपात्र बन जायेंगे।

१५६. आचार्य गौड़पाद ने स्पष्ट कहा है : ''आप सब आपस में भले ही लड़ते रहें लेकिन मेरे साथ नहीं लड़ सकेंगे। आप सब लोग मेरे पेट में हैं। मैं आत्मस्वरूप से सर्वत्र व्याप्त हूँ।''

१५७. मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है, सब देवताओं से भी श्रेष्ठ है। देवताओं को भी फिर से धरती पर आना पड़ेगा और मनुष्य शरीर धारण करके मुक्ति प्राप्त करनी होगी।

१५८. निश्चिन्तता के दो सूत्र : जो कार्य करना जरूरी है उसे पूरा कर दो। जो बिनजरूरी है उसे भूल जाओ।

१५९. सेवा-प्रेम-त्याग ही मनुष्य के विकास का मूल मंत्र है। अगर यह मंत्र आपको जँच जाय तो सभी के प्रति सद्‌भाव रखो और शरीर से किसी-न-किसी व्यक्ति को बिना किसी मतलब के यथाशक्ति सहयोग देते रहो। यह नहीं कि, 'जब मेरी बात मानेंगे तब मैं सेवा करूँगा। अगर प्रबन्धक मेरी बात नहीं मानते हैं तो मैं सेवा नहीं करूँगा।'

भाई ! तब तो तुम सेवा नहीं कर पाओगे। तब तो तुम अपनी बात मनवाकर अपने अहं की ही पूजा करोगे।

१६०. जैसे स्वप्न मिथ्या है वैसे ही यह जाग्रत अवस्था भी स्वप्नवत् ही है, मिथ्या है। हरेक को अपने इस स्वप्न से जागना है। सद्‌गुरु बार-बार जगा रहे हैं लेकिन जागकर वापस सो न जायें ऐसा पुरुषार्थ तो हमें ही करना होगा।

१६१. नित्य प्रसन्नमुख रहो। मुख को कभी मलिन मत करो। निश्चय कर लो कि आपके लिए शोक ने इस जगत में जन्म ही नहीं लिया है। आनंदस्वरूप में चिन्ता को स्थान ही कहाँ है ?

१६२. समग्र ब्रह्माण्ड एक शरीर है। समग्र संसार एक शरीर है। जब तक आप प्रत्येक के साथ एकता का अनुभव करते रहेंगे तब

तक सब परिस्थितियाँ और आसपास की चीजें, हवा और समुद्र की लहरें भी आपके पक्ष में रहेंगी।

१६३. आपको जो कुछ शरीर से, बुद्धि से या आत्मा से कमजोर बनाये उसको विष की तरह तत्काल त्याग दो। वह कभी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रद होता है, पावन होता है, ज्ञानस्वरूप होता है। सत्य वह है जो शक्ति दे।

१६४. साधना में हमारी अभिरुचि होनी चाहिए, साधना की तीव्र माँग होनी चाहिए।

१६५. दूसरों के दोषों की चर्चा मत करो, चाहे वे कितने भी बड़े हों। किसीके दोष की चर्चा करके आप उसका किसी भी प्रकार से उपकार नहीं करते बल्कि उसे आघात पहुँचाते हैं और साथ-ही-साथ अपने आपको भी।

१६६. इस संसार को सत्य समझना ही मौत है। आपका असली स्वरूप तो आनन्दस्वरूप आत्मा है। आत्मा के सिवा संसार जैसी कोई चीज ही नहीं है। जैसे सोया हुआ मनुष्य स्वप्न में अपनी एकता नहीं जानता अपितु अपनेको अनेक करके देखता है वैसे ही आनंदस्वरूप आत्मा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति- इन तीन स्वरूपों को देखते हुए अपनी एकता, अद्वितीयता का अनुभव नहीं करता।

१६७. मनोजय का उपाय है अभ्यास और वैराग्य। अभ्यास माने प्रयत्नपूर्वक मन को बार-बार परमात्म-चिंतन में लगाना और वैराग्य माने मन को संसार के पदार्थों की ओर से वापस लौटाना।

१६८. किसीसे कुछ मत माँगो। देने के लिए लोग आपके पीछे-पीछे घूमेंगे। मान नहीं चाहोगे तो मान मिलेगा। स्वर्ग नहीं चाहोगे तो स्वर्ग के दूत आपके लिए विमान लेकर आयेंगे। उसको भी स्वीकार नहीं करोगे तो ईश्वर आपको अपने हृदय से लगायेंगे।

१६९. कभी-कभी उदय या अस्त होते हुए सूर्य की ओर चलो। नदी, सरोवर या समुद्र के तट पर अकेले घूमने जाओ। ऐसे स्थानों की मुलाकात लो जहाँ शीतल पवन मंद-मंद चल रहा हो। वहाँ

परमात्मा के साथ एकस्वर होने की सम्भावना के द्वार खुलते हैं।

१७०. आप ज्यों-ही इच्छा से ऊपर उठते हो, त्यों-ही आपका इच्छित पदार्थ आपको खोजने लगता है। अतः पदार्थ से ऊपर उठो। यही नियम है। ज्यों-ज्यों आप इच्छुक, भिक्षुक, याचक का भाव धारण करते हो, त्यों-त्यों आप ठुकराये जाते हो।

१७१. प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ को देखने के लिए प्रकाश जरूरी है। इसी प्रकार मन, बुद्धि, इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य करने के लिए आत्म-प्रकाश की आवश्यकता है क्योंकि बाहर का कोई प्रकाश मन, बुद्धि, इन्द्रिय, प्राणादि को चेतन करने में समर्थ नहीं।

१७२. जैसे स्वप्नदृष्टा पुरुष को जागने के बाद स्वप्न के सुख-दुःख, जन्म-मरण, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि स्पर्श नहीं करते क्योंकि वह सब खुद ही है। खुद के सिवाय स्वप्न में दूसरा कुछ था ही नहीं। वैसे ही, जीवन्मुक्त ज्ञानवान पुरुष को सुख-दुःख, जन्म-मरण, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म स्पर्श नहीं करते क्योंकि वे सब आत्मस्वरूप ही हैं।

१७३. वही भूमा नामक आत्मज्योति कुत्तों में रहकर भौंक रही है, सुअर में रहकर घूर रही है, गधों में रहकर रेंक रही है लेकिन मूर्ख लोग शरीरों पर ही दृष्टि रखते हैं, चैतन्य तत्त्व पर नहीं।

१७४. मनुष्य जिस क्षण भूत-भविष्य की चिन्ता का त्याग कर देता है, देह को सीमित और उत्पत्ति-विनाशशील जानकर देहाभिमान का त्याग कर देता है, उसी क्षण वह एक उच्चतर अवस्था में पहुँच जाता है। पिंजरे से छूटकर गगनविहार करते हुए पक्षी की तरह मुक्ति का अनुभव करता है।

१७५. समस्त भय एवं चिन्ताएँ आपकी इच्छाओं का परिणाम हैं। आपको भय क्यों लगता है ? क्योंकि आपको आशंका रहती है कि अमुक चीज कहीं चली न जाय। लोगों के हास्य से आप डरते हैं क्योंकि आपको यश की अभिलाषा है, कीर्ति में आसक्ति है। इच्छाओं को तिलांजलि दे दो। फिर देखो मजा ! कोई जिम्मेदारी

नहीं... कोई भय नहीं ।

१७६. दिखने में अत्यंत कुरूप, काला-कलूटा, कुबड़ा और तेज स्वभाव का मनुष्य भी आपका ही स्वरूप है। आप इस तथ्य से मुक्त नहीं। फिर घृणा कैसी ? कोई लावण्यमयी सुंदरी, सृष्टि की शोभा के समान, अति विलासभरी अप्सरा भी आपका ही स्वरूप है । फिर आसक्ति किसकी ? आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ उनको आपसे अलग करके दिखाती हैं। ये इन्द्रियाँ झूठ बोलनेवाली हैं। उनका कभी विश्वास मत करो। आप सब शरीरों के आत्मा हो। अतः सब कुछ आप ही हो।

१७७. मानव होने के नाते हम साधक हैं। साधक होने के नाते सत्य को स्वीकार करना हमारा स्वधर्म है । सत्य यही है कि बल दूसरों के लिए है, ज्ञान अपने लिए है और विश्वास परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने के लिए है।

१७८. अपनी आत्मा में डूब जाना यह सबसे बड़ा परोपकार है।

१७९. आप सदैव मुक्त हैं ऐसा विश्वास दृढ़ करो तो आप विश्व के उद्धारक हो जाते हो। आप यदि वेदान्त के स्वर के साथ स्वर मिलाकर निश्चय करो :'आप कभी शरीर न थे। आप नित्य, शुद्ध, बुद्ध आत्मा हो...' तो अखिल ब्रह्माण्ड के मोक्षदाता हो जाते हो।

१८०. कृपा करके उन स्वार्थमय उपायों और अभिप्रायों को दूर फेंक दो जो आपको परिच्छिन्न रखते हैं। सब वासनाएँ राग हैं। व्यक्तिगत या शरीरगत प्रेम आसक्ति है। उसे फेंक दो। स्वयं पवित्र हो जाओ। आपका शरीर स्वस्थ और बुद्धि पूर्णस्वरूप हो जायेगी।

१८१. यदि संसार के सुख व पदार्थ प्राप्त हों तो आपको कहना चाहिए : 'ओ शैतान ! हट जा मेरे सामने से। तेरे हाथ से मुझे कुछ नहीं चाहिए।' तब देखो कि आप कैसे सुखी हो जाते हो ! परमात्मा अथवा परमात्मा-प्राप्त किसी महापुरुष पर विश्वास रखकर अपनी जीवनडोरी निःशंक बनकर उनके चरणों में सदा के लिए रख दो। निर्भयता आपके चरणों की दासी बन जायेगी।

१८२. जिसने एक बार ठीक से जान लिया कि यह जगत मिथ्या

है और भ्रान्ति से इसकी प्रतीति हो रही है, उसको कभी दुःख नहीं होता। जगत में कभी आसक्ति नहीं होती। जगत के मिथ्यात्व के निश्चय का नाम ही जगत का नाश है।

१८३. अपने स्वरूप में लीन होने मात्र से आप संसार के सम्राट बन जायेंगे। यह सम्राटपद केवल इस संसार का ही नहीं, समस्त लोक-परलोक का सम्राटपद होगा।

१८४. 'हे जनक ! चाहे देवाधिदेव महादेव आकर आपको उपदेश दें या भगवान विष्णु आकर उपदेश दें अथवा ब्रह्माजी आकर उपदेश दें लेकिन आपको कदापि सुख न होगा। जब विषयों का त्याग करोगे तभी सच्ची शांति व आनंद प्राप्त होंगे।'

१८५. जिस प्रभु ने हमें मानव जीवन देकर यह स्वाधीनता दी कि हम जब चाहें तब धर्मात्मा होकर, भक्त होकर, जीवन्मुक्त होकर, कृतकृत्य हो सकते हैं- उस प्रभु की महिमा गाओ। गाओ नहीं तो सुनो। सुनो भी नहीं, गाओ भी नहीं तो स्वीकार ही कर लो।

१८६. चाहे समुद्र के गहरे तल में जाना पड़े, साक्षात् मृत्यु का मुकाबला करना पड़े, अपने आत्मप्राप्ति के उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए अडिग रहो। उठो, साहसी बनो, शक्तिमान बनो। आपको जो बल व सहायता चाहिए वह आपके भीतर ही है।

१८७. जब-जब जीवन सम्बन्धी शोक और चिन्ता घेरने लगे तब-तब अपने आनंदस्वरूप का गान करते-करते उस मोह-माया को भगा दो।

१८८. जब शरीर में कोई पीड़ा या अंग में जख्म हो तब 'मैं आकाशवत् आकाररहित चेतन हूँ...' ऐसा दृढ़ निश्चय करके पीड़ा को भूल जाओ।

१८९. जब दुनिया के किसी चक्कर में फँस जाओ तब 'मैं निर्लेप नित्य मुक्त हूँ...' ऐसा दृढ़ निश्चय करके उस चक्कर से बाहर निकल जाओ।

१९०. जब घर-बार सम्बन्धी कोई कठिन समस्या व्याकुल

करे तब उसे मदारी का खेल समझकर, स्वयं को निःसंग जानकर उस बोझ को हलका कर दो।

१९१. जब क्रोध के आवेश में आकर कोई अपमानयुक्त वचन कहे तब अपने शांतिमय स्वरूप में स्थिर होकर मन में किसी भी क्षोभ को पैदा न होने दो।

१९२. उत्तम अधिकारी जिज्ञासु को चाहिए कि वह ब्रह्मवेत्ता सद्‌गुरु के पास जाकर श्रद्धापूर्वक महावाक्य सुने। उसका मनन व निदिध्यासन करके अपने आत्मस्वरूप को जाने। जब आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है तब ही परम विश्रांति मिल सकती है, अन्यथा नहीं। जब तक ब्रह्मवेत्ता महापुरुष से महावाक्य प्राप्त न हो तब तक वह मन्द अधिकारी है। वह अपने हृदयकमल में परमात्मा का ध्यान करे, स्मरण करे, जप करे। इस ध्यान-जपादि के प्रसाद से उसे ब्रह्मवेत्ता सद्‌गुरु प्राप्त होंगे।

१९३. मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार छाया की तरह जड़ हैं, क्षणभंगुर हैं क्योंकि वे उत्पन्न होते हैं और लीन भी हो जाते हैं। जिस चैतन्य की छाया उसमें पड़ती है वह परम चैतन्य सबका आत्मा है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का अभाव हो जाता है लेकिन उसका अनुभव करनेवाले का अभाव कदापि नहीं होता।

१९४. आप अपनी शक्ति को उच्चातिउच्च विषयों की ओर बहने दो। इससे आपके पास वे बातें सोचने का समय ही नहीं मिलेगा जिससे कामुकता की गंध आती हो।

१९५. अपराधों के अनेक नाम हैं : बालहत्या, नरहत्या, मातृहत्या, गौहत्या इत्यादि। परंतु प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का अनुभव न करके आप ईश्वरहत्या का सबसे बड़ा अपराध करते हैं।

१९६. सेवा करने की स्वाधीनता मनुष्यमात्र को प्राप्त है। अगर वह करना ही न चाहे तो अलग बात है। सेवा का अर्थ है : मन-वाणी-कर्म से बुराईरहित हो जाना यह विश्व की सेवा हो गयी। यथाशक्ति भलाई कर दो यह समाज की सेवा हो गयी। भलाई का फल छोड़ दो

यह अपनी सेवा हो गयी। प्रभु को अपना मानकर स्मृति और प्रेम जगा लो यह प्रभु की सेवा हो गयी। इस प्रकार मनुष्य अपनी सेवा भी कर सकता है, समाज की सेवा भी कर सकता है, विश्व की सेवा भी कर सकता है और विश्वेश्वर की सेवा भी कर सकता है।

१९७. आत्मा से बाहर मत भटको, अपने केन्द्र में स्थिर रहो, अन्यथा गिर पड़ोगे। अपने-आपमें पूर्ण विश्वास रखो। आत्म-केन्द्र पर अचल रहो। फिर कोई चीज आपको विचलित नहीं कर सकती।

१९८. सदा शांत, निर्विकार और सम रहो। जगत को खेलमात्र समझो। जगत से प्रभावित मत हो। इससे आप हमेशा सुखी रहोगे। फिर कुछ बढ़ाने की इच्छा नहीं होगी और कुछ कम होने से दुःख नहीं होगा।

१९९. समर्थ सद्गुरु के समक्ष सदा फूल की भाँति खिले हुए रहो। इससे उनके अंदर संकल्प होगा कि, 'यह तो बहुत उत्साही साधक है, सदा प्रसन्न रहता है।' उनके सामर्थ्यवान संकल्प से आपकी वह कृत्रिम प्रसन्नता भी वास्तविक प्रसन्नता में बदल जायेगी।

२००. यदि रोग को भी ईश्वर का दिया हुआ मानो तो प्रारब्ध-भोग भी हो जाता है और वह कष्ट तप का फल देता है। इससे ईश्वर-कृपा की प्राप्ति होती है। व्याकुल मत हो। 'कैप्सूल' और 'इन्जेक्शन' के आधीन मत हो।

२०१. साधक को चाहिए कि अपने लक्ष्य को दृष्टि में रखकर साधना-पथ पर तीर की तरह सीधा चला जाय। न इधर देखे न उधर। दृष्टि यदि इधर-उधर जाती हो तो समझना कि निष्ठा स्थिर नहीं है।

२०२. आपने अपने जीवन में हजारों स्वप्न देखे होंगे लेकिन वे आपके जीवन का अंश नहीं बन जाते। इसी प्रकार ये जाग्रत जगत के आडम्बर आपकी आत्मा के समक्ष कोई महत्त्व नहीं रखते।

२०३. एक आत्मा को ही जानो, अन्य बातों को छोड़ो। धीर साधक को चाहिए कि वह सावधान होकर आत्मनिष्ठा बढ़ाये, अनेक

शब्दों का चिन्तन व भाषण न करे क्योंकि वह तो केवल मन-वाणी को परिश्रम देनेवाला है, असली साधना नहीं है।

२०४. जो पुरुष जन-समूह से ऐसे डरे जैसे साँप से डरता है, सम्मान से ऐसे डरे जैसे नर्क से डरता है, स्त्रियों से ऐसे डरे जैसे मुर्दे से डरता है, उस पुरुष को देवतागण ब्राह्मण मानते हैं।

२०५. जैसे अपने शरीर के अंगों पर क्रोध नहीं आता वैसे शत्रु, मित्र व अपनी देह में एक ही आत्मा को देखनेवाले विवेकी पुरुष को कदापि क्रोध नहीं आता।

२०६. 'मैंने तो शरीर को ईश्वरार्पण कर दिया है। अब उसकी भूख-प्यास, सुख-दुःखादि से मुझे क्या ? समर्पित वस्तु में आसक्त होना महा पाप है।'

२०७. आप यदि दिव्य दृष्टि पाना चाहते हो तो आपको इन्द्रियों के क्षेत्र का त्याग करना होगा।

२०८. प्रलयकाल के मेघ की गर्जना हो, समुद्र उमड़ पड़े, बारहों सूर्य तपायमान हो जायें, पहाड़ से पहाड़ टकराकर भयानक आवाज हो तो भी ज्ञानी के निश्चय में द्वैत नहीं भासता क्योंकि द्वैत है ही नहीं। द्वैत तो अज्ञानी को भासता है।

२०९. सत्य को स्वीकार करने से शांति मिलेगी। कुछ लोग योग्यता के आधार पर शांति खरीदना चाहते हैं। योग्यता से शांति नहीं मिलेगी, योग्यता के सदुपयोग से शांति मिलेगी। कई लोग सम्पत्ति के आधार पर शांति सुरक्षित रखना चाहते हैं। सम्पत्ति से शांति नहीं मिलेगी, सम्पत्ति के सदुपयोग से शांति मिलेगी, वैसे ही विपत्ति के सदुपयोग से भी शांति मिलेगी।

२१०. तुच्छ हानि-लाभ पर आपका ध्यान इतना क्यों रहता है जिससे अनन्त आनंदस्वरूप आत्मा पर से ध्यान हट जाता है ?

२११. अपने अन्दर ही आनंद प्राप्त करना यद्यपि कठिन है परन्तु बाह्य विषयों से आनंद प्राप्त करना तो असम्भव ही है।

२१२. 'मैं संसार का प्रकाश हूँ। प्रकाश के रूप में मैं ही सब

वस्तुओं में व्याप्त हूँ।' नित्य इन विचारों का चिंतन करते रहो। ये पवित्र विचार आपको परम पवित्र बना देंगे।

२१३. जो वस्तु कर्म से प्राप्त होती है उसके लिए संसार की सहायता तथा भविष्य की आशा की आवश्यकता होती है परन्तु जो वस्तु त्याग से प्राप्त होती है उसके लिए न संसार की सहायता चाहिए न भविष्य की आशा।

२१४. आपको जब तक बाहर चोर दिखता है तब तक जरूर आपके भीतर चोर है। जब दूसरे लोग ब्रह्म से भिन्न, अयोग्य, खराब, सुधारने योग्य दिखते हैं तब तक ओ सुधार का बीड़ा उठानेवाले! तू अपनी चिकित्सा कर।

२१५. सफल वे ही होते हैं जो सदैव नतमस्तक एवं प्रसन्नमुख रहते हैं। चिन्तातुर-शोकातुर लोगों की उन्नति नहीं हो सकती। प्रत्येक कार्य को हिम्मत व शांति से करो। फिर देखो कि : 'यह कार्य शरीर, मन और बुद्धि से हुआ। मैं उन सबको सत्ता देनेवाला चैतन्यस्वरूप हूँ।' ॐ... ॐ... का पावन गान करो।

२१६. किसी भी परिस्थिति में मन को व्यथित न होने दो। आत्मा पर विश्वास करके आत्मनिष्ठ बन जाओ। निर्भयता आपकी दासी बनकर रहेगी।

२१७. सत्संग से मनुष्य को साधना प्राप्त होती है, चाहे वह शांति के रूप में हो चाहे मुक्ति के रूप में, चाहे सेवा के रूप में हो, प्रेम के रूप में हो चाहे त्याग के रूप में हो।

२१८. भला-बुरा वही देखता है जिसके अन्दर भला-बुरा है। दूसरों के शरीरों को वही देखता है जो खुद को शरीर मानता है।

२१९. खबरदार! आपने यदि अपने शरीर के लिए ऐश-आराम की इच्छा की, विलासिता एवं इन्द्रिय-सुखों में अपना समय बरबाद किया तो आपकी खैर नहीं। ठीक से कार्य करते रहने की नीति अपनाओ। सफलता का पहला सिद्धांत है कार्य... विश्रामरहित कार्य... साक्षी भाव से कार्य। इस सिद्धांत को जीवन में चरितार्थ

करोगे तो पता चलेगा कि छोटा होना जितना सरल है उतना ही बड़ा होना भी सहज है।

२२०. भूतकाल पर खिन्न हुए बिना, भविष्य की चिन्ता किये बिना वर्त्तमान में कार्य करो। यह भाव आपको हर अवस्था में प्रसन्न रखेगा। हमें जो कुछ प्राप्त है उसका सदुपयोग ही अधिक प्रकाश पाने का साधन है।

२२१. आप जब सफलता की ओर पीठ कर लेते हो, परिणामों की चिन्ता का त्याग कर देते हो, सम्मुख आये हुए कर्त्तव्य पर अपनी उद्योगशक्ति एकाग्र करते हो तब सफलता आपके पीछे-पीछे आ जाती है। अत: सफलता को अपना लक्ष्य मत बनाओ, सफलता आपको खोजेगी।

२२२. वृत्ति तब तक एकाग्र नहीं होगी जब तक मन में कभी एक आशा रहेगी तो कभी दूसरी। शांत वही हो सकता है जिसे कोई कर्त्तव्य या आवश्यकता घसीट न रही हो। अतः परम शांति पाने के लिए जीवन की आशा भी त्यागकर मन को ब्रह्मानंद में डुबो दो। आज से ही समझ लो कि यह शरीर है ही नहीं। केवल ब्रह्मानन्द का सागर लहरा रहा है।

२२३. जिसमें पक्की निष्ठा है कि 'मैं आत्मा हूँ...' उसके लिए ऐसी कौन-सी ग्रंथि है जो खुल न सके ? ऐसी कोई ताकत नहीं जो उसके विरुद्ध जा सके।

२२४. 'मेरे भाग्य में नहीं था... ईश्वर की मर्जी... आज कल गुरु नहीं मिलते... अच्छा सत्संग प्राप्त नहीं होता... जगत खराब है...' ऐसे वचन हमारी कायरता व अन्त:करण की मलिनता के कारण निकलते हैं। अत: नकारात्मक स्वभाव और दूसरों पर दोषारोपण करने की वृत्ति से बचो।

२२५. आप जब भीतरवाले से नाराज होते हो तब जगत आपके साथ नाराज रहता है। जब आप भीतर अंतर्यामीरूप बन बैठे तो जगतरूपी पुतलीघर में फिर गड़बड़ कैसी ?

२२६. जिस क्षण हम संसार के सुधारक बनकर खड़े होते हैं उसी क्षण हम संसार को बिगाड़नेवाले बन जाते हैं। शुद्ध परमात्मा को देखने के बजाय जगत को बिगड़ा हुआ देखने की दृष्टि बनती है। सुधारक लोग मानते हैं कि : 'भगवान ने जो जगत बनाया है वह बिगड़ा हुआ है और हम उसे सुधार रहे हैं।' वाह ! वाह! धन्यवाद सुधारकों ! अपने दिल को सुधारो पहले। सर्वत्र निरंजन का दीदार करो। तब आपकी उपस्थिति मात्र से, आपकी दृष्टि मात्र से, अरे प्यारे ! आपको छूकर बहती हवा मात्र से अनन्त जीवों को शांति मिलेगी और अनन्त सुधार होगा। नानकजी, कबीरजी, महावीर, बुद्ध और लीलाशाहजी बापू जैसे महापुरुषों ने यही कुंजी आजमायी थी।

२२७. वेदान्त में हमेशा कर्म का अर्थ होता है वास्तविक आत्मा के साथ एक होकर चेष्टा करना, अखिल विश्व के साथ एकस्वर हो जाना। उस अद्वितीय परम तत्त्व के साथ निःस्वार्थ संयोग प्राप्त करना ही एकमात्र सच्चा कर्म है, बाकी सब बोझ की गठरियाँ उठाना है।

२२८.अपनी वर्त्तमान अवस्था चाहे कैसी भी हो, उसको सर्वोच्च मानने से ही आपके हृदय में आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान का अनायास उदय होने लगेगा। आत्म-साक्षात्कार को मीलों दूर की कोई चीज समझकर उसके पीछे दौड़ना नहीं है, चिन्तित होना नहीं है। चिन्ता की गठरी उठाकर व्यथित होने की जरूरत नहीं है। जिस क्षण आप निश्चिन्तता में गोता मारोगे, उसी क्षण आपका आत्मस्वरूप प्रगट हो जायेगा। अरे ! प्रगट क्या होगा, आप स्वयं आत्मस्वरूप हो ही। अनात्मा को छोड़ दो तो आत्मस्वरूप तो हो ही।

२२९. सदा ॐकार का गान करो। जब भय व चिन्ता के विचार आयें तब किसी मस्त संत-फकीर, महात्मा के सान्निध्य का स्मरण करो। जब निन्दा-प्रशंसा के प्रसंग आयें तब महापुरुषों के तेजस्वी जीवन का अवलोकन करो।

२३०. जिनको आप भयानक घटनाएँ एवं भयंकर आघात समझ बैठे हो, वास्तव में वे आपके प्रियतम आत्मदेव की ही करतूत

हैं। समस्त भयजनक तथा प्राणनाशक घटनाओं के नाम-रूप तो विष के हैं लेकिन वे बनी हैं अमृत से।

२३१. मन में यदि भय न हो तो बाहर चाहे कैसी भी भय की सामग्री उपस्थित हो जाय, आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। मन में यदि भय होगा तो तुरन्त बाहर भी भयजनक परिस्थितियाँ नं होते हुए भी उपस्थित हो जायेंगी। वृक्ष के तने में भूत दिखने लगेगा।

२३२. किसी भी परिस्थिति में दिखती हुई कठोरता व भयानकता से भयभीत नहीं होना चाहिए। कष्टों के काले बादलों केपीछे पूर्ण प्रकाशमय एकरस परम सत्ता सूर्य की तरह सदा विद्यमान है।

२३३. आप अपने पर कदापि अविश्वास मत करो। इस जगत में आप सब कुछ कर सकते हो। अपनेको कभी दुर्बल मत मानो। आपके अन्दर तमाम शक्तियाँ छुपी हुई हैं।

२३४. यदि कोई मनुष्य आपकी किसी चीज को चुरा लेता है तो डरते क्यों हो ? वह मनुष्य और आप एक हैं। जिस चीज को वह चुराता है वह चीज आपकी और उसकी, दोनों की है।

२३५. जो खुद के सिवाय दूसरा कुछ देखता नहीं, सुनता नहीं, जानता नहीं वह अनन्त है। जब तक खुद के सिवाय और किसी वस्तु का भान होता है, वह वस्तु सच्ची लगती है तब तक आप सीमित व शांत हैं, असीम और अनन्त नहीं।

२३६. संसार मुझे क्या आनंद दे सकता है ? सम्पूर्ण आनन्द मेरे भीतर से आया है। मैं ही सम्पूर्ण आनन्द हूँ... सम्पूर्ण महिमा एवं सम्पूर्ण सुख हूँ।

२३७. जीवन की समस्त आवश्यकताएँ जीवन में उपस्थित हैं परन्तु जीवन को जब हम बाह्य रंगों में रंग देते हैं तब जीवन का वास्तविक रूप हम नहीं जान पाते।

२३८. निन्दकों की निन्दा से मैं क्यों मुरझाऊँ ? प्रशंसकों की प्रशंसा से मैं क्यों फूलूँ ? निन्दा से मैं घटता नहीं और प्रशंसा से मैं बढ़ता नहीं। जैसा हूँ वैसा ही रहता हूँ। फिर निन्दा-स्तुति से खटक कैसी ?

२३९. संसार व संसार की समस्याओं में जो सबसे अधिक फँसे हुए हैं उन्हींको वेदान्त की सबसे अधिक आवश्यकता है। बीमार को ही औषधि की ज्यादा आवश्यकता है। क्यों जी! ठीक है न ?

२४०. जगत के पाप व अत्याचार की बात मत करो लेकिन अब भी आपको जगत में पाप दिखता है इसलिए रोओ।

२४१. हम यदि जान लें कि जगत में आत्मा के सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं और जो कुछ दिखता है वह स्वप्नमात्र है, तो इस जगत के दुःख-दारिद्रय, पाप-पुण्य कुछ भी हमें अशांत नहीं कर सकते।

२४२. विद्वानों, दार्शनिकों व आचार्यों की धमकी तथा अनुग्रह, आलोचना या अनुमति ब्रह्मज्ञानी पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती।

२४३. हे व्यष्टिरूप अनन्त ! आप अपने पैरों पर खड़े रहने का साहस करो, समस्त विश्व का बोझ आप खिलौने की तरह उठा लोगे।

२४४. सिंह की गर्जना व नरसिंह की ललकार, तलवार की धार व साँप की फुफकार, तपस्वी की धमकी व न्यायाधीश की फटकार... इन सबमें आपका ही प्रकाश चमक रहा है। आप इनसे भयभीत क्यों होते हो ? उलझन क्यों महसूस करते हो ? 'मेरी बिल्ली मुझको ही म्याऊँ' वाली बात क्यों होने देते हो ?

२४५. संसार हमारा सिर्फ खिलौना ही है और कुछ नहीं। अबोध बालक ही खिलौनों से भयभीत होता है, आसक्ति करता है, विचारशील व्यक्ति नहीं।

२४६. जब तक अविद्या दूर नहीं होगी तब तक चोरी, जुआ, दारू, व्यभिचार कभी बन्द न होंगे, चाहे लाख कोशिश करो।

२४७. आप हमेशा अंदर का ध्यान रखो। पहले हमारा भीतरी पतन होता है। बाह्य पतन तो इसका परिणाममात्र है।

२४८. त्याग से हमेशा आनंद मिलता है। जब तक आपके पास एक भी चीज बाकी है तब तक आप उस चीज के बंधन में बँधे रहोगे। आघात व प्रत्याघात हमेशा समान विरोधी होते हैं।

२४९. निश्चिन्तता ही आरोग्यता की सबसे बड़ी दवाई है।

२५०. सुख अपने सिर पर दुःख का मुकुट पहनकर आता है। जो सुख को अपनायेगा उसे दुःख को भी स्वीकार करना पड़ेगा।

२५१. मैं (आत्मा) सबका दृष्टा हूँ। मेरा दृष्टा कोई नहीं।

२५२. हजारों में से कोई एक पुरुष भीतर से शांत चित्तवाला रहकर बाहर से संसारी जैसा व्यवहार कर सकता है।

२५३. सत्य के लिए यदि शरीर का त्याग करना पड़े तो कर देना। यही आखिरी ममता है जो हमें तोड़नी होगी।

२५४. भय, चिन्ता, बेचैनी से ऊपर उठो। आपको ज्ञान का अनुभव होगा।

२५५. आपको कभी कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। केवल आपके खयालात ही आपके पीछे पड़े हैं।

२५६. प्रेम का अर्थ है अपने पड़ोसी तथा संपर्क में आनेवालों के साथ अपनी वास्तविक अभेदता का अनुभव करना।

२५७. ओ प्यारे ! अपने खोये हुए आत्मा को एक बार खोज लो। धरती व आसमान के शासक आप ही हो।

२५८. सदैव सम और प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।

२५९. जब तक चित्त में इतनी दृढ़ता न आ जाय कि शास्त्र की विधियों का पालन छोड़ देने से भी हृदय का यथार्थ भक्तिभाव नष्ट नहीं होगा, तब तक शास्त्र की विधियों को पालते रहो।

# गुरुभक्ति : एक अमोघ साधना

१. जन्म-मरण के विषचक्र से मुक्त होने का कोई मार्ग नहीं है क्या ? सुख-दुःख, हर्ष-शोक, लाभ-हानि, मान-अपमान की थप्पड़ों से बचने का कोई उपाय नहीं है क्या ?

है... अवश्य है। हे प्रिय आत्मन् ! नाशवान पदार्थों से अपना मन वापस लाकर सद्गुरु के चरणकमलों में लगाओ। गुरुभक्तियोग का आश्रय लो। गुरुसेवा ऐसा अमोघ साधन है जिससे वर्त्तमान

जीवन आनन्दमय बनता है और शाश्वत सुख के द्वार खुलते हैं।

**गुरु सेवत ते नर धन्य यहाँ।**
**तिनको नहीं दुःख यहाँ न वहाँ ॥**

२. सच्चे सद्‌गुरु की की हुई भक्ति शिष्य में सांसारिक पदार्थों के प्रति वैराग्य एवं अनासक्ति जगाती है, परमात्मा के प्रति प्रेम के पुष्प महकाती है।

३. प्रत्येक शिष्य सद्‌गुरु की सेवा करना चाहता है लेकिन अपने ढंग से। सद्‌गुरु चाहें उस ढंग से सेवा करने को कोई तत्पर नहीं।

जो विरला साधक गुरु चाहें उस ढंग से सेवा कर सकता है उसें कोई कमी नहीं रहती। ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु की सेवा से उनकी कृपा प्राप्त होती है और उस कृपा से न मिल सके ऐसा तीनों लोकों में कुछ भी नहीं है।

४. गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पवित्रतम सम्बन्ध है। संसार के तमाम बन्धनों से छुड़ाकर वह मुक्ति के मार्ग पर प्रस्थान कराता है। यह सम्बन्ध जीवनपर्यन्त का सम्बन्ध है। यह बात अपने हृदय की डायरी में सुवर्ण-अक्षरों से लिख लो।

५. उल्लू सूर्य के प्रकाश के अस्तित्व को माने या न माने फिर भी सूर्य हमेशा प्रकाशता है। चंचल मन का मनुष्य माने या न माने लेकिन सद्‌गुरु की परम कल्याणकारी कृपा सदैव बरसती ही रहती है।

६. सद्‌गुरु की चरणरज में स्नान किये बिना केवल कठिन तपश्चर्या करने से या वेदों का अध्ययन करने से वेदान्त का रहस्य प्रकट नहीं होता, आत्मानंद का अमृत नहीं मिलता।

७. दर्शनशास्त्र के चाहे जितने ग्रन्थ पढ़ो, हजारों वर्षों तक हिमालय की गुफा में तप करो, वर्षों तक प्राणायाम करो, जीवनपर्यन्त शीर्षासन करो, समग्र विश्व में प्रवास करके व्याख्यान दो फिर भी सद्‌गुरु की कृपा के बिना आत्मज्ञान नहीं होता। अतः निरभिमानी, सरल, निजानन्द में मस्त, दयालु स्वभाव के आत्म-साक्षात्कारी सद्‌गुरु के चरण में जाओ। जीवन को धन्य बनाओ।

८. सद्‌गुरु की सेवा किये बिना शास्त्रों का अध्ययन करना मुमुक्षु साधक के लिए समय बरबाद करने के बराबर है।

९. जिसको सद्‌गुरु प्राप्त हुए हैं ऐसे शिष्य के लिए इस विश्व में कुछ भी अप्राप्य नहीं। सद्‌गुरु शिष्य को मिली हुई परमात्मा की अमूल्य भेंट हैं। अरे नहीं नहीं... वे तो शिष्य के समक्ष साकार रूप में प्रकट हुए परमात्मा स्वयं हैं।

१०. सद्‌गुरु के साथ एक क्षण किया हुआ सत्संग लाखों वर्षों के तप से अनंत गुना श्रेष्ठ है। आँख के निमेषमात्र में सद्‌गुरु की अमृतवर्षी दृष्टि शिष्य के जन्म-जन्म के पापों को जला सकती है।

११. सद्‌गुरु जैसा प्रेमपूर्ण, कृपालु हितचिन्तक, विश्वभर में दूसरा कोई नहीं है।

१२. बाढ़ के समय यात्री यदि तूफानी नदी को बिना नाव के पार कर सके तो साधक भी बिना सद्‌गुरु के अपने जीवन के आखिरी लक्ष्य को सिद्ध कर सकता है। यानी ये दोनों ही बातें असंभव हैं।

अतः प्यारे साधक ! मनमुखी साधना की जिद्द करना छोड़ दो। गुरुमुखी साधना करने में ही सार है।

१३. सद्‌गुरु के चरणकमलों का आश्रय लेने से जिस आनंद का अनुभव होता है उसके आगे त्रिलोकी का साम्राज्य तुच्छ है।

१४. आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में सबसे महान शत्रु अहंभाव का नाश करने के लिए सद्‌गुरु की आज्ञा का पालन अमोघ शस्त्र है।

१५. रसोई सीखने के लिए कोई सिखानेवाला चाहिए, विज्ञान और गणित सीखने के लिए अध्यापक चाहिए तो क्या ब्रह्मविद्या सद्‌गुरु के बिना ही सीख लोगे ?

१६. सद्‌गुरुकृपा की सम्पत्ति जैसा दूसरा कोई खजाना विश्वभर में नहीं।

१७. सद्‌गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना यह अपनी ही कब्र खोदने के बराबर है।

१८. सद्‌गुरु के कार्य को शंका की दृष्टि से देखना महा पातक है।

१९. गुरुभक्ति व गुरुसेवा ये साधनारूपी नौका की दो पतवारें हैं। उनकी मदद से शिष्य संसारसागर को पार कर सकता है।

२०. सद्‌गुरु की कसौटी करना असंभव है। एक विवेकानन्द ही दूसरे विवेकानन्द को पहचान सकते हैं। बुद्ध को जानने के लिए दूसरे बुद्ध की आवश्यकता रहती है। एक रामतीर्थ का रहस्य दूसरे रामतीर्थ ही पा सकते हैं।

अतः सद्‌गुरु की कसौटी करने की चेष्टा छोड़कर उनको परिपूर्ण परब्रह्म परमात्मा मानो। तभी जीवन में वास्तविक लाभ होगा।

२१. गुरुभक्तियोग का आश्रय लेकर आप अपनी खोयी हुई दिव्यता को पुनः प्राप्त करो, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु आदि सब द्वन्द्वों से पार हो जाओ।

२२. गुरुभक्तियोग माने गुरु की सेवा के द्वारा मन और उसके विकारों पर नियंत्रण एवं पुनः संस्करण।

२३. शिष्य अपने गुरु के चरणकमल में साष्टांग प्रणाम करता है। उन पर श्रेष्ठ फूलों की वर्षा करके उनकी स्तुति करता है :

''हे परम पूज्य पवित्र गुरुदेव ! मुझे सर्वोच्च सुख प्राप्त हुआ है। मैं ब्रह्मनिष्ठा से जन्म-मृत्यु की परम्परा से मुक्त हुआ हूँ। मैं निर्विकल्प समाधि का शुद्ध सुख भोग रहा हूँ। जगत के किसी भी कोने में मैं मुक्तता से विचरण कर सकता हूँ। सब पर मेरी समदृष्टि है।

मैंने प्राकृत मन का त्याग किया है। मैंने सब संकल्पों एवं रुचि-अरुचि का त्याग किया है। अब मैं अखण्ड शांति में विश्रांति पा रहा हूँ... आनन्दमय हो रहा हूँ। मैं इस पूर्ण अवस्था का वर्णन नहीं कर पाता।

हे पूज्य गुरुदेव ! मैं अवाक् बन गया हूँ। इस दुस्तर भवसागर को पार करने में आपने मुझे सहाय की है। अब तक मुझे केवल मेरे शरीर में ही सम्पूर्ण विश्वास था। मैंने विभिन्न योनियों में असंख्य जन्म लिये। ऐसी सर्वोच्च निर्भय अवस्था मुझे कौन-से पवित्र कर्मों

त हुई यह मैं नहीं जानता। सचमुच यह एक दुर्लभ
एक महान उत्कृष्ट लाभ है।
नंद से नाचता हूँ। मेरे सब दुःख नष्ट हो गये हैं। मेरे
र्ण हुए हैं। मेरे कार्य सम्पन्न हुए हैं। मैंने सब वांछित
की हैं। मेरी इच्छा परिपूर्ण हुई है।
सच्चे माता-पिता हो। मेरी वर्त्तमान स्थिति मैं दूसरों
प्रकार प्रकट कर सकूँ ? सर्वत्र सुख और आनन्द का
लहराता हुआ मुझे दिख रहा है।
तःचक्षु जिससे खुल गये वह महावाक्य 'तत्त्वमसि' है।
वं वेदान्तसूत्रों को भी धन्यवाद ! जिन्होंने ब्रह्मनिष्ठ
उपनिषदों के महावाक्यों का रूप धारण किया है ऐसे श्री
प्रणाम ! श्री शंकराचार्यजी को प्रणाम !''
क मनुष्य के सिर पर गुरु के चरणामृत का एक बिन्दु
उसके सब दुःखों का नाश होता है। यदि एक ब्रह्मनिष्ठ
त्र पहनाये जायें तथा भोजन कराया जाय तो सारे विश्व
नाने एवं भोजन करवाने के बराबर है क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ
चर विश्व में व्याप्त हैं। सबमें वे ही हैं।

ॐ... ॐ... ॐ...

*- स्वामी शिवानंदजी*

# गुरु और सद्गुरु

न्हें कहते हैं, जिनसे मनुष्य किसी ऐसी नई बात को
सको वह नहीं जानता। इसीलिए मनुष्य सभी को गुरु
है। अवधूतजी ने इसी दृष्टि से चौबीस गुरु बनाये थे।
इन सारे गुरुओं से विलक्षण होते हैं। वे सत्स्वरूप
पथ को जानते हैं, इसीसे मनुष्य उनसद्गुरु को परम गुरु
कुछ उनके चरणों पर न्योछावर कर देता है क्योंकि वह

उन सद्गुरु से ऐसी चीज़ पाता है, जिसके सामने सं
चीजें, सभी स्थितियाँ बहुत ही कम कीमत की और अ
सद्गुरु ही गोविन्द से मिलाते हैं, सद्गुरु ही शिष्य
अशेष हरण करते हैं, इसीलिए शिष्य की दृष्टि में सद्
बढ़कर सेव्य हैं। इसीसे शास्त्रों और संतों ने सद्गुरु की
गायी है और सद्गुरु की शरणागति के बिना भगवान
अति दुर्लभ या असंभव कहा है। बात भी बिल्कुल ठी
अनुभवी मार्गप्रदर्शक सद्गुरु ही शिष्य को माया
से पार कर लक्ष्य स्थान पर ले जाने में समर्थ हैं। ऐसे
की जितनी ही पूजा हो, जितना सम्मान हो, जितन
जाय, उतनी ही थोड़ी है क्योंकि ऐसे सद्गुरु का बद
चुकाया ही नहीं जा सकता।

ऐसे सद्गुरु का द्रोही नरकगामी न हो तो दूसरा
...और ऐसे सद्गुरु की शरण न लेनेवाले से बढ़क
मन्दभागी भी और कौन होगा ? - *श्री हनुमानप्र*

## श्रीराम-वशिष्ठ संवाद

श्री वशिष्ठजी कहते हैं :

''हे रघुकुलभूषण श्रीराम ! अनर्थस्वरूप जितने सां
हैं वे सब जल में तरंग के समान विविध रूप धारण क
उत्पन्न करते हैं अर्थात् इच्छाएँ उत्पन्न करके जीव
फँसाते हैं। परन्तु जैसे सभी तरंगें जलस्वरूप ही हैं
सभी पदार्थ वस्तुतः नश्वर स्वभाववाले हैं।

बालक की कल्पना से आकाश में यक्ष और पिशाच
हैं परन्तु बुद्धिमान मनुष्य के लिए उन यक्षों और पिशाचों
नहीं। इसी प्रकार अज्ञानी के चित्त में यह जगत सत्य है
है जबकि हमारे जैसे ज्ञानियों के लिए यह जगत कुछ

विश्व पत्थर पर बनी हुई पुतलियों की सेना की तरह
अंतर-बाह्य विषयों से शून्य है। इसमें सत्यता कैसी?
यों को यह विश्व सत्य लगता है।''

बोले : ''श्रीराम ! जगत को सत्यरूप में जानना यह
है। उसे मिथ्या अर्थात् कल्पित समझना यही उचित

! त्वत्ता, अहंता आदि सब विभ्रम-विलास शांत,
शुद्ध ब्रह्मस्वरूप ही हैं। इसलिए मुझे तो ब्रह्म के
र कुछ भी नहीं दिखता। आकाश में जैसे जंगल नहीं
में जगत नहीं है।

प्रारब्धवश प्राप्त कर्मों से जिस पुरुष की चेष्टा
तरह इच्छाशून्य और व्याकुलतारहित होती है वह
पुरुष जीवन्मुक्त मुनि है। ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानी को
जीवन बाँस की तरह बाहर-भीतर से शून्य, रसहीन
हित लगता है।

प्रपंच में जिसे रुचि नहीं, हृदय में जिसे चिन्मात्र
अच्छा लगता है ऐसे पुरुष ने भीतर तथा बाहर शांति
है और इस भवसागर से पार हो गया है।

! शास्त्रवेत्ता कहते हैं कि मन का इच्छारहित होना
है क्योंकि इच्छाओं का त्याग करने से मन को जैसी
है ऐसी शांति सैकड़ों उपदेशों से भी नहीं मिलती।
पत्ति से जैसा दुःख प्राप्त होता है ऐसा दुःख तो नर्क में
छाओं की शांति से जैसा सुख होता है ऐसा सुख स्वर्ग
लोक में भी नहीं होता।

मस्त शास्त्र, तपस्या, यम और नियमों का निचोड़ यही
मात्र दुःखदायी है और इच्छा का शमन मोक्ष है।

हृदय में जैसी-जैसी और जितनी-जितनी इच्छाएँ
हैं उतने ही दुःखों से वह डरता रहता है। विवेक-

विचार द्वारा इच्छाएँ जैसे-जैसे शांत होती जाती हैं
दुःखरूपी छूत की बीमारी मिटती जाती है।

आसक्ति के कारण सांसारिक विषयों की इच्छाएँ
घनीभूत होती जाती हैं, त्यों-त्यों दुःखों की विषैली
जाती हैं। अपने पुरुषार्थ के बल से इस इच्छारूपी व्याधि
यदि नहीं किया जाय तो इस व्याधि से छूटने के लिए
औषधि नहीं है। ऐसा मैं दृढ़तापूर्वक मानता हूँ।

एक साथ सभी इच्छाओं का सम्पूर्ण त्याग न हो सके
थोड़ी इच्छाओं का धीरे-धीरे त्याग करना चाहिए परंतु
इच्छा के त्याग में रत, क्योंकि सन्मार्ग का पथिक दुःखी

जो नराधम अपनी वासना और अहंकार को क्षी
प्रयत्न नहीं करता वह दिनोंदिन अपनेको रावण की तर
में धकेल रहा है।

इच्छा ही दुःखों की जन्मदात्री इस संसाररूपी
है। यदि इस बीज को आत्मज्ञानरूपी अग्नि से ठीक
दिया तो पुनः यह अंकुरित नहीं होता।

रघुकुलभूषण राम ! इच्छामात्र संसार है और इ
अभाव ही निर्वाण है। अतः अनेक प्रकार की माथापच्ची
केवल ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि इच्छा उत्पन्न न

अपनी बुद्धि से इच्छा का विनाश करने को जो तत्
अभागे को शास्त्र और गुरु का उपदेश भी क्या करेगा?

जैसे अपनी जन्मभूमि जंगल में हिरणी की मृत्यु
उसी प्रकार अनेकविध दुःखों का विस्तार करनेवाल
विषय-विकार से युक्त इस जगत में मनुष्यों की मृत्यु

यदि मानव इच्छाओं के कारण बच्चों-सा मूढ़ न
आत्मज्ञान के लिए अल्प प्रयत्न ही करना पड़े। इसलिए
से इच्छाओं को ही शांत करना चाहिए।

इच्छा के शमन से परम पद की प्राप्ति होती है। इ

जाना यही निर्वाण है और इच्छायुक्त होना ही बंधन है । अतः यथाशक्ति इच्छा को जीतना चाहिए । भला इतना करने में क्या कठिनाई है ?

जन्म, जरा, व्याधि और मृत्युरूपी कँटीली झाड़ियों और खैर के वृक्ष-समूहों की जड़ भी इच्छा ही है । अतः शमरूपी अग्नि से अंदर-ही-अंदर बीज को जला डालना चाहिए। जहाँ इच्छाओं का अभाव है वहाँ मुक्ति निश्चित है ।

विवेक, वैराग्य आदि साधनों से इच्छा का सर्वथा विनाश करना चाहिए । इच्छा का संबंध जहाँ-जहाँ है वहाँ-वहाँ पाप, पुण्य, दुःखराशियाँ और लम्बी पीड़ाओं से युक्त बंधन को हाजिर ही समझो।

पुरुष की आंतरिक इच्छा ज्यों-ज्यों शांत होती जाती है, त्यों-त्यों मोक्ष के लिए उसका कल्याणकारक साधन बढ़ता जाता है । विवेकहीन इच्छा को पोसना, उसे पूर्ण करना यह तो संसाररूपी विषवृक्ष को पानी से सींचने के समान है।'' *-श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण*

# आत्मबल का आवाहन

क्या आप अपने-आपको दुर्बल मानते हो ? लघुताग्रंथि में उलझकर परिस्थितियों से पिस रहे हो ? अपना जीवन दीन-हीन बना बैठे हो ?

...तो अपने भीतर सुषुप्त आत्मबल को जगाओ । शरीर चाहे स्त्री का हो चाहे पुरुष का, प्रकृति के साम्राज्य में जो जीते हैं वे सब स्त्री हैं और प्रकृति के बन्धन से पार अपने आत्म-स्वरूप की पहचान जिन्होंने कर ली है, अपने मन की गुलामी की बेड़ियाँ तोड़कर जिन्होंने फेंक दी हैं, वे पुरुष हैं । स्त्री या पुरुष शरीर एवं मान्यताएँ होती हैं । तुम तो तन-मन से पार निर्मल आत्मा हो ।

जागो... उठो... अपने भीतर सोये हुए निश्चयबल को जगाओ। सर्वदेश, सर्वकाल में सर्वोत्तम आत्मबल को विकसित करो ।

आत्मा में अथाह सामर्थ्य है। अपनेको दीन-हीन मान बैठे तो विश्व में ऐसी कोई सत्ता नहीं जो तुम्हें ऊपर उठा सके। अपने आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो गये तो त्रिलोकी में ऐसी कोई हस्ती नहीं जो तुम्हें दबा सके।

भौतिक जगत में वाष्प की शक्ति, इलेक्ट्रॉनिक शक्ति, विद्युत की शक्ति, गुरुत्वाकर्षण की शक्ति बड़ी मानी जाती है लेकिन आत्मबल उन सब शक्तियों का संचालक बल है।

आत्मबल के सान्निध्य में आकर पंगु प्रारब्ध को पैर मिल जाते हैं, दैव की दीनता पलायन हो जाती है, प्रतिकूल परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं। आत्मबल सर्व रिद्धि-सिद्धियों का पिता है।

### आत्मबल कैसे जगायें ?

हररोज प्रातःकाल जल्दी उठकर सूर्योदय से पूर्व स्नानादि से निवृत्त हो जाओ। स्वच्छ पवित्र स्थान में आसन बिछाकर पूर्वाभिमुख होकर पद्मासन या सुखासन में बैठ जाओ। शांत और प्रसन्न वृत्ति धारण करो।

मन में दृढ़ भावना करो कि मैं प्रकृति-निर्मित इस शरीर के सब अभावों को पार करके, सब मलिनताओं-दुर्बलताओं से पिण्ड छुड़ाकर आत्मा की महिमा में जागकर ही रहूँगा।

आँखें आधी खुली आधी बन्द रखो। अब फेफड़ों में खूब श्वास भरो और भावना करो कि श्वास के साथ मैं सूर्य का दिव्य ओज भीतर भर रहा हूँ। श्वास को यथाशक्ति अन्दर टिकाये रखो। फिर 'ॐ...' का लम्बा उच्चारण करते हुए श्वास को धीरे-धीरे छोड़ते जाओ। श्वास के खाली होने के बाद तुरन्त श्वास न लो। यथाशक्ति बिना श्वास रहो और भीतर ही भीतर 'हरिः ॐ... हरिः ॐ...' का मानसिक जाप करो। फिर से फेफड़ों में खूब श्वास भरो। पूर्वोक्त रीति से श्वास यथाशक्ति अन्दर टिकाकर बाद में धीरे-धीरे छोड़ते हुए 'ॐ...' का गुँजन करो।

दस-पंद्रह मिनट ऐसे प्राणायामसहित उच्च स्वर से 'ॐ...' की ध्वनि करके शांत हो जाओ। सब प्रयास छोड़ दो। वृत्तियों को आकाश की ओर फैलने दो।

आकाश के अन्दर पृथ्वी है। पृथ्वी पर अनेक देश, अनेक समुद्र एवं अनेक लोग हैं। उनमें से एक आपका शरीर आसन पर बैठा हुआ है। इस पूरे दृश्य को आप मानसिक आँख से, भावना से देखते रहो।

आप शरीर नहीं हो बल्कि अनेक शरीर, देश, सागर, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र एवं पूरे ब्रह्माण्ड के दृष्टा हो, साक्षी हो। इस साक्षीभाव में जाग जाओ।

थोड़ी देर के बाद फिर से प्राणायामसहित 'ॐ...' का जाप करो और शांत होकर अपने विचारों को देखते रहो।

इस अवस्था में दृढ़ निश्चय करो कि: 'मैं जैसा चाहता हूँ वैसा होकर रहूँगा।' विषयसुख, सत्ता, धन-दौलत इत्यादि की इच्छा न करो क्योंकि निश्चयबल या आत्मबलरूपी हाथी के पदचिह्न में और सभी के पदचिह्न समाविष्ट हो ही जायेंगे।

आत्मानंदरूपी सूर्य के उदय होने के बाद मिट्टी के तेल के दीये के प्रकाशरूपी क्षुद्र सुखाभास की गुलामी कौन करे ?

किसी भी भावना को साकार करने के लिए हृदय को कुरेद डाले ऐसी निश्चयात्मक बलिष्ठ वृत्ति होनी आवश्यक है। अंतःकरण के गहरे-से-गहरे प्रदेश में चोट करे ऐसा प्राण भरके निश्चयबल का आवाहन करो। सीना तानकर खड़े हो जाओ अपने मन की दीन-हीन दुःखद मान्यताओं को कुचल डालने के लिए।

सदा स्मरण रहे कि इधर-उधर भटकती वृत्तियों के साथ तुम्हारी शक्ति भी बिखरती रहती है। अतः वृत्तियों को बहकाओ नहीं। तमाम वृत्तियों को एकत्रित करके साधनाकाल में आत्मचिन्तन में लगाओ और व्यवहारकाल में जो कार्य करते हो उसमें लगाओ। दत्तचित्त होकर हरेक कार्य करो। अपने स्वभाव में से आवेश

को सर्वथा निर्मूल कर दो । आवेश में आकर कोई निर्णय मत लो, कोई क्रिया मत करो । सदा शांत वृत्ति धारण करने का अभ्यास करो ।

विचारशील एवं प्रसन्न रहो । स्वयं अचल रहकर सागर की तरह सब वृत्तियों की तरंगों को अपने भीतर समा लो । जीवमात्र को अपना स्वरूप समझो । सबसे स्नेह रखो । दिल को व्यापक रखो । संकुचितता का निवारण करते रहो । खण्डनात्मक वृत्ति का सर्वथा त्याग करो ।

आत्मनिष्ठा में जागे हुए महापुरुषों के सत्संग एवं सत्साहित्य से जीवन को भक्ति एवं वेदान्त से पुष्ट एवं पुलकित करो । कुछ ही दिनों के इस सघन प्रयोग के बाद अनुभव होने लगेगा कि :

''भूतकाल के नकारात्मक स्वभाव, संशयात्मक-हानिकारक कल्पनाओं ने जीवन को कुचल डाला था, विषैला कर दिया था । अब निश्चयबल के चमत्कार का पता चला । अंतरतम में आविर्भूत दिव्य खजाना अब मिला । प्रारब्ध की बेड़ियाँ अब टूटने लगीं ।''

जिनको ब्रह्मज्ञानी महापुरुष का सत्संग और अध्यात्मविद्या का लाभ मिल जाता है उसके जीवन से दुःख विदा होने लगते हैं । ॐ आनन्द !

ठीक है न ? करोगे न हिम्मत ? पढ़कर रख मत देना इस पुस्तिका को । जीवन में इसको बार-बार पढ़ते रहो । एक दिन में यह पूर्ण न होगा । बार-बार अभ्यास करो । तुम्हारे लिए यह एक ही पुस्तिका काफी है । अन्य कचरापट्टी न पढ़ोगे तो चलेगा । शाबाश वीर...! शाबाश... !!

# श्रीगुरुगीता

॥ ॐ ॥

ॐ अस्य श्रीगुरुगीतास्तोत्रमालामंत्रस्य भगवान सदाशिवः ऋषिः। विराट् छन्दः। श्रीगुरुपरमात्मा देवता। हं बीजम्। सः शक्तिः। सोऽहं कीलकम्। श्रीगुरुकृपाप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥

॥ अथ करन्यासः ॥

ॐ हं सां सूर्यात्मने अंगुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ हं सीं सोमात्मने तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ हं सूं निरंजनात्मने मध्यमाभ्यां नमः।
ॐ हं सैं निराभासात्मने अनामिकाभ्यां नमः।
ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्मात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
ॐ हं सः अव्यक्तात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

॥ इति करन्यासः ॥

॥ अथ हृदयादिन्यासः ॥

ॐ हं सां सूर्यात्मने हृदयाय नमः।
ॐ हं सीं सोमात्मने शिरसे स्वाहा।
ॐ हं सूं निरंजनात्मने शिखायै वषट्।
ॐ हं सैं निराभासात्मने कवचाय हुम्।
ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्मात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ हं सः अव्यक्तात्मने अस्त्राय फट्।

॥ इति हृदयादिन्यासः ॥

॥ अथ ध्यानम् ॥

नमामि सद्गुरुं शांतं प्रत्यक्षं शिवरूपिणम् ।
शिरसा योगपीठस्थं मुक्तिकामार्थसिद्धिदम् ॥१॥
प्रातः शिरसि शुक्लाब्जो द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ।
वराभयकरं शांतं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ॥२॥
प्रसन्नवदनाक्षं च सर्वदेवस्वरूपिणम् ।
तत्पादोदकजा धारा निपतन्ति स्वमूर्धनि ॥३॥
तया संक्षालयेद् देहे ह्यन्तर्बाह्यगतं मलम् ।
तत्क्षणाद्विरजो भूत्वा जायते स्फटिकोपमः ॥४॥
तीर्थानि दक्षिणे पादे वेदास्तन्मुखरक्षिताः ।
पूजयेदर्चितं तं तु तदमिध्यानपूर्वकम् ॥५॥

॥ इति ध्यानम् ॥

॥ मानसोपचारैः श्रीगुरुं पूजयित्वा ॥

लं पृथिव्यात्मने गंधतन्मात्रा प्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः पृथिव्यात्मकं गंधं समर्पयामि ॥ हं आकाशात्मने शब्दतन्मात्राप्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि ॥ यं वाय्वात्मने स्पर्शतन्मात्राप्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः वाय्वात्मकं धूपं आघ्रापयामि ॥ रं तेजात्मने रूपतन्मात्राप्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः तेजात्मकं दीपं दर्शयामि ॥ वं अपात्मने रसतन्मात्राप्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः अपात्मकं नैवेद्यकं निवेदयामि ॥ सं सर्वात्मने सर्वतन्मात्राप्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः सर्वात्मकान् सर्वोपचारान् समर्पयामि ॥

॥ इति मानसपूजा ॥

# श्रीगुरुगीता

## ।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्त जगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ।।१।।

## पहला अध्याय

जो ब्रह्म अचिन्त्य, अव्यक्त, तीनों गुणों से रहित (फिर भी देखनेवालों के अज्ञान की उपाधि से) त्रिगुणात्मक और समस्त जगत का अधिष्ठानरूप है ऐसे ब्रह्म को नमस्कार हो। (१)

ऋषयः ऊचुः

सूत सूत महाप्राज्ञ निगमागमपारग ।
गुरुस्वरूपमस्माकं ब्रूहि सर्वमलापहम् ।।२।।

ऋषियों ने कहा : हे महाज्ञानी, हे वेद-वेदांगों के निष्णात ! प्यारे सूतजी ! सर्व पापों का नाश करनेवाले गुरु का स्वरूप हमें सुनाओ। (२)

यस्य श्रवणमात्रेण देही दुःखाद्विमुच्यते ।
येन मार्गेण मुनयः सर्वज्ञत्वं प्रपेदिरे ।।३।।
यत्प्राप्य न पुनर्याति नरः संसारबन्धनम् ।
तथाविधं परं तत्त्वं वक्तव्यमधुना त्वया ।।४।।

जिसको सुनने मात्र से मनुष्य दुःख से विमुक्त हो जाता है, जिस उपाय से मुनियों ने सर्वज्ञता प्राप्त की है, जिसको प्राप्त करके मनुष्य फिर से संसार-बंधन में बँधता नहीं है ऐसे परम तत्त्व का कथन आप करें। (३, ४)

गुह्याद्गुह्यतमं सारं गुरुगीता विशेषतः ।
त्वत्प्रसादाच्च श्रोतव्या तत्सर्वं ब्रूहि सूत नः ।।५।।

जो तत्त्व परम रहस्यमय एवं श्रेष्ठ सारभूत है और विशेष कर जो गुरुगीता है वह आपकी कृपा से हम सुनना चाहते हैं। प्यारे सूतजी ! वे सब हमें सुनाइये। (५)

**इति संप्रार्थितः सूतो मुनिसंघैर्मुहुर्मुहुः ।**
**कुतूहलेन महता प्रोवाच मधुरं वचः ॥६॥**

इस प्रकार बार-बार प्रार्थना किये जाने पर सूतजी बहुत प्रसन्न होकर मुनियों के समूह से मधुर वचन बोले। (६)

सूत उवाच

**शृणुध्वं मुनयः सर्वे श्रद्धया परया मुदा ।**
**वदामि भवरोगघ्नीं गीतां मातृस्वरूपिणीम् ॥७॥**

सूतजी ने कहा : हे सर्व मुनियों ! संसाररूपी रोग का नाश करनेवाली, मातृस्वरूपिणी (माता के समान ध्यान रखनेवाली) गुरुगीता कहता हूँ। उसको आप अत्यंत श्रद्धा और प्रसन्नता से सुनिये। (७)

**पुरा कैलासशिखरे सिद्धगन्धर्वसेविते ।**
**तत्र कल्पलतापुष्पमन्दिरेऽत्यन्तसुन्दरे ॥८॥**
**व्याघ्राजिने समासिनं शुकादिमुनिवन्दितम् ।**
**बोधयन्तं परं तत्त्वं मध्येमुनिगणं क्वचित् ॥९॥**
**प्रणम्रवदना शश्वन्नमस्कुर्वन्तमादरात् ।**
**दृष्ट्वा विस्मयमापन्ना पार्वती परिपृच्छति ॥१०॥**

प्राचीन काल में सिद्धों और गन्धर्वों के आवासरूप कैलास पर्वत के शिखर पर कल्पवृक्ष के फूलों से बने हुए अत्यंत सुन्दर मंदिर में, मुनियों के बीच व्याघ्रचर्म पर बैठे हुए, शुक आदि मुनियों द्वारा वन्दन किये जानेवाले और परम तत्त्व का बोध देते हुए भगवान शंकर को बार-बार नमस्कार करते देखकर, अतिशय नम्र मुखवाली पार्वती ने आश्चर्यचकित होकर पूछा। (८, ९, १०)

पार्वत्युवाच

**ॐ नमो देव देवेश परात्पर जगद्गुरो ।**
**त्वां नमस्कुर्वते भक्त्या सुरासुरनराः सदा ॥११॥**

पार्वती ने कहा : हे ॐकार के अर्थस्वरूप, देवों के देव, श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ, हे जगद्गुरो ! आपको प्रणाम हो। देव, दानव और

मानव सब आपको सदा भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं। (११)

**विधिविष्णुमहेन्द्राद्यैर्वन्द्यः खलु सदा भवान।**
**नमस्करोषि कस्मै त्वं नमस्काराश्रयः किल ॥१२॥**

आप ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि के नमस्कार के योग्य हैं। ऐसे नमस्कार के आश्रयरूप होने पर भी आप किसको नमस्कार करते हैं? (१२)

**भगवन् सर्वधर्मज्ञ व्रतानां व्रतनायकम्।**
**ब्रूहि मे कृपया शम्भो गुरुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥१३॥**

हे भगवान! हे सर्व धर्मों के ज्ञाता! हे शंभो! जो व्रत सब व्रतों में श्रेष्ठ है ऐसा उत्तम गुरु-माहात्म्य कृपा करके मुझे कहें।

**इति संप्रार्थितः शश्वन्महादेवो महेश्वरः।**
**आनंदभरितः स्वान्ते पार्वतीमिदमब्रवीत् ॥१४॥**

इस प्रकार (पार्वतीदेवी द्वारा) बार-बार प्रार्थना किये जाने पर महादेव महेश्वर ने अंतर में खूब प्रसन्न होते हुए पार्वती से इस प्रकार कहा। (१४)

**श्रीमहादेव उवाच**

**न वक्तव्यमिदं देवि रहस्यातिरहस्यकम्।**
**न कस्यापि पुरा प्रोक्तं त्वद्भक्त्यर्थं वदामि तत् ॥१५॥**

श्री महादेवजी ने कहा : हे देवी! यह तत्त्व रहस्यों का भी रहस्य है इसलिए कहना उचित नहीं। पहले किसीसे भी नहीं कहा। फिर भी तुम्हारी भक्ति देखकर वह रहस्य कहता हूँ।

**मम रूपासि देवि त्वमतस्तत्कथयामि ते।**
**लोकोपकारकः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा ॥१६॥**

हे देवी! तुम मेरा ही स्वरूप हो इसलिए (यह रहस्य) तुमको कहता हूँ। तुम्हारा यह प्रश्न लोक का कल्याणकारक है। ऐसा प्रश्न पहले कभी किसीने नहीं किया। (१६)

**यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।**
**तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥१७॥**

जिसको ईश्वर में उत्तम भक्ति होती है, जैसी ईश्वर में वैसी ही भक्ति जिसको गुरु में होती है ऐसे महात्माओं को ही यहाँ कही हुई बात समझ में आयेगी। (१७)

**यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुस्मृतः।**
**विकल्पं यस्तु कुर्वीत स नरो गुरुतल्पगः ॥१८॥**

जो गुरु हैं वे ही शिव हैं, जो शिव हैं वे ही गुरु हैं। दोनों में जो अन्तर मानता है वह गुरुपत्नीगमन करनेवाले के समान पापी है।

**वेदशास्त्रपुराणानि चेतिहासादिकानि च।**
**मंत्रयंत्रविद्यादिनि मोहनोच्चाटनादिकम् ॥१९॥**
**शैवशाक्तागमादिनि ह्यन्ये च बहवो मताः।**
**अपभ्रंशाः समस्तानां जीवानां भ्रान्तचेतसाम् ॥२०॥**
**जपस्तपोव्रतं तीर्थं यज्ञो दानं तथैव च।**
**गुरुतत्त्वमविज्ञाय सर्वं व्यर्थं भवेत्प्रिये ॥२१॥**

हे प्रिये ! वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि, मंत्र, यंत्र, मोहन, उच्चाटन आदि विद्या, शैव, शाक्त, आगम और अन्य सर्व मतमतांतर, ये सब बातें गुरुतत्त्व को जाने बिना भ्रांत चित्तवाले जीवों को पथभ्रष्ट करनेवाली हैं और जप, तप, व्रत, तीर्थ, यज्ञ, दान, ये सब व्यर्थ हो जाते हैं। (१९, २०, २१)

**गुरुबुद्ध्यात्मनो नान्यत् सत्यं सत्यं वरानने।**
**तल्लाभार्थं प्रयत्नस्तु कर्तव्यश्च मनीषिभिः ॥२२॥**

हे सुमुखी ! आत्मा में गुरुबुद्धि के सिवा अन्य कुछ भी सत्य नहीं है, सत्य नहीं है। इसलिए इस आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए बुद्धिमानों को प्रयत्न करना चाहिए। (२२)

**गूढाविद्या जगन्माया देहश्चाज्ञानसम्भवः।**
**विज्ञानं यत्प्रसादेन गुरुशब्देन कथ्यते ॥२३॥**

जगत गूढ़ अविद्यात्मक मायारूप है और शरीर अज्ञान से उत्पन्न हुआ है। इनका विश्लेषणात्मक ज्ञान जिनकी कृपा से होता है उस ज्ञान को गुरु कहते हैं। (२३)

**देही ब्रह्म भवेद्यस्मात् त्वत्कृपार्थं वदामि तत् ।**
**सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात् ॥२४॥**

जिस गुरुदेव के पादसेवन से मनुष्य सर्व पापों से विशुद्धात्मा होकर ब्रह्मरूप हो जाता है वह तुम पर कृपा करने के लिए कहता हूँ।

**शोषणं पापपंकस्य दीपनं ज्ञानतेजसः ।**
**गुरोः पादोदकं सम्यक् संसारार्णवतारकम् ॥२५॥**

श्री गुरुदेव का चरणामृत पापरूप कीचड़ का सम्यक् शोषक है, ज्ञानतेज का सम्यक् उद्दीपक है और संसारसागर का सम्यक् तारक है। (२५)

**अज्ञानमूलहरणं जन्मकर्मनिवारकम् ।**
**ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं गुरुपादोदकं पिबेत् ॥२६॥**

अज्ञान की जड़ को उखाड़नेवाले, अनेक जन्मों के कर्मों को निवारनेवाले, ज्ञान और वैराग्य को सिद्ध करनेवाले श्रीगुरुदेव के चरणामृत का पान करना चाहिए। (२६)

**स्वदेशिकस्यैव च नामकीर्तनम्**
**भवेदनन्तस्यशिवस्य कीर्तनम् ।**
**स्वदेशिकस्यैव च नामचिन्तनम्**
**भवेदनन्तस्य शिवस्य चिन्तनम् ॥२७॥**

अपने गुरुदेव के नाम का कीर्तन अनंतस्वरूप भगवान शिव का ही कीर्तन है। अपने गुरुदेव के नाम का चिंतन अनंतस्वरूप भगवान शिव का ही चिंतन है। (२७)

**काशीक्षेत्रं निवासश्च जाह्नवी चरणोदकम् ।**
**गुरुर्विश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्मनिश्चयः ॥२८॥**

गुरुदेव का निवासस्थान काशी क्षेत्र है। श्री गुरुदेव का पादोदक गंगाजी है। गुरुदेव भगवान विश्वनाथ और निश्चित ही साक्षात् तारक ब्रह्म हैं। (२८)

**गुरुसेवा गया प्रोक्ता देहः स्यादक्षयो वटः ।**
**तत्पादं विष्णुपादं स्यात् तत्र दत्तमनस्ततम् ॥२९॥**

गुरुदेव की सेवा ही तीर्थराज गया है। गुरुदेव का शरीर अक्षय वटवृक्ष है। गुरुदेव के श्रीचरण भगवान विष्णु के श्रीचरण हैं। वहाँ लगाया हुआ मन तदाकार हो जाता है। (२९)

**गुरुवक्त्रे स्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादत:।**
**गुरोर्ध्यानं सदा कुर्यात् पुरुषं स्वैरिणी यथा ॥३०॥**

ब्रह्म श्रीगुरुदेव के मुखारविन्द (वचनामृत) में स्थित है। वह ब्रह्म उनकी कृपा से प्राप्त हो जाता है। इसलिए जिस प्रकार स्वेच्छाचारी स्त्री अपने प्रेमी पुरुष का सदा चिंतन करती है उसी प्रकार सदा गुरुदेव का ध्यान करना चाहिए। (३०)

**स्वाश्रमं च स्वजातिं च स्वकीर्तिं पुष्टिवर्धनम्।**
**एतत्सर्वं परित्यज्य गुरुमेव समाश्रयेत् ॥३१॥**

अपने आश्रम (ब्रह्मचर्याश्रमादि), जाति, कीर्ति (पद-प्रतिष्ठा), पालन-पोषण, ये सब छोड़कर गुरुदेव का ही सम्यक् आश्रय लेना चाहिए। (३१)

**गुरुवक्त्रे स्थिता विद्या गुरुभक्त्या च लभ्यते।**
**त्रैलोक्ये स्फुटवक्तारो देवर्षिपितृमानवा: ॥३२॥**

विद्या गुरुदेव के मुख में रहती है और वह गुरुदेव की भक्ति से ही प्राप्त होती है। यह बात तीनों लोकों में देव, ऋषि, पितृ और मानवों द्वारा स्पष्ट रूप से कही गयी है। (३२)

**गुकारश्चान्धकारो हि रुकारस्तेज उच्यते।**
**अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशय: ॥३३॥**

'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार (अज्ञान) और 'रु' शब्द का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान)। अज्ञान को नष्ट करनेवाला जो ब्रह्मरूप प्रकाश है वह गुरु है। इसमें कोई संशय नहीं है। (३३)

**गुकारश्चान्धकारस्तु रुकारस्तन्निरोधकृत्।**
**अन्धकारविनाशित्वात् गुरुरित्यभिधीयते ॥३४॥**

'गु' कार अंधकार है और उसको दूर करनेवाला 'रु' कार है। अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने के कारण ही 'गुरु' कहलाते हैं।

**गुकारश्च गुणातीतो रूपातीतो रुकारकः ।**
**गुणरूपविहीनत्वात् गुरुरित्यभिधीयते ॥३५॥**

'गु' कार से गुणातीत कहा जाता है, 'रु' कार से रूपातीत कहा जाता है। गुण और रूप से पर होने के कारण ही 'गुरु' कहलाते हैं। (३५)

**गुकारः प्रथमो वर्णो मायादि गुणभासकः ।**
**रुकारोऽस्ति परं ब्रह्म मायाभ्रान्तिविमोचकम् ॥३६॥**

('गुरु' शब्द का) प्रथम अक्षर 'गु' कार माया आदि गुणों का प्रकाशक है और दूसरा अक्षर 'रु' कार माया की भ्रांति से मुक्ति देनेवाला परब्रह्म है। (३६)

**सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदांबुजम् ।**
**वेदान्तार्थप्रवक्तारं तस्मात्संपूजयेद् गुरुम् ॥३७॥**

गुरु सर्व श्रुतिरूप श्रेष्ठ रत्नों से सुशोभित चरणकमलवाले हैं और वेदान्त के अर्थों के प्रवक्ता हैं। इसलिए श्री गुरुदेव की पूजा करनी चाहिए। (३७)

**यस्य स्मरणमात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ।**
**सः एव सर्वसम्पत्तिः तस्मात्संपूजयेद् गुरुम् ॥३८॥**

जिनके स्मरण मात्र से ज्ञान अपने आप प्रकट होने लगता है वे ही सर्व (शमदमादि) सम्पदारूप हैं। अतः श्री गुरुदेव की पूजा करनी चाहिए। (३८)

**संसारवृक्षमारूढाः पतन्ति नरकार्णवे ।**
**यस्तानुद्धरते सर्वान् तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३९॥**

संसाररूपी वृक्ष पर चढ़े हुए लोग नरकरूपी सागर में गिरते हैं। उन सबका उद्धार करनेवाले श्री गुरुदेव को नमस्कार हो। (३९)

**एक एव परो बन्धुर्विषमे समुपस्थिते ।**
**गुरुः सकलधर्मात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४०॥**

जब विकट परिस्थिति उपस्थित होती है तब वे ही एकमात्र

परम बांधव हैं और सब धर्मों के आत्मस्वरूप हैं। ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार हो। (४०)

**भवारण्यप्रविष्टस्य दिङ्मोहभ्रान्तचेतस:।**
**येन सन्दर्शित: पन्था: तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥४१॥**

संसाररूपी अरण्य में प्रवेश करने के बाद दिग्मूढ़ की स्थिति में (जब कोई मार्ग नहीं दिखायी देता है), चित्त भ्रमित हो जाता है, उस समय जिसने मार्ग दिखाया उन श्री गुरुदेव को नमस्कार हो।

**तापत्रयाग्नितप्तानां अशांतप्राणीनां भुवि।**
**गुरुरेव परा गंगा तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥४२॥**

इस पृथ्वी पर त्रिविध ताप (आधि-व्याधि-उपाधि) रूपी अग्नि से जलने के कारण अशांत हुए प्राणियों के लिए गुरुदेव ही एकमात्र उत्तम गंगाजी हैं। ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार हो। (४२)

**सप्तसागरपर्यन्तं तीर्थस्नानफलं तु यत्।**
**गुरुपादपयोबिन्दो: सहस्रांशेन तत्फलम् ॥४३॥**

सात समुद्र पर्यन्त के सर्व तीर्थों में स्नान करने से जितना फल मिलता है वह फल श्री गुरुदेव के चरणामृत के एक बिन्दु के फल का हजारवाँ हिस्सा है। (४३)

**शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।**
**लब्ध्वा कुलगुरुं सम्यग्गुरुमेव समाश्रयेत् ॥४४॥**

यदि शिवजी नाराज हो जायें तो गुरुदेव बचानेवाले हैं, किन्तु गुरुदेव नाराज हो जायें तो बचानेवाला कोई नहीं। अत: गुरुदेव को संप्राप्त करके सदा उनकी शरण में रहना चाहिए।

**गुकारं च गुणातीतं रुकारं रूपवर्जितम्।**
**गुणातीतमरूपं च यो दद्यात् स गुरु: स्मृत: ॥४५॥**

'गुरु' शब्द का 'गु' अक्षर गुणातीत अर्थ का बोधक है और 'रु' अक्षर रूपरहित स्थिति का बोधक है। ये दोनों (गुणातीत और रूपातीत) स्थितियाँ जो देते हैं उनको गुरु कहते हैं। (४५)

**अत्रिनेत्रः शिवः साक्षात् द्विबाहुश्च हरिः स्मृतः।**
**योऽचतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरुः कथितः प्रिये ॥४६॥**

हे प्रिये ! गुरु ही त्रिनेत्ररहित (दो नेत्रवाले) साक्षात् शिव हैं, दो हाथवाले भगवान विष्णु हैं और एक मुखवाले ब्रह्माजी हैं। (४६)

**देवकिन्नरगन्धर्वाः पितृयक्षास्तु तुम्बुरुः।**
**मुनयोऽपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणे विधिम् ॥४७॥**

देव, किन्नर, गंधर्व, पितृ, यक्ष, तुम्बुरु (गंधर्व का एक प्रकार) और मुनि लोग भी गुरुसेवा की विधि नहीं जानते। (४७)

**तार्किकाश्छान्दसाश्चैव देवज्ञाः कर्मठाः प्रिये।**
**लौकिकास्ते न जानन्ति गुरुतत्त्वं निराकुलम् ॥४८॥**

हे प्रिये ! तार्किक, वैदिक, ज्योतिषी, कर्मकांडी तथा लौकिकजन निर्मल गुरुतत्त्व को नहीं जानते। (४८)

**महाहंकारगर्वेण तपोविद्याबलेन च।**
**भ्रमन्त्येतस्मिन् संसारे घटीयंत्रं तथा पुनः ॥४९॥**

तप और विद्या के बल के कारण से और महा अहंकार के कारण से जीव इस संसार में रहट की तरह बार-बार भटकता है। (४९)

**यज्ञिनोऽपि न मुक्ताः स्युः न मुक्ताः योगिनस्तथा।**
**तापसा अपि नो मुक्ता गुरुतत्त्वात्पराङ्मुखाः ॥५०॥**

यदि गुरुतत्त्व से पराङ्मुख हो जाय तो याज्ञिक मुक्ति नहीं पा सकते, योगी मुक्त नहीं हो सकते और तपस्वी भी मुक्त नहीं हो सकते। (५०)

**न मुक्तास्तु गन्धर्वाः पितृयक्षास्तु चारणाः।**
**ऋषयः सिद्धदेवाद्याः गुरुसेवापराङ्मुखाः ॥५१॥**

गुरु की सेवा से विमुख गंधर्व, पितृ, यक्ष, चारण, ऋषि, सिद्ध और देवता आदि भी मुक्त नहीं होंगे। (५१)

इति श्री स्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे
श्रीगुरुगीतायां प्रथमोऽध्यायः ॥

## ॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

**ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं**
**द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।**
**एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्**
**भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥५२॥**

## दूसरा अध्याय

जो ब्रह्मानंदस्वरूप हैं, परम सुख देनेवाले हैं, जो केवल ज्ञानस्वरूप हैं, (सुख-दुःख, शीत-उष्ण आदि) द्वन्द्वों से रहित हैं, आकाश के समान सूक्ष्म और सर्वव्यापक हैं, तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के लक्ष्यार्थ हैं, एक हैं, नित्य हैं, मलरहित हैं, अचल हैं, सर्व बुद्धियों के साक्षी हैं, भावना से परे हैं, सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से रहित हैं ऐसे श्री सद्गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

**गुरूपदिष्टमार्गेण मनः शुद्धिं तु कारयेत् ।**
**अनित्यं खण्डयेत्सर्वं यत्किंचिदात्मगोचरम् ॥५३॥**

श्री गुरुदेव के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से मन की शुद्धि करनी चाहिए। जो कुछ भी अनित्य वस्तु अपनी इन्द्रियों की विषय हो जायें उनका खण्डन (निराकरण) करना चाहिए। (५३)

**किमत्र बहुनोक्तेन शास्त्रकोटिशतैरपि ।**
**दुर्लभा चित्तविश्रान्तिः विना गुरुकृपां पराम् ॥५४॥**

यहाँ ज्यादा कहने से क्या लाभ ? श्री गुरुदेव की परम कृपा के बिना करोड़ों शास्त्रों से भी चित्त की विश्रांति दुर्लभ है। (५४)

**करुणाखड्गपातेन छित्त्वा पाशाष्टकं शिशोः ।**
**सम्यगानन्दजनकः सद्गुरु सोऽभिधीयते ॥५५॥**
**एवं श्रुत्वा महादेवि गुरुनिन्दां करोति यः ।**
**स याति नरकान् घोरान् यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५६॥**

करुणारूपी तलवार के प्रहार से शिष्य के आठों पाशों (संशय, दया, भय, संकोच, निन्दा, प्रतिष्ठा, कुलाभिमान और संपत्ति) को काटकर निर्मल आनंद देनेवाले को सद्गुरु कहते हैं। ऐसा सुनने पर भी जो मनुष्य गुरुनिन्दा करता है, वह (मनुष्य) जब तक सूर्यचन्द्र

का अस्तित्व रहता है तब तक घोर नरक में रहता है। (५५, ५६)

**यावत्कल्पान्तको देहस्तावद्देवि गुरुं स्मरेत्।**
**गुरुलोपो न कर्त्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत् ॥५७॥**

हे देवी ! देह कल्प के अन्त तक रहे तब तक श्री गुरुदेव का स्मरण करना चाहिए और आत्मज्ञानी होने के बाद भी (स्वच्छन्द अर्थात् स्वरूप का छंद मिलने पर भी) शिष्य को गुरुदेव की शरण नहीं छोड़नी चाहिए। (५७)

**हुंकारेण न वक्तव्यं प्राज्ञशिष्यैः कदाचन।**
**गुरोरग्रे न वक्तव्यमसत्यं तु कदाचन ॥५८॥**

श्री गुरुदेव के समक्ष प्रज्ञावान शिष्य को कभी हुँकार शब्द से (मैंने ऐसा किया... वैसा किया) नहीं बोलना चाहिए और कभी असत्य नहीं बोलना चाहिए। (५८)

**गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य गुरुसान्निध्यभाषणः।**
**अरण्ये निर्जले देशे संभवेद् ब्रह्मराक्षसः ॥५९॥**

गुरुदेव के समक्ष जो हुँकार शब्द से बोलता है अथवा गुरुदेव को 'तू' कहकर जो बोलता है वह निर्जन मरुभूमि में ब्रह्मराक्षस होता है। (५९)

**अद्वैतं भावयेन्नित्यं सर्वावस्थासु सर्वदा।**
**कदाचिदपि नो कुर्याद्द्वैतं गुरुसन्निधौ ॥६०॥**

सदा और सर्व अवस्थाओं में अद्वैत की भावना करनी चाहिए परंतु गुरुदेव के साथ अद्वैत की भावना कदापि नहीं करनी चाहिए।

**दृश्यविस्मृतिपर्यन्तं कुर्याद् गुरुपदार्चनम्।**
**तादृशस्यैव कैवल्यं न च तद्व्यतिरेकिणः ॥६१॥**

जब तक दृश्यप्रपंच की विस्मृति न हो जाय तब तक गुरुदेव के पावन चरणारविन्द की पूजा-अर्चना करनी चाहिए। ऐसा करनेवाले को ही कैवल्यपद की प्राप्ति होती है, इससे विपरीत करनेवाले को नहीं होती। (६१)

अपि संपूर्णतत्त्वज्ञो गुरुत्यागी भवेद्यदा।
भवत्येव हि तस्यान्तकाले विक्षेपमुत्कटम् ॥६२॥

संपूर्ण तत्त्वज्ञ भी यदि गुरु का त्याग कर दे तो मृत्यु के समय उसे महान विक्षेप अवश्य हो जाता है। (६२)

गुरौ सति स्वयं देवि परेषां तु कदाचन।
उपदेशं न वै कुर्यात् तदा चेद्राक्षसो भवेत् ॥६३॥

हे देवी ! गुरु के रहने पर अपने आप कभी किसीको उपदेश नहीं देना चाहिए। इस प्रकार उपदेश देनेवाला ब्रह्मराक्षस होता है।

न गुरोराश्रमे कुर्यात् दुष्पानं परिसर्पणम्।
दीक्षा व्याख्या प्रभुत्वादि गुरोराज्ञां न कारयेत् ॥६४॥

गुरु के आश्रम में नशा नहीं करना चाहिए, टहलना नहीं चाहिए। दीक्षा देना, व्याख्यान करना, प्रभुत्व दिखाना और गुरु को आज्ञा करना, ये सब निषिद्ध हैं। (६४)

नोपाश्रमं च पर्यंकं न च पादप्रसारणम्।
नांगभोगादिकं कुर्यान्न लीलामपरामपि ॥६५॥

गुरु के आश्रम में अपना छप्पर और पलंग नहीं बनाना चाहिए, (गुरुदेव के सम्मुख) पैर नहीं पसारना, शरीर के भोग नहीं भोगने चाहिए और अन्य लीलाएँ नहीं करनी चाहिए। (६५)

गुरूणां सदसद्वापि यदुक्तं तन्न लंघयेत्।
कुर्वन्नाज्ञां दिवारात्रौ दासवन्निवसेद् गुरौ ॥६६॥

गुरुओं की बात सच्ची हो या झूठी, परंतु उसका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिए। रात और दिन गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते हुए उनके सान्निध्य में दास बनकर रहना चाहिए। (६६)

अदत्तं न गुरोर्द्रव्यमुपभुंजीत कर्हिचित्।
दत्तं च रंकवद् ग्राह्यं प्राणोऽप्येतेन लभ्यते ॥६७॥

जो द्रव्य गुरुदेव ने नहीं दिया हो उसका उपयोग कहीं भी नहीं करना चाहिए। गुरुदेव के दिये हुए द्रव्य को भी गरीब की तरह ग्रहण करना चाहिए। उससे प्राण भी प्राप्त हो सकते हैं। (६७)

**पादुकासनशय्यादि गुरुणा यदभिष्टितम् ।**
**नमस्कुर्वीत तत्सर्वं पादाभ्यां न स्पृशेत् क्वचित् ॥६८॥**

पादुका, आसन, बिस्तर आदि जो कुछ भी गुरुदेव के उपयोग में आते हों उन सर्व को नमस्कार करना चाहिए और उनको पैर से कभी भी नहीं छूना चाहिए। (६८)

**गच्छतः पृष्ठतो गच्छेत् गुरुच्छायां न लंघयेत्।**
**नोल्बणं धारयेद्वेषं नालंकारांस्ततोल्बणान् ॥६९॥**

चलते हुए गुरुदेव के पीछे चलना चाहिए, उनकी परछाईं का भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए। गुरुदेव के समक्ष कीमती वेशभूषा, आभूषण आदि धारण नहीं करने चाहिए। (६९)

**गुरुनिन्दाकरं दृष्ट्वा धावयेदथ वासयेत्।**
**स्थानं वा तत्परित्याज्यं जिह्वाच्छेदाक्षमो यदि ॥७०॥**

गुरुदेव की निन्दा करनेवाले को देखकर यदि उसकी जिह्वा काट डालने में समर्थ न हो तो उसे अपने स्थान से भगा देना चाहिए। वह यदि ठहरे तो स्वयं उस स्थान का त्याग करना चाहिए। (७०)

**मुनिभिः पन्नगैर्वापि सुरैर्वा शापितो यदि।**
**कालमृत्युभयाद्वापि गुरुः संत्राति पार्वति ॥७१॥**

हे पार्वती ! मुनियों, पन्नगों और देवताओं के शाप से तथा यथाकाल आये हुए मृत्यु के भय से भी शिष्य को गुरुदेव बचा सकते हैं।

**विजानन्ति महावाक्यं गुरोश्चरणसेवया।**
**ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः ॥७२॥**

गुरुदेव के श्रीचरणों की सेवा करके महावाक्य के अर्थ को जो समझते हैं वे ही सच्चे संन्यासी हैं, अन्य तो मात्र वेशधारी हैं।

**नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत् परम्।**
**भासयन् ब्रह्मभावं च दीपो दीपान्तरं यथा ॥७३॥**

गुरु वे हैं जो नित्य, निर्गुण, निराकार, परम ब्रह्म का बोध देते हुए, जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को प्रज्वलित करता है वैसे, शिष्य में ब्रह्मभाव प्रकटाते हैं। (७३)

**गुरुप्रसादत: स्वात्मन्यात्मारामनिरीक्षणात् ।**
**समता मुक्तिमार्गेण स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते ॥७४॥**

श्री गुरुदेव की कृपा से अपने भीतर ही आत्मानंद प्राप्त करके समता और मुक्ति के मार्ग द्वारा शिष्य आत्मज्ञान को उपलब्ध होता है। (७४)

**स्फटिके स्फाटिकं रूपं दर्पणे दर्पणो यथा।**
**तथात्मनि चिदाकारमानन्दं सोऽहमित्युत ॥७५॥**

जैसे स्फटिक मणि में स्फटिक मणि तथा दर्पण में दर्पण दिख सकता है उसी प्रकार आत्मा में जो चित् और आनंदमय दिखायी देता है वह मैं हूँ। (७५)

**अंगुष्ठमात्रं पुरुषं ध्यायेच्च चिन्मयं हृदि ।**
**तत्र स्फुरति यो भाव: शृणु तत्कथयामि ते ॥७६॥**

हृदय में अंगुष्ठ मात्र परिमाणवाले चैतन्य पुरुष का ध्यान करना चाहिए। वहाँ जो भाव स्फुरित होता है वह मैं तुम्हें कहता हूँ, सुनो। (७६)

**अजोऽहममरोऽहं च ह्यनादिनिधनोह्यहम् ।**
**अविकारश्चिदानन्दो ह्यणीयान् महतो महान ॥७७॥**

मैं अजन्मा हूँ, मैं अमर हूँ, मेरा आदि नहीं है, मेरी मृत्यु नहीं है। मैं निर्विकार हूँ, मैं चिदानन्द हूँ। मैं अणु से भी छोटा हूँ और महान से भी महान हूँ। (७७)

**अपूर्वमपरं नित्यं स्वयं ज्योतिर्निरामयम् ।**
**विरजं परमाकाशं ध्रुवमानन्दमव्ययम् ॥७८॥**
**अगोचरं तथाऽगम्यं नामरूपविवर्जितम् ।**
**नि:शब्दं तु विजानीयात्स्वभावाद् ब्रह्म पार्वति ॥७९॥**

हे पार्वती ! ब्रह्म को स्वभाव से ही अपूर्व (जिससे पूर्व कोई नहीं है ऐसा), अद्वितीय, नित्य, ज्योतिस्वरूप, निरोग, निर्मल, परम आकाशस्वरूप, अचल, आनन्दस्वरूप, अविनाशी, अगम्य, अगोचर, नाम-रूप से रहित तथा नि:शब्द जानना चाहिए।

**यथा गन्धस्वभावत्वं कर्पूरकुसुमादिषु ।**
**शीतोष्णत्वस्वभावत्वं तथा ब्रह्मणि शाश्वतम् ॥८०॥**

जिस प्रकार कपूर, फूल इत्यादि में गंधत्व, (अग्नि में) उष्णता और (जल में) शीतलता स्वभाव से ही होते हैं उसी प्रकार ब्रह्म में शाश्वतता भी स्वभावसिद्ध है। (८०)

**यथा निजस्वभावेन कुंडलकटकादयः ।**
**सुवर्णत्वेन तिष्ठन्ति तथाऽहं ब्रह्म शाश्वतम् ॥८१॥**

जिस प्रकार कटक, कुण्डल आदि आभूषण स्वभाव से ही सुवर्ण हैं उसी प्रकार मैं स्वभाव से ही शाश्वत ब्रह्म हूँ। (८१)

**स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्रकुत्रचित् ।**
**कीटो भृंग इव ध्यानात् यथा भवति तादृशः ॥८२॥**

स्वयं वैसा होकर किसी-न-किसी स्थान में रहना। जैसे कीड़ा भ्रमर का चिन्तन करते-करते भ्रमर हो जाता है वैसे ही जीव ब्रह्म का ध्यान करते-करते ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। (८२)

**गुरोर्ध्यानेनैव नित्यं देही ब्रह्ममयो भवेत् ।**
**स्थितश्च यत्रकुत्रापि मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ॥८३॥**

सदा गुरुदेव का ध्यान करने से ही जीव ब्रह्ममय हो जाता है। वह किसी भी स्थान में रहता हो फिर भी मुक्त ही है। इसमें कोई संशय नहीं है। (८३)

**ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं यशः श्रीः समुदाहृतम् ।**
**षड्गुणैश्वर्ययुक्तो हि भगवान श्रीगुरुः प्रिये ॥८४॥**

हे प्रिये ! भगवत्स्वरूप श्री गुरुदेव ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, यश, लक्ष्मी और मधुरवाणी, ये छः गुणरूप ऐश्वर्य से संपन्न होते हैं।

**गुरुः शिवो गुरुर्देवो गुरुर्बन्धुः शरीरिणाम् ।**
**गुरुरात्मा गुरुर्जीवो गुरोरन्यन्न विद्यते ॥८५॥**

मनुष्यों के लिए गुरु ही शिव हैं, गुरु ही देव हैं, गुरु ही बांधव हैं गुरु ही आत्मा हैं और गुरु ही जीव हैं। (सचमुच) गुरु के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। (८५)

**एकाकी निःस्पृहः शान्तः चिंतासूयादिवर्जितः ।**
**बाल्यभावेन यो भाति ब्रह्मज्ञानी स उच्यते ॥८६॥**

अकेला, कामनारहित, शांत, चिन्तारहित, ईर्ष्यारहित और बालक की तरह जो शोभता है वह ब्रह्मज्ञानी कहलाता है। (८६)

**न सुखं वेदशास्त्रेषु न सुखं मंत्रयंत्रके ।**
**गुरोः प्रसादादन्यत्र सुखं नास्ति महीतले ॥८७॥**

वेदों और शास्त्रों में सुख नहीं है, मंत्र और यंत्र में सुख नहीं है। इस पृथ्वी पर गुरुदेव के कृपाप्रसाद के सिवा अन्यत्र कहीं भी सुख नहीं है। (८७)

**चार्वाकवैष्णवमते सुखं प्राभाकरे न हि ।**
**गुरोः पादान्तिके यद्वत्सुखं वेदान्तसम्मतम् ॥८८॥**

गुरुदेव के श्रीचरणों में जो वेदान्तनिर्दिष्ट सुख है वह सुख न चार्वाक मत में, न वैष्णव मत में और न प्राभाकर (सांख्य) मत में है।

**न तत्सुखं सुरेन्द्रस्य न सुखं चक्रवर्तिनाम् ।**
**यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः ॥८९॥**

एकान्तवासी वीतराग मुनि को जो सुख मिलता है वह सुख न इन्द्र को और न चक्रवर्ती राजाओं को मिलता है। (८९)

**नित्यं ब्रह्मरसं पीत्वा तृप्तो यः परमात्मनि ।**
**इन्द्रं च मन्यते रंकं नृपाणां तत्र का कथा ॥९०॥**

हमेशा ब्रह्मरस का पान करके जो परमात्मा में तृप्त हो गया है वह (मुनि) इन्द्र को भी गरीब मानता है तो राजाओं की तो बात ही क्या ? (९०)

**यतः परमकैवल्यं गुरुमार्गेण वै भवेत् ।**
**गुरुभक्तिरतिः कार्या सर्वदा मोक्षकांक्षिभिः ॥९१॥**

मोक्ष की आकांक्षा करनेवालों को गुरुभक्ति खूब करनी चाहिए, क्योंकि गुरुदेव के द्वारा ही परम मोक्ष की प्राप्ति होती है। (९१)

**एक एवाद्वितीयोऽहं गुरुवाक्येन निश्चितः ।**
**एवमभ्यस्यता नित्यं न सेव्यं वै वनान्तरम् ॥९२॥**

**अभ्यासान्निमिषेणैव समाधिमधिगच्छति ।**
**आजन्मजनितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥९३॥**

गुरुदेव के वाक्य की सहायता से जिसने ऐसा निश्चय कर लिया है कि मैं एक और अद्वितीय हूँ और उसी अभ्यास में जो नित्य रत है उसके लिए अन्य वनवास का सेवन आवश्यक नहीं है, क्योंकि अभ्यास से ही एक क्षण में समाधि लग जाती है और उसी क्षण इस जन्म तक के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। (९२, ९३)

**गुरुर्विष्णुः सत्त्वमयो राजसश्चतुराननः ।**
**तामसो रुद्ररूपेण सृजत्यवति हन्ति च ॥९४॥**

गुरुदेव ही सत्त्वगुणी होकर विष्णुरूप से जगत का पालन करते हैं, रजोगुणी होकर ब्रह्मारूप से जगत का सर्जन करते हैं और तमोगुणी होकर शंकररूप से जगत का संहार करते हैं। (९४)

**तस्यावलोकनं प्राप्य सर्वसंगविवर्जितः ।**
**एकाकी निःस्पृहः शांतः स्थातव्यं तत्प्रसादतः ॥९५॥**

उनका (गुरुदेव का) दर्शन पाकर, उनके कृपाप्रसाद से सर्व प्रकार की आसक्ति छोड़कर एकाकी, निःस्पृह और शांत होकर रहना चाहिए। (९५)

**सर्वज्ञपदमित्याहुर्देही सर्वमयो भुवि ।**
**सदाऽनन्दः सदा शांतो रमते यत्रकुत्रचित् ॥९६॥**

जो जीव इस जगत में सर्वमय, आनंदमय और शान्त होकर सर्वत्र विचरता है उस जीव को सर्वज्ञ कहते हैं। (९६)

**यत्रैव तिष्ठते सोऽपि स देशः पुण्यभाजनः ।**
**मुक्तस्य लक्षणं देवि तवाग्रे कथितं मया ॥९७॥**

ऐसा पुरुष जहाँ रहता है वह स्थान पुण्यतीर्थ है। हे देवी ! तुम्हारे समक्ष मैंने मुक्त पुरुष का लक्षण कहा। (९७)

**यद्यप्यधीता निगमाः षडंगा आगमाः प्रिये ।**
**अध्यात्मादिनि शास्त्राणि ज्ञानं नास्ति गुरुं विना ॥९८॥**

हे प्रिये ! मनुष्य चाहे चारों वेद पढ़ ले, वेद के छः अंग पढ़ ले,

अध्यात्मशास्त्र आदि अन्य सर्व शास्त्र पढ़ ले फिर भी गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिलता। (९८)

**शिवपूजारतो वापि विष्णुपूजारतोऽथवा।**
**गुरुतत्त्वविहीनश्चेत्तत्सर्वं व्यर्थमेव हि ॥९९ ॥**

शिवजी की पूजा में रत हो या विष्णु की पूजा में रत हो, परन्तु गुरुतत्त्व के ज्ञान से रहित हो तो वह सब व्यर्थ है। (९९)

**सर्वं स्यात्सफलं कर्म गुरुदीक्षाप्रभावतः।**
**गुरुलाभात्सर्वलाभो गुरुहीनस्तु बालिशः ॥१००॥**

गुरुदेव की दीक्षा के प्रभाव से सब कर्म सफल होते हैं। गुरुदेव की संप्राप्ति रूपी परम लाभ से अन्य सर्वलाभ मिलते हैं। जिसका गुरु नहीं है वह मूर्ख है। (१००)

**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वसंगविवर्जितः।**
**विहाय शास्त्रजालानि गुरुमेव समाश्रयेत् ॥१०१॥**

इसलिए सब प्रकार के प्रयत्न से अनासक्त होकर, शास्त्र की मायाजाल छोड़कर गुरुदेव की ही शरण लेनी चाहिए। (१०१)

**ज्ञानहीनो गुरुत्याज्यो मिथ्यावादी विडंबकः।**
**स्वविश्रान्तिं न जानाति परशांतिं करोति किम् ॥१०२॥**

ज्ञानरहित, मिथ्या बोलनेवाले और दिखावट करनेवाले गुरु का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि जो अपनी ही शांति पाना नहीं जानता वह दूसरों को क्या शांति दे सकेगा ? (१०२)

**शिलायाः किं परं ज्ञानं शिलासंघप्रतारणे।**
**स्वयं तर्तुं न जानाति परं निस्तारयेत्कथम् ॥१०३॥**

पत्थरों के समूह को तैराने का ज्ञान पत्थर में कहाँ से हो सकता है ? जो खुद तैरना नहीं जानता वह दूसरों को क्या तैरायेगा ? (१०३)

**न वन्दनीयास्ते कष्टं दर्शनाद् भ्रांतिकारकाः।**
**वर्जयेत्तान् गुरून् दूरे धीरानेव समाश्रयेत् ॥१०४॥**

जो गुरु अपने दर्शन से (दिखावे से) शिष्य को भ्रांति में डालता

है ऐसे गुरु को प्रणाम नहीं करना चाहिए। इतना ही नहीं, दूर से ही उसका त्याग करना चाहिए। ऐसी स्थिति में धैर्यवान गुरु का ही आश्रय लेना चाहिए। (१०४)

**पाखण्डिनः पापरता नास्तिका भेदबुद्धयः।**
**स्त्रीलम्पटा दुराचाराः कृतघ्ना बकवृत्तयः ॥१०५॥**
**कर्मभ्रष्टाः क्षमानष्टाः निन्द्यतर्कैश्च वादिनः।**
**कामिनः क्रोधिनश्चैव हिंस्राश्चंडाः शठास्तथा ॥१०६॥**
**ज्ञानलुप्ता न कर्तव्या महापापास्तथा प्रिये।**
**एभ्यो भिन्नो गुरुः सेव्य एकभक्त्या विचार्य च ॥१०७॥**

हे प्रिये ! पाखण्डी, पाप में रत, नास्तिक, भेदबुद्धि उत्पन्न करनेवाले, स्त्रीलम्पट, दुराचारी, नमकहराम, बगुले की तरह ठगनेवाले, कर्मभ्रष्ट, क्षमारहित, निन्दनीय तर्कों से वितंडावाद करनेवाले, कामी, क्रोधी, हिंसक, उग्र, शठ तथा अज्ञानी और महापापी पुरुष को गुरु नहीं करना चाहिए। ऐसा विचार करके ऊपर दिये हुए लक्षणों से भिन्न लक्षणोंवाले गुरु की एकनिष्ठ भक्ति से सेवा करनी चाहिए। (१०५, १०६, १०७)

**सत्यं सत्यं पुनः सत्यं धर्मसारं मयोदितम्।**
**गुरुगीता समं स्तोत्रं नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥१०८॥**

गुरुगीता के समान अन्य कोई स्तोत्र नहीं है। गुरु के समान अन्य कोई तत्त्व नहीं है। समग्र धर्म का यह सार मैंने कहा है, यह सत्य है, सत्य है और बार-बार सत्य है (१०८)

**अनेन यद् भवेद् कार्यं तद्वदामि तव प्रिये।**
**लोकोपकारकं देवि लौकिकं तु विवर्जयेत् ॥१०९॥**

हे प्रिये ! इस गुरुगीता का पाठ करने से जो कार्य सिद्ध होता है वह अब कहता हूँ। हे देवी ! लोगों के लिए यह उपकारक है। मा लौकिक का त्याग करना चाहिए। (१०९)

**लौकिकाद्धर्मतो याति ज्ञानहीनो भवार्णवे।**
**ज्ञानभावे च यत्सर्वं कर्म निष्कर्म शाम्यति ॥११०॥**

जो कोई इसका उपयोग लौकिक कार्य के लिए करेगा वह ज्ञानहीन होकर संसाररूपी सागर में गिरेगा। ज्ञान भाव से जिस किसी कर्म में इसका उपयोग किया जायेगा वह कर्म निष्कर्म में परिणत होकर शांत हो जायेगा। (११०)

**इमां तु भक्तिभावेन पठेद्वै शृणुयादपि।**
**लिखित्वा यत्प्रसादेन तत्सर्वं फलमश्नुते ॥१११॥**

भक्तिभाव से इस गुरुगीता का पाठ करने से, सुनने से और लिखने से वह (भक्त) सब फल भोगता है। (१११)

**गुरुगीतामिमां देवि हृदि नित्यं विभावय।**
**महाव्याधिगतैर्दुःखैः सर्वदा प्रजपेन्मुदा ॥११२॥**

हे देवी ! इस गुरुगीता को नित्य भावपूर्वक हृदय में धारण करो। महाव्याधिवाले दुःखी लोगों को सदा आनंद से इसका जप करना चाहिए। (११२)

**गुरुगीताक्षरैकैकं मंत्रराजमिदं प्रिये।**
**अन्ये च विविधा मंत्राः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥११३॥**

हे प्रिये ! गुरुगीता का एक-एक अक्षर मंत्रराज है। अन्य जो विविध मंत्र हैं वे इसका सोलहवाँ भाग भी नहीं। (११३)

**अनन्तफलमाप्नोति गुरुगीताजपेन तु।**
**सर्वपापहरा देवि सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥११४॥**

हे देवी ! गुरुगीता के जप से अनंत फल मिलता है। गुरुगीता सर्व पाप को हरनेवाली और सर्व दारिद्र्य का नाश करनेवाली है।

**अकालमृत्युहंत्री च सर्वसंकटनाशिनी।**
**यक्षराक्षसभूतादिचोरव्याघ्रविघातिनी ॥११५॥**

गुरुगीता अकाल मृत्यु को रोकती है, सब संकटों का नाश करती है, यक्ष, राक्षस, भूत, चोर और बाघ आदि का घात करती है। (११५)

**सर्वोपद्रवकुष्ठादिदुष्टदोषनिवारिणी।**
**यत्फलं गुरुसान्निध्यात्तत्फलं पठनाद् भवेत् ॥११६॥**

गुरुगीता सब प्रकार के उपद्रवों, कुष्ठ आदि दुष्ट रोगों और दोषों का निवारण करनेवाली है। श्री गुरुदेव के सान्निध्य से जो फल मिलता है वह फल इस गुरुगीता का पाठ करने से मिलता है। (११६)

**महाव्याधिहरा सर्वविभूतेः सिद्धिदा भवेत्।**
**अथवा मोहने वश्ये स्वयमेव जपेत्सदा ॥११७॥**

इस गुरुगीता का पाठ करने से महाव्याधि दूर होती है, सर्व ऐश्वर्य और सिद्धियों की प्राप्ति होती है। मोहन में अथवा वशीकरण में इसका पाठ स्वयं करना चाहिए। (११७)

**मोहनं सर्वभूतानां बन्धमोक्षकरं परम्।**
**देवराज्ञां प्रियकरं राजानं वशमानयेत् ॥११८॥**

इस गुरुगीता का पाठ करनेवाले पर सर्व प्राणी मोहित हो जाते हैं, बन्धन में से परम मुक्ति मिलती है, देवराज इन्द्र को वह प्रिय होता है और राजा उसके वश होता है। (११८)

**मुखस्तम्भकरं चैव गुणानां च विवर्धनम्।**
**दुष्कर्मनाशनं चैव तथा सत्कर्मसिद्धिदम् ॥११९॥**

इस गुरुगीता का पाठ शत्रु का मुख बन्द करनेवाला है, गुणों की वृद्धि करनेवाला है, दुष्कृत्यों का नाश करनेवाला और सत्कर्म में सिद्धि देनेवाला है। (११९)

**असिद्धं साधयेत्कार्यं नवग्रहभयापहम्।**
**दुःस्वप्ननाशनं चैव सुस्वप्नफलदायकम् ॥१२०॥**

इसका पाठ असाध्य कार्यों की सिद्धि कराता है, नव ग्रहों का भय हरता है, दुःस्वप्न का नाश करता है और सुस्वप्न के फल की प्राप्ति कराता है। (१२०)

**मोहशांतिकरं चैव बन्धमोक्षकरं परम्।**
**स्वरूपज्ञाननिलयं गीताशास्त्रमिदं शिवे ॥१२१॥**

हे शिवे ! यह गुरुगीतारूपी शास्त्र मोह को शांत करनेवाला, बन्धन में से परम मुक्त करनेवाला और स्वरूपज्ञान का भण्डार है।

**यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चयम् ।**
**नित्यं सौभाग्यदं पुण्यं तापत्रयकुलापहम् ॥१२२॥**

व्यक्ति जो-जो अभिलाषा करके इस गुरुगीता का पठन-चिंतन करता है उसे वह निश्चय ही प्राप्त होता है । यह गुरुगीता नित्य सौभाग्य और पुण्य प्रदान करनेवाली तथा तीनों तापों (आधि-व्याधि-उपाधि) का शमन करनेवाली है । (१२२)

**सर्वशांतिकरं नित्यं तथा वन्ध्यासुपुत्रदम् ।**
**अवैधव्यकरं स्त्रीणां सौभाग्यस्य विवर्धनम् ॥१२३॥**

यह गुरुगीता सब प्रकार की शांति करनेवाली, वन्ध्या स्त्री को सुपुत्र देनेवाली, सधवा स्त्रियों के वैधव्य का निवारण करनेवाली और सौभाग्य की वृद्धि करनेवाली है । (१२३)

**आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ।**
**निष्कामजापी विधवा पठेन्मोक्षमवाप्नुयात् ॥१२४॥**

यह गुरुगीता आयुष्य, आरोग्य, ऐश्वर्य और पुत्र-पौत्र की वृद्धि करनेवाली है । कोई विधवा निष्काम भाव से इसका जप-पाठ करे तो मोक्ष की प्राप्ति होती है । (१२४)

**अवैधव्यं सकामा तु लभते चान्यजन्मनि ।**
**सर्वदुःखभयं विघ्नं नाशयेत्तापहारकम् ॥१२५॥**

यदि वह (विधवा) सकाम होकर जप करे तो अगले जन्म में उसको संताप हरनेवाला अवैधव्य (सौभाग्य) प्राप्त होता है । उसके सब दुःख, भय, विघ्न और संताप का नाश होता है । (१२५)

**सर्वपापप्रशमनं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।**
**यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥१२६॥**

इस गुरुगीता का पाठ सब पापों का शमन करता है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति कराता है । इसके पाठ से जो जो आकांक्षा की जाती है वह अवश्य सिद्ध होती है । (१२६)

**लिखित्वा पूजयेद्यस्तु मोक्षश्रियमवाप्नुयात् ।**
**गुरुभक्तिर्विशेषेण जायते हृदि सर्वदा ॥१२७॥**

यदि कोई इस गुरुगीता को लिखकर उसकी पूजा करे तो उसे लक्ष्मी और मोक्ष की प्राप्ति होती है और विशेष कर उसके हृदय में सदा-सर्वदा गुरुभक्ति उत्पन्न होती रहती है। (१२७)

**जपन्ति शाक्ताः सौराश्च गाणपत्याश्च वैष्णवाः ।**
**शैवाः पाशुपताः सर्वे सत्यं सत्यं न संशयः ॥१२८॥**

शक्ति के, सूर्य के, गणपति के, विष्णु के, शिव के और पशुपति के मतवादी इसका (गुरुगीता का) पाठ करते हैं यह सत्य है, सत्य है, इसमें कोई संदेह नहीं। (१२८)

**जपं हीनासनं कुर्वन् हीनकर्माफलप्रदम् ।**
**गुरुगीतां प्रयाणे वा संग्रामे रिपुसंकटे ॥१२९॥**
**जपन् जयमवाप्नोति मरणे मुक्तिदायिका ।**
**सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति गुरुपुत्रे न संशयः ॥१३०॥**

बिना आसन किये हुए जप नीच कर्म हो जाता है और निष्फल हो जाता है। यात्रा में, युद्ध में, शत्रुओं के उपद्रव में गुरुगीता का जप-पाठ करने से विजय मिलता है। मरणकाल में जप करने से मोक्ष मिलता है। गुरुपुत्र के (शिष्य के) सर्व कार्य सिद्ध होते हैं, इसमें संदेह नहीं है। (१२९, १३०)

**गुरुमंत्रो मुखे यस्य तस्य सिद्धयन्ति नान्यथा ।**
**दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति गुरुपुत्रके ॥१३१॥**

जिसके मुख में गुरुमंत्र है उसके सब कर्म सिद्ध होते हैं, दूसरे के नहीं। दीक्षा के कारण शिष्य के सर्व कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

**भवमूलविनाशाय चाष्टपाशनिवृत्तये ।**
**गुरुगीताम्भसि स्नानं तत्त्वज्ञः कुरुते सदा ॥१३२॥**
**सर्वशुद्धः पवित्रोऽसौ स्वभावाद्यत्र तिष्ठति ।**
**तत्र देवगणाः सर्वे क्षेत्रपीठे चरन्ति च ॥१३३॥**

तत्त्वज्ञ पुरुष संसाररूपी वृक्ष की जड़ नष्ट करने के लिए और आठों प्रकार के बन्धन (संशय, दया, भय, संकोच, निन्दा, प्रतिष्ठा, कुलाभिमान और संपत्ति) की निवृत्ति करने के लिए गुरुगीतारूपी

गंगा में सदा स्नान करते रहते हैं। स्वभाव से ही सर्वथा शुद्ध और पवित्र ऐंसे वे महापुरुष जहाँ रहते हैं उस तीर्थ में सब देवता विचरण करते हैं। (१३२, १३३)

**आसनस्था शयाना वा गच्छन्तस्तिष्ठन्तोऽपि वा।**
**अश्वारूढाः गजारूढाः सुषुप्ता जाग्रतोऽपि वा ॥१३४॥**
**शुचिभूता ज्ञानवन्तो गुरुगीतां जपन्ति ये।**
**तेषां दर्शनसंस्पर्शात् पुनर्जन्म न विद्यते ॥१३५॥**

आसन पर बैठे हुए या लेटे हुए, खड़े रहते या चलते हुए, हाथी या घोड़े पर सवार हुए, जाग्रतावस्था में या सुषुप्तावस्था में, जो पवित्र ज्ञानवान पुरुष इस गुरुगीता का जप-पाठ करते हैं उनके दर्शन और स्पर्श से पुनर्जन्म नहीं होता। (१३४, १३५)

**कुशदूर्वासने देवि ह्यासने शुभ्रकम्बले।**
**उपविश्य ततो देवि जपेदेकाग्रमानसः ॥१३६॥**

हे देवी ! कुश और दुर्वा के आसन पर सफेद कम्बल बिछाकर उसके ऊपर बैठकर एकाग्र मन से इसका (गुरुगीता का) जप करना चाहिए। (१३६)

**शुक्लं सर्वत्र वै प्रोक्तं वश्ये रक्तासनं प्रिये।**
**पद्मासने जपेन्नित्यं शान्तिवश्यकरं परम् ॥१३७॥**

सामान्यतया सफेद आसन उचित है परंतु वशीकरण में लाल आसन आवश्यक है। हे प्रिये ! शांति की प्राप्ति के लिए या वशीकरण में नित्य पद्मासन में बैठकर जप करना चाहिए।

**वस्त्रासने च दारिद्र्यं पाषाणे रोगसंभवः।**
**मेदिन्यां दुःखमाप्नोति काष्ठे भवति निष्फलम् ॥१३८॥**

कपड़े के आसन पर बैठकर जप करने से दारिद्र्य आता है, पत्थर के आसन पर रोग, भूमि पर बैठकर जप करने से दुःख आता है और लकड़ी के आसन पर किये हुए जप निष्फल होते हैं। (१३८)

**कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिः मोक्षश्री व्याघ्रचर्मणि।**
**कुशासने ज्ञानसिद्धिः सर्वसिद्धिस्तु कम्बले ॥१३९॥**

काले मृगचर्म और दर्भासन पर बैठकर जप करने से ज्ञानसिद्धि होती है, व्याघ्रचर्म पर जप करने से मुक्ति प्राप्त होती है, परन्तु कम्बल के आसन पर सर्व सिद्धि प्राप्त होती है। (१३९)

**आग्नेय्यां कर्षणं चैव वायव्यां शत्रुनाशनम्।**
**नैर्ऋत्यां दर्शनं चैव ईशान्यां ज्ञानमेव च॥१४०॥**

अग्नि कोण की तरफ मुख करके जप-पाठ करने से आकर्षण, वायव्य कोण की तरफ शत्रुओं का नाश, नैर्ऋत्य कोण की तरफ दर्शन और ईशान कोण की तरफ मुख करके जप-पाठ करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है। (१४०)

**उदंमुखः शान्तिजाप्ये वश्ये पूर्वमुखस्तथा।**
**याम्ये तु मारणं प्रोक्तं पश्चिमे च धनागमः॥१४१॥**

उत्तर दिशा की ओर मुख करके पाठ करने से शांति, पूर्व दिशा की ओर वशीकरण, दक्षिण दिशा की ओर मारण सिद्ध होता है तथा पश्चिम दिशा की ओर मुख करके जप-पाठ करने से धन की प्राप्ति होती है। (१४१)

इति श्री स्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे
श्रीगुरुगीतायां द्वितीयोऽध्यायः॥

## ॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

**अथ काम्यजपस्थानं कथयामि वरानने।**
**सागरान्ते सरित्तीरे तीर्थे हरिहरालये॥१४२॥**
**शक्तिदेवालये गोष्ठे सर्वदेवालये शुभे।**
**वटस्य धात्र्या मूले वा मठे वृन्दावने तथा॥१४३॥**
**पवित्रे निर्मले देशे नित्यानुष्ठानतोऽपि वा।**
**निर्वेदनेन मौनेन जपमेतत् समारभेत्॥१४४॥**

## तीसरा अध्याय

हे सुमुखी! अब सकामियों के लिए जप करने के स्थानों का वर्णन करता हूँ। सागर या नदी के तट पर, तीर्थ में, शिवालय में,

विष्णु के या देवी के मंदिर में, गौशाला में, सभी शुभ देवालयों में, वटवृक्ष के या आँवले के वृक्ष के नीचे, मठ में, तुलसीवन में, पवित्र निर्मल स्थान में, नित्यानुष्ठान के रूप में अनासक्त रहकर मौनपूर्वक इसके जप का आरंभ करना चाहिए। (१४२, १४३, १४४)

**जाप्येन जयमाप्नोति जपसिद्धिं फलं तथा।**
**हीनकर्म त्यजेत्सर्वं गर्हितस्थानमेव च ॥१४५॥**

जप से जय प्राप्त होता है तथा जप की सिद्धिरूप फल मिलता है। जपानुष्ठान के काल में सब नीच कर्म और निन्दित स्थान का त्याग करना चाहिए। (१४५)

**स्मशाने बिल्वमूले वा वटमूलान्तिके तथा।**
**सिद्धयन्ति कानके मूले चूतवृक्षस्य सन्निधौ ॥१४६॥**

स्मशान में, बिल्व, वटवृक्ष या कनकवृक्ष के नीचे और आम्रवृक्ष के पास जप करने से सिद्धि जल्दी होती है। (१४६)

**आकल्पजन्मकोटीनां यज्ञव्रततपः क्रियाः।**
**ताः सर्वाः सफला देवि गुरुसंतोषमात्रतः ॥१४७॥**

हे देवी ! कल्प पर्यन्त के, करोड़ों जन्मों के यज्ञ, व्रत, तप और शास्त्रोक्त क्रियाएँ- ये सब गुरुदेव के संतोषमात्र से सफल हो जाते हैं। (१४७)

**मंदभाग्या ह्यशक्ताश्च ये जना नानुमन्वते।**
**गुरुसेवासु विमुखाः पच्यन्ते नरकेऽशुचौ ॥१४८॥**

भाग्यहीन, शक्तिहीन और गुरुसेवा से विमुख जो लोग इस उपदेश को नहीं मानते वे घोर नरक में पड़ते हैं। (१४८)

**विद्या धनं बलं चैव तेषां भाग्यं निरर्थकम्।**
**येषां गुरुकृपा नास्ति अधो गच्छन्ति पार्वति ॥१४९॥**

जिसके ऊपर श्री गुरुदेव की कृपा नहीं है उसकी विद्या, धन, बल और भाग्य निरर्थक है। हे पार्वती ! उसका अधःपतन होता है।

**धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः।**
**धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता ॥१५०॥**

जिसके अंदर गुरुभक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसका वंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेनेवाले धन्य हैं, समग्र धरती माता धन्य है। (१५०)

**शरीरमिन्द्रियं प्राणञ्चार्थः स्वजनबन्धुताम् ।**
**मातृकुलं पितृकुलं गुरुरेव न संशयः ॥१५१॥**

शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, धन, स्वजन, बन्धु-बान्धव, माता का कुल, पिता का कुल ये सब गुरुदेव ही हैं । इसमें संशय नहीं है। (१५१)

**गुरुर्देवो गुरुर्धर्मो गुरौ निष्ठा परं तपः ।**
**गुरोः परतरं नास्ति त्रिवारं कथयामि ते ॥१५२॥**

गुरु ही देव हैं, गुरु ही धर्म हैं, गुरु में निष्ठा ही परम तप है। गुरु से अधिक और कुछ नहीं है यह मैं तीन बार कहता हूँ।

**समुद्रे वै यथा तोयं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम् ।**
**भिन्ने कुंभे यथाऽऽकाशं तथाऽऽत्मा परमात्मनि ॥१५३॥**

जिस प्रकार सागर में पानी, दूध में दूध, घी में घी, अलग-अलग घटों में आकाश एक और अभिन्न है उसी प्रकार परमात्मा में जीवात्मा एक और अभिन्न है। (१५३)

**तथैव ज्ञानवान जीवः परमात्मनि सर्वदा ।**
**ऐक्येन रमते ज्ञानी यत्र कुत्र दिवानिशम् ॥१५४॥**

इसी प्रकार ज्ञानी सदा परमात्मा के साथ अभिन्न होकर रात-दिन आनंदविभोर होकर सर्वत्र विचरते हैं। (१५४)

**गुरुसन्तोषणादेव मुक्तो भवति पार्वति ।**
**अणिमादिषु भोक्तृत्वं कृपया देवि जायते ॥१५५॥**

हे पार्वती ! गुरुदेव को संतुष्ट करने से शिष्य मुक्त हो जाता है। हे देवी ! गुरुदेव की कृपा से वह अणिमादि सिद्धियों का भोग प्राप्त करता है। (१५५)

**साम्येन रमते ज्ञानी दिवा वा यदि वा निशि ।**
**एवं विधो महामौनी त्रैलोक्यसमतां व्रजेत् ॥१५६॥**

ज्ञानी दिन में या रात्रि में, सदा सर्वदा समत्व में रमण करते हैं। इस प्रकार के महामौनी अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ महात्मा तीनों लोकों में समान भाव से गति करते हैं। (१५६)

**गुरुभावः परं तीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम्।**
**सर्वतीर्थमयं देवि श्रीगुरोश्चरणाम्बुजम् ॥१५७॥**

गुरुभक्ति ही सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है। अन्य तीर्थ निरर्थक हैं। हे देवी ! गुरुदेव के चरणकमल सर्वतीर्थमय हैं। (१५७)

**कन्याभोगरतामन्दाः स्वकान्तायाः पराङ्मुखाः।**
**अतः परं मया देवि कथितन्न मम प्रिये ॥१५८॥**

हे देवी ! हे प्रिये ! कन्या के भोग में रत, स्वस्त्री से विमुख (परस्त्रीगामी) ऐसे बुद्धिशून्य लोगों को मेरा यह आत्मप्रिय परमबोध मैंने नहीं कहा। (१५८)

**अभक्ते वंचके धूर्ते पाखंडे नास्तिकादिषु।**
**मनसाऽपि न वक्तव्या गुरुगीता कदाचन ॥१५९॥**

अभक्त, कपटी, धूर्त, पाखण्डी, नास्तिक इत्यादि को यह गुरुगीता कहने का मन में सोचना तक नहीं। (१५९)

**गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।**
**तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यहृत्तापहारकम् ॥१६०॥**

शिष्य के धन को अपहरण करनेवाले गुरु तो बहुत हैं लेकिन शिष्य के हृदय का संताप हरनेवाला एक गुरु भी दुर्लभ है ऐसा मैं मानता हूँ। (१६०)

**चातुर्यवान्विवेकी च अध्यात्मज्ञानवान शुचिः।**
**मानसं निर्मलं यस्य गुरुत्वं तस्य शोभते ॥१६१॥**

जो चतुर हों, विवेकी हों, अध्यात्म के ज्ञाता हों, पवित्र हों तथा निर्मल मानसवाले हों उनमें गुरुत्व शोभा पाता है। (१६१)

**गुरवो निर्मलाः शान्ताः साधवो मितभाषिणः।**
**कामक्रोधविनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः ॥१६२॥**

गुरु निर्मल, शांत, साधु स्वभाव के, मितभाषी, काम-क्रोध से

अत्यंत रहित, सदाचारी और जितेन्द्रिय होते हैं। (१६२)

**सूचकादि प्रभेदेन गुरवो बहुधा स्मृताः।**
**स्वयं सम्यक् परीक्ष्याथ तत्त्वनिष्ठं भजेत्सुधीः ॥१६३॥**

सूचक आदि भेद से अनेक गुरु कहे गये हैं। बुद्धिमान मनुष्य को स्वयं योग्य विचार करके तत्त्वनिष्ठ सद्गुरु की शरण लेनी चाहिए। (१६३)

**वर्णजालमिदं तद्वद् बाह्यशास्त्रं तु लौकिकम्।**
**यस्मिन् देवि समभ्यस्तं स गुरुः सूचकः स्मृतः ॥१६४॥**

हे देवी ! वर्ण और अक्षरों से सिद्ध करनेवाले बाह्य लौकिक शास्त्रों का जिसको अभ्यास है वह गुरु 'सूचक गुरु' कहलाता है।

**वर्णाश्रमोचितां विद्यां धर्माधर्मविधायिनीम्।**
**प्रवक्तारं गुरुं विद्धि वाचकस्त्विवति पार्वति ॥१६५॥**

हे पार्वती ! धर्माधर्म का विधान करनेवाली, वर्ण और आश्रम के अनुरूप विद्या का प्रवचन करनेवाले गुरु को तुम 'वाचक गुरु' जानो। (१६५)

**पंचाक्षर्यादिमंत्राणामुपदेष्टा तु पार्वति।**
**स गुरुर्बोधको भूयादुभयोरयमुत्तमः ॥१६६॥**

पंचाक्षरी आदि मंत्रों का उपदेश देनेवाले गुरु 'बोधक गुरु' कहलाते हैं। हे पार्वती ! प्रथम दो प्रकार के गुरुओं से यह गुरु उत्तम है। (१६६)

**मोहमारणवश्यादितुच्छमंत्रोपदर्शिनम् ।**
**निषिद्धगुरुरित्याहुः पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः ॥१६७॥**

मोहन, मारण, वशीकरण आदि तुच्छ मंत्रों को बतानेवाले गुरु को तत्त्वदर्शी पंडित 'निषिद्ध गुरु' कहते हैं। (१६७)

**अनित्यमिति निर्दिश्य संसारे संकटालयम्।**
**वैराग्यपथदर्शी यः स गुरुर्विहितः प्रिये ॥१६८॥**

हे प्रिये ! 'संसार अनित्य और दुःखों का घर है' ऐसा समझाकर जो गुरु वैराग्य का मार्ग बताते हैं वे 'विहित गुरु' कहलाते हैं। (१६८)

**तत्त्वमस्यादिवाक्यानामुपदेष्टा तु पार्वति ।**
**कारणाख्यो गुरुः प्रोक्तो भवरोगनिवारकः ॥१६९॥**

हे पार्वती ! 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों का उपदेश देनेवाले तथा संसाररूपी रोगों का निवारण करनेवाले गुरु 'कारणाख्य गुरु' कहलाते हैं। (१६९)

**सर्वसन्देहसन्दोहनिर्मूलनविचक्षणः ।**
**जन्ममृत्युभयघ्नो यः स गुरुः परमो मतः ॥१७०॥**

सर्व प्रकार के सन्देहों का जड़ से नाश करने में जो चतुर हैं, जन्म, मृत्यु तथा भय का जो विनाश करते हैं वे 'परम गुरु' कहलाते हैं, 'सद्गुरु' कहलाते हैं। (१७०)

**बहुजन्मकृतात् पुण्याल्लभ्यतेऽसौ महागुरुः ।**
**लब्ध्वाऽमुं न पुनर्याति शिष्यः संसारबन्धनम् ॥१७१॥**

अनेक जन्मों में किये हुए पुण्यों से ऐसे महागुरु प्राप्त होते हैं। उनको प्राप्त कर शिष्य पुनः संसारबन्धन में नहीं बँधता अर्थात् मुक्त हो जाता है। (१७१)

**एवं बहुविधालोके गुरवः सन्ति पार्वति ।**
**तेषु सर्वप्रयत्नेन सेव्यो हि परमो गुरुः ॥१७२॥**

हे पार्वती ! इस प्रकार संसार में अनेक प्रकार के गुरु होते हैं। इन सबमें एक परम गुरु का ही सेवन सर्व प्रयत्नों से करना चाहिए।

**पार्वत्युवाच**

**स्वयं मूढा मृत्युभीताः सुकृताद्विरतिं गताः ।**
**दैवान्निषिद्धगुरुगा यदि तेषां तु का गतिः ॥१७३॥**

पार्वती ने कहा : प्रकृति से ही मूढ़, मृत्यु से भयभीत, सत्कर्म से विमुख लोग दैवयोग से निषिद्ध गुरु का सेवन करें तो उनकी क्या गति होती है ? (१७३)

**श्रीमहादेव उवाच**

**निषिद्धगुरुशिष्यस्तु दुष्टसंकल्पदूषितः ।**
**ब्रह्मप्रलयपर्यन्तं न पुनर्याति मर्त्यताम् ॥१७४॥**

श्री महादेवजी बोले : निषिद्ध गुरु का शिष्य दुष्ट संकल्पों से दूषित होने के कारण ब्रह्मप्रलय तक मनुष्य नहीं होता, पशुयोनि में ही रहता है। (१७४)

**शृणु तत्त्वमिदं देवि यदा स्याद्विरतो नरः।**
**तदाऽसावधिकारीति प्रोच्यते श्रुतमस्तकैः ॥१७५॥**

हे देवी ! इस तत्त्व को सुनो। मनुष्य जब विरक्त होता है तभी वह अधिकारी कहलाता है, ऐसा उपनिषद् कहते हैं। अर्थात् दैवयोग से गुरु प्राप्त होने की बात अलग है और विचार से गुरु चुनने की बात अलग है। (१७५)

**अखण्डैकरसं ब्रह्म नित्यमुक्तं निरामयम्।**
**स्वस्मिन् सन्दर्शितं येन स भवेदस्य देशिकः ॥१७६॥**

अखण्ड, एकरस, नित्यमुक्त और निरामय ब्रह्म को अपने अंदर ही जो दिखलाते हैं वे ही गुरु होने चाहिए। (१७६)

**जलानां सागरो राजा यथा भवति पार्वति।**
**गुरुणां तत्र सर्वेषां राजायं परमो गुरुः ॥१७७॥**

हे पार्वती ! जिस प्रकार सब जलाशयों में सागर राजा है उसी प्रकार सब गुरुओं में ये 'परम गुरु' राजा हैं। (१७७)

**मोहादिरहितः शांतो नित्यतृप्तो निराश्रयः।**
**तृणीकृतब्रह्मविष्णुवैभवः परमो गुरुः ॥१७८॥**

मोहादि दोषों से रहित, शांत, नित्य तृप्त, किसीके आश्रयरहित अर्थात् स्वाश्रयी, ब्रह्मा और विष्णु के वैभव को भी तृणवत समझनेवाले गुरु ही 'परम गुरु' हैं। (१७८)

**सर्वकालविदेशेषु स्वतंत्रो निश्चलस्सुखी।**
**अखण्डैकरसास्वादतृप्तो हि परमो गुरुः ॥१७९॥**

सर्व काल और सर्व देश में स्वतंत्र, निश्चल, सुखी, अखण्ड एक रस के आनंद से तृप्त ही सचमुच परम गुरु हैं। (१७९)

**द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तः स्वानुभूतिप्रकाशवान।**
**अज्ञानान्धतमश्छेत्ता सर्वज्ञः परमो गुरुः ॥१८०॥**

द्वैत और अद्वैत से मुक्त, अपने अनुभवरूप प्रकाशवाले, अज्ञानरूपी अंधकार को छेदनेवाले और सर्वज्ञ ही परम गुरु हैं।

**यस्य दर्शनमात्रेण मनसः स्यात् प्रसन्नता।**
**स्वयं भूयात् धृतिश्शांतिः स भवेत् परमो गुरुः ॥१८१॥**

जिनके दर्शनमात्र से मन प्रसन्न होता है, अपने आप धैर्य और शांति आ जाती है वे परम गुरु हैं। (१८१)

**स्वशरीरं शवं पश्यन् तथा स्वात्मानमद्वयम्।**
**यः स्त्रीकनकमोहघ्नः स भवेत् परमो गुरुः ॥१८२॥**

जो अपने शरीर को शव समान समझते हैं, अपने आत्मा को अद्वय जानते हैं, जो कामिनी और कंचन के मोह का नाशकर्त्ता हैं वे परम गुरु हैं। (१८२)

**मौनी वाग्मीति तत्त्वज्ञो द्विधाभूच्छृणु पार्वति।**
**न कश्चिन्मौनिना लाभो लोकेऽस्मिन्भवति प्रिये ॥१८३॥**
**वाग्मी तूत्कटसंसारसागरोत्तारणक्षमः।**
**यतोऽसौ संशयच्छेत्ता शास्त्रयुक्त्यनुभूतिभिः ॥१८४॥**

हे पार्वती ! सुनो। तत्त्वज्ञ दो प्रकार के होते हैं : मौनी और वक्ता। हे प्रिये ! इन दोनों में से मौनी गुरु द्वारा लोगों को कोई लाभ नहीं होता, परन्तु वक्ता गुरु भयंकर संसारसागर को पार कराने में समर्थ होते हैं। क्योंकि शास्त्र, युक्ति (तर्क) और अनुभूति से वे सर्व संशयों का छेदन करते हैं। (१८३, १८४)

**गुरुनामजपाद्देवि बहुजन्मार्जितान्यपि।**
**पापानि विलयं यान्ति नास्ति सन्देहमण्वपि ॥१८५॥**

हे देवी ! गुरुनाम के जप से अनेक जन्मों के इकट्ठे हुए पाप भी नष्ट होते हैं, इसमें अणुमात्र संशय नहीं है। (१८५)

**कुलं धनं बलं शास्त्रं बान्धवास्सोदरा इमे।**
**मरणे नोपयुज्यन्ते गुरुरेको हि तारकः ॥१८६॥**

अपना कुल, धन, बल, शास्त्र, नाते-रिश्तेदार, भाई, ये सब मृत्यु के अवसर पर कुछ काम नहीं आते। एकमात्र गुरुदेव ही उस

समय तारणहार हैं। (१८६)

**कुलमेव पवित्रं स्यात् सत्यं स्वगुरुसेवया।**
**तृप्ताः स्युस्सकला देवा ब्रह्माद्या गुरुतर्पणात् ॥१८७॥**

सचमुच, अपने गुरुदेव की सेवा करने से अपना कुल भी पवित्र होता है। गुरुदेव के तर्पण से ब्रह्मा आदि सब देव तृप्त होते हैं। (१८७)

**स्वरूपज्ञानशून्येन कृतमप्यकृतं भवेत्।**
**तपो जपादिकं देवि सकलं बालजल्पवत् ॥१८८॥**

हे देवी ! स्वरूप के ज्ञान के बिना किये हुए जप-तपादि सब कुछ नहीं किये हुए के बराबर हैं, बालक के बकवाद के समान (व्यर्थ) हैं। (१८८)

**न जानन्ति परं तत्त्वं गुरुदीक्षापराङ्मुखाः।**
**भ्रान्ताः पशुसमा ह्येते स्वपरिज्ञानवर्जिताः ॥१८९॥**

गुरुदीक्षा से विमुख रहे हुए लोग भ्रांत हैं, अपने वास्तविक ज्ञान से रहित हैं। वे सचमुच पशु के समान हैं। परम तत्त्व को वे नहीं जानते। (१८९)

**तस्मात्कैवल्यसिद्ध्यर्थं गुरुमेव भजेत्प्रिये।**
**गुरुं विना न जानन्ति मूढास्तत्परमं पदम् ॥१९०॥**

इसलिए हे प्रिये ! कैवल्य की सिद्धि के लिए गुरु का ही भजन करना चाहिए। गुरु के बिना मूढ़ लोग उस परम पद को नहीं जान सकते। (१९०)

**भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।**
**क्षीयन्ते सर्वकर्माणि गुरोः करुणया शिवे ॥१९१॥**

हे शिवे ! गुरुदेव की कृपा से हृदय की ग्रंथि छिन्न हो जाती है, सब संशय कट जाते हैं और सर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं। (१९१)

**कृताया गुरुभक्तेस्तु वेदशास्त्रानुसारतः।**
**मुच्यते पातकाद् घोराद् गुरुभक्तो विशेषतः ॥१९२॥**

वेद और शास्त्रों के अनुसार विशेष रूप से गुरु की भक्ति करने

से गुरुभक्त घोर पाप से भी मुक्त हो जाता है। (१९२)

**दुःसंगं च परित्यज्य पापकर्म परित्यजेत्।**
**चित्तचिह्नमिदं यस्य तस्य दीक्षा विधीयते ॥१९३॥**

दुर्जनों का संग त्यागकर पापकर्म छोड़ देने चाहिए। जिसके चित्त में ऐसा चिह्न देखा जाता है उसके लिए गुरुदीक्षा का विधान है। (१९३)

**चित्तत्यागनियुक्तश्च क्रोधगर्वविवर्जितः।**
**द्वैतभावपरित्यागी तस्य दीक्षा विधीयते ॥१९४॥**

चित्त का त्याग करने में जो प्रयत्नशील है, क्रोध और गर्व से जो रहित है, द्वैतभाव का जिसने त्याग किया है उसके लिए गुरुदीक्षा का विधान है। (१९४)

**एतल्लक्षणसंयुक्तं सर्वभूतहिते रतम्।**
**निर्मलं जीवितं यस्य तस्य दीक्षा विधीयते ॥१९५॥**

जिसका जीवन इन लक्षणों से युक्त हो, निर्मल हो, जो सब जीवों के कल्याण में रत हो उसके लिए गुरुदीक्षा का विधान है।

**अत्यन्तचित्तपक्वस्य श्रद्धाभक्तियुतस्य च।**
**प्रवक्तव्यमिदं देवि ममात्मप्रीतये सदा ॥१९६॥**

हे देवी ! जिसका चित्त अत्यन्त परिपक्व हो, श्रद्धा और भक्ति से युक्त हो उसे यह तत्त्व सदा मेरी प्रसन्नता के लिए कहना चाहिए। (१९६)

**सत्कर्मपरिपाकाच्च चित्तशुद्धस्य धीमतः।**
**साधकस्यैव वक्तव्या गुरुगीता प्रयत्नतः ॥१९७॥**

सत्कर्म के परिपाक से शुद्ध हुए चित्तवाले बुद्धिमान साधक को ही गुरुगीता प्रयत्नपूर्वक कहनी चाहिए। (१९७)

**नास्तिकाय कृतघ्नाय दांभिकाय शठाय च।**
**अभक्ताय विभक्ताय न वाच्येयं कदाचन ॥१९८॥**

नास्तिक, कृतघ्न, दंभी, शठ, अभक्त और विरोधी को यह गुरुगीता कदापि नहीं कहनी चाहिए। (१९८)

**स्त्रीलोलुपाय मूर्खाय कामोपहतचेतसे ।**
**निन्दकाय न वक्तव्या गुरुगीतास्वभावतः ॥१९९॥**

स्त्रीलम्पट, मूर्ख, कामवासना से ग्रस्त चित्तवाले तथा निंदक को गुरुगीता बिल्कुल नहीं कहनी चाहिए। (१९९)

**एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुर्नैव मन्यते ।**
**श्वानयोनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वपि जायते ॥२००॥**

एकाक्षर मंत्र का उपदेश करनेवाले को जो गुरु नहीं मानता वह सौ जन्मों में कुत्ता होकर फिर चाण्डाल की योनि में जन्म लेता है। (२००)

**गुरुत्यागाद् भवेन्मृत्युर्मंत्रत्यागाद्दरिद्रता ।**
**गुरुमंत्रपरित्यागी रौरवं नरकं व्रजेत् ॥२०१॥**

गुरु का त्याग करने से मृत्यु होती है। मंत्र को छोड़ने से दरिद्रता आती है और गुरु एवं मंत्र दोनों का त्याग करने से रौरव नरक मिलता है। (२०१)

**शिवक्रोधाद् गुरुस्त्राता गुरुक्रोधाच्छिवो न हि ।**
**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोराज्ञां न लंघयेत् ॥२०२॥**

शिव के क्रोध से गुरुदेव रक्षण करते हैं लेकिन गुरुदेव के क्रोध से शिवजी रक्षण नहीं करते। अतः सब प्रयत्न से गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। (२०२)

**सप्तकोटिमहामंत्राश्चित्तविभ्रंशकारकाः ।**
**एक एव महामंत्रो गुरुरित्यक्षरद्वयम् ॥२०३॥**

सात करोड़ महामंत्र विद्यमान हैं। वे सब चित्त को भ्रमित करनेवाले हैं। 'गुरु' नाम का दो अक्षरवाला मंत्र एक ही महामंत्र है। (२०३)

**न मृषा स्यादियं देवि मदुक्तिः सत्यरूपिणी ।**
**गुरुगीतासमं स्तोत्रं नास्ति नास्ति महीतले ॥२०४॥**

हे देवी ! मेरा यह कथन कभी मिथ्या नहीं होगा। वह सत्यस्वरूप है। इस पृथ्वी पर गुरुगीता के समान अन्य कोई स्तोत्र नहीं है।

गुरुगीतामिमां देवि भवदुःखविनाशिनीम् ।
गुरुदीक्षाविहीनस्य पुरतो न पठेत्क्वचित् ॥२०५॥

भवदुःख का नाश करनेवाली इस गुरुगीता का पाठ गुरुदीक्षाविहीन मनुष्य के आगे कभी नहीं करना चाहिए। (२०५)

रहस्यमत्यन्तरहस्यमेतन्न
पापिना लभ्यमिदं महेश्वरि ।
अनेकजन्मार्जितपुण्यपाकाद्
गुरोस्तु तत्त्वं लभते मनुष्यः ॥२०६॥

हे महेश्वरी ! यह रहस्य अत्यंत गुप्त रहस्य है। पापियों को वह नहीं मिलता। अनेक जन्मों के किये हुए पुण्यों के परिपाक से ही मनुष्य गुरुतत्त्व को प्राप्त कर सकता है। (२०६)

सर्वतीर्थावगाहस्य संप्राप्नोति फलं नरः ।
गुरोः पादोदकं पीत्वा शेषं शिरसि धारयन् ॥२०७॥

श्री सद्गुरु के चरणामृत का पान करने से और उसे मस्तक पर धारण करने से मनुष्य सर्व तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त करता है। (२०७)

गुरुपादोदकं पानं गुरोरुच्छिष्टभोजनम् ।
गुरुमूर्तेः सदा ध्यानं गुरोर्नाम्नः सदा जपः ॥२०८॥

गुरुदेव के चरणामृत का पान करना, गुरुदेव के भोजन में से बचा हुआ खाना, गुरुदेव की मूर्ति का ध्यान करना और गुरुनाम का जप करना चाहिए। (२०८)

गुरुरेको जगत्सर्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात्संपूजयेद् गुरुम् ॥२०९॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिवसहित समग्र जगत गुरुदेव में समाविष्ट है। गुरुदेव से अधिक और कुछ भी नहीं है, इसलिए गुरुदेव की पूजा करनी चाहिए। (२०९)

ज्ञानं विना मुक्तिपदं लभ्यते गुरुभक्तितः ।
गुरोः समानतो नान्यत् साधनं गुरुमार्गिणाम् ॥२१०॥

गुरुदेव के प्रति (अनन्य) भक्ति से ज्ञान के बिना भी मोक्षपद मिलता है। गुरु के मार्ग पर चलनेवालों के लिए गुरुदेव के समान अन्य कोई साधन नहीं है। (२१०)

**गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुशिवादयः।**
**सामर्थ्यमभजन् सर्वे सृष्टिस्थित्यंतकर्मणि ॥२११॥**

गुरु के कृपाप्रसाद से ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव यथाक्रम जगत की सृष्टि, स्थिति और लय करने का सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। (२११)

**मंत्रराजमिदं देवि गुरुरित्यक्षरद्वयम्।**
**स्मृतिवेदपुराणानां सारमेव न संशयः ॥२१२॥**

हे देवी ! 'गुरु' यह दो अक्षरवाला मंत्र सब मंत्रों में राजा है, श्रेष्ठ है। स्मृतियाँ, वेद और पुराणों का वह सार ही है, इसमें संशय नहीं है। (२१२)

**यस्य प्रसादादहमेव सर्वं**
**मय्येव सर्वं परिकल्पितं च।**
**इत्थं विजानामि सदात्मरूपं**
**तस्यांघ्रिपद्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥२१३॥**

'मैं ही सब हूँ, मुझमें ही सब कल्पित है' ऐसा ज्ञान जिनकी कृपा से हुआ है ऐसे आत्मस्वरूप श्री सद्गुरुदेव के चरणकमलों में मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। (२१३)

**अज्ञानतिमिरान्धस्य विषयाक्रान्तचेतसः।**
**ज्ञानप्रभाप्रदानेन प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥२१४॥**

हे प्रभो ! अज्ञानरूपी अंधकार में अंध बने हुए और विषयों से आक्रान्त चित्तवाले मुझको ज्ञान का प्रकाश देकर कृपा करो। (२१४)

इति श्री स्कान्दोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे
श्रीगुरुगीतायां तृतीयोऽध्यायः ॥

*

# मोक्ष का द्वार : गुरु

*- प. पू. संत श्री आसारामजी बापू*

[उत्तरायण की ध्यान योग शिविर में साधकों के समक्ष पूज्यश्री के श्रीमुख से प्रवाहित गुरुभक्ति की भावगंगा : ]

गुरुप्रसाद से जिनका अंतर शुद्ध हो चुका है, बाह्य शुद्धि उनके समक्ष दासी बन जाती है । अंतर में यदि गुरु की सेवा हो और गुरुप्रसाद का मूल्य समझ में आ चुका हो तो उस साधक अथवा शिष्य को अन्य किसी शुद्धि की चिन्ता न करनी चाहिए। वह जो भी करेगा वह शुद्ध हो जायेगा, जो कुछ खायेगा वह पवित्र हो जायेगा। जो गुरुभक्त है, गुरु की पवित्र सेवा से जिसका तन और मन यज्ञरूप बन गया है उसे कोई दोष नहीं लगता। उसके लिए सभी क्षम्य है।

जिसके हृदय का अधिकार गुरुभक्ति ने ले लिया है, उसे तीर्थाटन से क्या काम ? उसे मंदिरों में जाने की क्या आवश्यकता ? उसका मन ही मंदिर बन जाता है। उसका तन शिवालय बन जाता है। जिसके मन पर गुरुत्व ने अधिकार जमा लिया है वह स्वयं ही चलता-फिरता एक तीर्थधाम बन जाता है। ज्ञानेश्वर जैसे, एकनाथ, एकलव्य, तोटकाचार्य जैसे सत्पात्र सत्‌शिष्यों को याद करने से, उनके नाम का स्मरण करने से, उनकी कथाओं का पुनरावर्तन करने से आज भी हजारों लोग पवित्र हो जाते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज की गुरुभक्ति सुनकर अच्छे-से-अच्छे संत, प्रगल्भ वक्तागण तथा उत्तम प्रकार के गुरुभक्त भी द्रवित हो जाते हैं। वे ज्ञानेश्वर महाराज धन्य हैं, उनका अंतःकरण धन्य है जो गुरुत्व को झेल सका, गुरुत्व को समझ सका। अन्यथा बाह्य शुद्धि, बाहरी समझ तो ऐसी होती है मानो विष पर चाशनी का लेप। जैसे पेट क्षुधापीड़ित हो और बाहर पेट पर अन्न का लेप कर दिया जाय। भीतर यदि काम, क्रोध, लोभ, राग और द्वेष की अग्नि हो तो बाहरी शुद्धि, पवित्रता व्यर्थ हो जाती है। गुरुभक्ति से भीतरी विकार नष्ट हो जाते हैं। गुरुसेवा से

तन पवित्र हो जाता है। गुरु के कृपा-कटाक्ष से मन पवित्र हो जाता है।

भागवत पुराण में भगवान वेदव्यास ने कहा है :

'यदि काम पर जय प्राप्त करनी हो तो देह की नश्वरता पर विचार करो, मृतदेह को देखो, शव पर विचार करो व रोगी शरीरों की हालत देखो। लोभ को जीतना हो तो कमाये हुए धन का दान करो और मोह को पराजित करना हो तो विवेक से काम लो। अहंकार को विजित करना हो तो अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति को देखो, धन के अहं को जीतने के लिए अपने से अधिक धनी को देखो। विद्या के अहं को जीतना हो तो अपने से बड़े विद्वान को देखो। अपनी बुद्धि और चालाकी का अधिक गुमान हो तो अपने से अधिक चालाक लोगों में रहो।' परंतु इन सब प्रयासों से दूर, जिसे सद्गुरु की प्राप्ति हो गयी, जिसे गुरुभक्तिरूपी संजीवनी मिल गयी उसे काम दूर करने के लिए अलग से कोई उपाय नहीं करना पड़ता, क्रोध दूर करने के लिए भी कोई अतिरिक्त उपाय करना आवश्यक नहीं।

अविद्वत्ता दूर करनी हो तो विद्यालयों में जाइए, अनपढ़ हों तो अध्यापकों की दासता स्वीकारिये। परंतु जिसने गुरुदेव की दासता प्राप्त कर ली वह अनपढ़ होते हुए भी विद्वानों को पढ़ाता है, नासमझ होते हुए भी समझदारों को समझाने की क्षमता रखता है, क्योंकि :

**नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।**

शिष्य का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि गुरुसेवा में अपना सर्वस्व लुटा दे। गुरु का यह स्वभाव ही होता है कि वह संप्राप्त आध्यात्मिक पूँजी का अपना सम्पूर्ण कोष शिष्य के हृदय में उड़ेल दे। इसके बावजूद उनकी पूँजी में कोई अभाव नहीं आ पाता।

जिस शिष्य में गुरु के प्रति अनन्य भाव नहीं जागता, वह शिष्य आवारा पशु के समान ही रह जाता है। उसकी हालत धोबी के कुत्ते जैसी हो जाती है, न घर का न घाट का। उसके मन को पूर्ण विकसित हो पाने का अवसर नहीं मिलता। अधिक भटकने से

उसका मन नास्तिक भाव में आ जाता है और वह खिन्नता अनुभव करने लगता है। पर जिसे सद्‌गुरु मिल गये हैं और जो सत्‌शिष्य बन सका है उसके लिए परमात्मा के प्रेमप्रवाह का झरना फूट निकलता है। गुरुप्रसाद... गुरुकृपा जब हृदय में प्रविष्ट होती है तब- अ... हा... हा !! गुरुप्रसाद क्या वस्तु होती है यह यदि जानना हो तो किसी गुरुभक्त के हृदय में झाँककर देखिये, गुरुप्रसाद का स्वाद क्या होता है यह यदि जानना हो तो किसी सत्‌शिष्य के हृदय में झाँककर देखिये, तब आपको पता चलेगा। देवतागण तो उस अमृत से वंचित रहते हैं जो अमृत गुरुभक्त को मिलता है। जिसे गुरुभक्त गुरुभक्ति से संप्राप्त कर पीता है उस अमृत से योगीजन भी वंचित रहते हैं। कर्मी तो इस अमृत से बहुत दूर रह जाते हैं। कर्मी कर्मकाण्ड की शुद्धि में तो लगे रहते हैं परंतु हृदय की शुद्धि तो परम भाव से प्राप्त होती है, भाव के बिना वह संभव ही नहीं है। उससे वे वंचित रह जाते हैं।

तीर्थों में स्नान करने से एक फल मिलता है परंतु यदि कोई गुरुभक्त मिल जाय और उसके सान्निध्य में रहें तो चार फल मिलते हैं। गुरुभक्त के सान्निध्यमात्र से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों के दरवाजे खुल जाते हैं। किसी गुरुभक्त से मित्रता करके देखिये। वह आपको धर्म के मार्ग पर ले जायेगा। उसका स्वभाव ही होता है कि वह आपको धार्मिक बनाकर ही छोड़ेगा। आपको ठूँठ नास्तिक न रहने देगा। सच्चा गुरुभक्त आपको मिले तो धर्म का द्वार ही खोल दे।

सच्चा गुरुभक्त ही संतत्व को प्राप्त होता है। संतों जैसा वेश बनाकर बैठ जानेवाले साधक संतत्व को प्राप्त नहीं होते।

**तीरथ नहाये एक फल, संत मिले फल चार।**
**सत्गुरु मिले अनंत फल, कहत कबीर विचार॥**

ऐसे कोई संत मिल जायें... ! ऐसे गुरुभक्त मिल जायें... ! ..तो हमें समझ में आयेगा कि हम अब तक तो धुआँ ही चाट रहे थे,

पानी बिलो रहे थे कि मक्खन निकलेगा, हीरों की धुन में पत्थर चुनकर व्यर्थ का भार उठाये फिर रहे थे। ऐसे किसी विरले से भेंट होते ही कर्मकाण्डियों के तो होश ही उड़ जायेंगे।

परमहंस रामकृष्णदेव की परीक्षा लेने एक पण्डित आये। रामकृष्ण की मस्ती देखकर वे तो चकित हो उठे, उनका ईश्वरीय आनन्द देखकर वापस लौटते हुए उन्होंने रामकृष्णजी के शिष्यों से गद्गदकंठ होकर कहा : ''गाड़ियाँ भरी जा सकें इतने ग्रंथों का अध्ययन मैंने किया है, पर आज जाना कि मैं तो व्यर्थ बोझ उठाये हूँ। अमृत तो आपके रामकृष्णजी पी रहे हैं और उनके कृपाप्रसाद का स्वाद आप लोग पा रहे हैं। हम तो मस्तिष्क में बोझा भरे हुए पण्डित हो गये हैं।''

पुस्तकें पढ़-पढ़कर गुरु बन जाने में कोई सार नहीं। ऐसे निगुरे गुरुओं की कोई आवश्यकता नहीं। आज कल समाज में ऐसे किताबी गुरुओं की बड़ी भारी भीड़ हो गयी है।

कोई सद्गुरु का प्यारा मिल जाय तो चारों पुरुषार्थ के द्वार खुल जायें। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के द्वारों का क्या मजाल है कि वे बंद रहें ? जब कोई सद्गुरु का प्यारा आपका हाथ पकड़ ले तो निश्चित जानियेगा कि आपके लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के द्वार बंद नहीं रह सकते। सत्‌शिष्य का सान्निध्य इतना लाभ पहुँचा सकता है और जब यह सत्‌शिष्य सद्गुरु बनता है तब उसमें अनंत फल देने की सामर्थ्य उद्भूत हो जाती है। ज्ञानेश्वर महाराज सत्‌शिष्य में से सद्गुरु बने थे। कबीर साहब सत्‌शिष्य में से सद्गुरु हो गये थे। इसी प्रकार नानकदेव तथा विवेकानंद सत्‌शिष्य में से सद्गुरु हुए थे।

सत्‌शिष्यों की पावन कथाएँ अपने हृदय को जितना पावन करती हैं, हमें जितना पुण्य प्रदान करती हैं इतना पुण्य तो गंगास्नान से भी नहीं मिलता। सद्गुरुओं और सत्‌शिष्यों की चर्चा हमें जितना अमृत पिला सकती है इतना अमृत पिलाने की शक्ति स्वर्ग के घड़े

में कहाँ है ? स्वर्ग का सुख और स्वर्ग का अमृत ऐसा कहाँ है ? सत्‌शिष्यों और सद्‌गुरुओं की गाथाएँ सुनने से, समझने से जो रस मिलता है, अमृत बरसता है वह स्वर्ग के अमृत को लज्जित कर देता है। स्वर्ग का अमृत यहाँ आकर निरर्थक सिद्ध होता है। देवताओं के अमृत को तुच्छ सिद्ध करने का सामर्थ्य सद्‌गुरु और सत्‌शिष्य की गाथाओं में समाया हुआ है।

जिनका हृदय सद्‌गुरु के श्रीचरणों में द्रवित हो चुका है, जिनके हृदय में सद्‌गुरु प्रविष्ट हो गये हैं वे लोग सद्‌भागी हैं। वे उस प्राप्ति में पागल हैं। पागल अर्थात् जिन्होंने 'गल' को पा लिया, इस अटकल को पा लिया है कि मस्ती कैसे ली जाती है, जिन्होंने इस बात को समझ लिया है कि अमृत कैसे लूटा जाता है।

सद्‌गुरुदेव के प्रति हृदय का भाव उमड़ पड़ता है तब शिष्य के मुख से मधुर प्रार्थना की भावगंगा बहने लगती है कि :

**गुरुदेव दया कर दो मुझ पर, मुझे अपनी शरण में रहने दो।**
**मुझे ज्ञान के सागर से स्वामी, अब निर्मल गागर भरने दो॥**
**तुम्हारी शरण में जो कोई आया, पार हुआ वो एक ही पल में।**
**इस दरपे हम भी आये हैं, इस दरपे गुजारा करने दो॥**
**मुझे ज्ञान के...**
**सरपे छाया घोर अंधेरा, सूझत नाहीं राह कोई।**
**ये नयन मेरे और ज्योत तेरी, इन नयनों को भी बहने दो॥**
**मुझे ज्ञान के...**
**चाहे डुबा दो चाहे तैरा दो, मर भी गये तो देंगे दुआएँ।**
**ये नाव मेरी और हाथ तेरे, मुझे भवसागर से तरने दो॥**
**मुझे ज्ञान के...**

किसी सत्‌शिष्य के हृदय का यह संगीत है, कोरी भाषा नहीं है। केवल भाषा इतनी प्यारी नहीं होती, जितना अंतर का संगीत प्यारा होता है।

**गुरुदेव दया कर दो मुझ पर...**

इसका पुनरावर्तन करने से मुझे आनंद आता है। मेरे गुरुदेव के स्मरण में मेरा हृदय फिर से पवित्रतम हो रहा है। ब्रह्मानंद की मस्ती रोम-रोम को सराबोर किये दे रही है।

कुछ वर्ष पूर्व मेरे सद्‌गुरुदेव परम पूज्य लीलाशाहजी बापू ब्रह्मलीन हुए। जिस देह के द्वारा मुझे शाश्वत स्वरूप का साक्षात्कार हुआ, वह परम पावन देह अब नहीं है। उनके पावन सान्निध्य में बीते हुए वे परम मधुर दिन अब याद आते हैं और हृदय में भाव की लहरें उमड़ती हैं।

निजानंद संत आत्मसाक्षात्कारी पुरुष थे। उनके बहुत से शिष्य थे। निजानंद निज के आनन्द में ही मस्त थे। निजानंद स्वामी निज वास्तविकता को, स्व के आनंद को प्राप्त कर चुके थे। वे लोगों को दिन-रात उपदेश दिया करते थे कि :

''आप सच्चिदानंद हैं, निजानंद हैं। आप आत्मा हैं, शरीर नहीं। आप कभी न तो जन्मते हैं न मरते हैं। शरीर किसीका भी हो, वह नश्वर ही होगा। पति का हो या पत्नी का, गुरु का हो अथवा भक्त का, शरीर तो नश्वर ही है।''

एक दिन निजानंद ने समाचार सुना कि गुरुदेव का देहान्त हो गया है। समाचार पाते ही निजानंद तत्काल गुरुदेव की ओर दौड़े। उनके पीछे-पीछे उनके सभी भक्त, शिष्य एवं सत्‌शिष्य भी भागे। निजानंद फिर से पवित्र होने के लिए ब्रह्मलीन हो चुके गुरुदेव के दर्शन करने पहुँच गये। आँखों से अश्रुधार अविरत बह रही है। भरे गले से फूटकर रुदन अंतर से बाहर निकल रहा है। अब ये निजानंद 'निजानंद स्वामी' के रूप में न रहकर एक पागल शिष्य का रूप धारण कर चुके थे, एक पागल साधु बन गये थे। रुदनावेग में वे अपनी सम्पूर्ण विद्वत्ता भूल चुके थे। उन्हें इसका विचार भी न रहा कि उनके साथ उनके अपने हजारों शिष्यगण उपस्थित हैं। अपने-आपको वे सँभाल ही न सके और न ही उन्होंने संयत होने के लिए कोई प्रयास ही किया। निज को भावप्रवाह से मुक्त करने का विचार

तक भी उनके समीप न फटक सका। गुरु की मृत देह से लिपटकर वे बच्चे की तरह बिलख-बिलखकर रो पड़े। अनेकों भक्त और शिष्य उन्हें कह रहे थे :

''स्वामीजी ! अब बस कीजिए। यह आप क्या कर रहे हैं? स्वामीजी ! आप तो हमें रात-दिन उपदेश दिया करते हैं कि देह नश्वर है और गुरु देह नहीं परंतु वे तो साक्षात् सच्चिदानंद परमात्मा हैं। ...और आप तो गुरु की मृत देह से इस प्रकार लिपट रहे हैं ? गुरु के देहांत पर रो रहे हैं ? स्वामीजी ! स्वस्थ होइये! अपने यश का विचार कीजिये, अपनी महान प्रतिष्ठा पर ध्यान दीजिये। देश-देशान्तरों में फैली आपके यश की सुवास का, अपनी मान-बड़ाई का विचार कीजिए। आप सबको वेदान्त समझाते हैं और अनेकों को पहले भी समझा चुकेहैं कि कोई मरता नहीं और न ही कोई जन्मता है। न कोई माताहै,न पिता है, न कोई भाई है, न मित्र है, न कोई गुरु है, न शिष्यहै।

**न मे मृत्यु शंका न मे जातिभेदः पिता नैव मे नैव माता न जन्मः।**
**न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः चिदानंदरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥**

आपने ही इन सब लोगों को सिखाया है और अब आप यह क्या कर रहे हैं ? वेदान्त ने तो '**तत्त्वमसि**' का उपदेश किया है फिर भी आप क्यों रो रहे हैं स्वामीजी ?''

निजानंद स्वामी स्वयं 'स्वामी' बनकर नहीं बैठे थे अपितु किसी सच्चे स्वामी ने उन्हें स्वामीत्व में जगाया था। निजानन्द ने शिष्यों से कहा :

''बाबा... !! वेदान्त में कहाँ लिखा है कि रोना वर्जित है? गुरु के परम पवित्र चिन्तन में हृदय को पवित्र करने की मनाही कौन-से निष्ठुर वेदान्त में फरमाई गयी है ? इन्हीं गुरुजी ने तो वेदान्त समझाया, अन्यथा वेदान्त की पुस्तक तो पाँच-पचास रुपये में मिल जाती है। ऐसा वेदान्त प्रेस में पड़ा रहता है, वेदान्त के उपदेशों से पुस्तकालय भरे पड़े हैं। यदि ये गुरु न होते, गुरुदेव की यह

नश्वर देह न होती तो शाश्वत की झलक कहाँ से मिलती?

सैद्धान्तिक रूप से गुरु की देह नश्वर है परन्तु मेरी वैयक्तिक अनुभूति में गुरु की देह नश्वर नहीं। गुरुदेव की समस्त स्मृतियाँ भी मेरे लिए तो शाश्वत हैं। गुरु की यह देह धन्य है जो विश्वेश्वर की समझ दे सकी। गुरुदेव की इस नश्वर देह में से ही शाश्वत कृपा का झरना फूट निकला था। कौन कहता है कि इस दृष्टि से गुरु की देह नश्वर थी ? वेदान्त में कहाँ लिखा है कि गुरुदेव की पवित्र स्मृति में अपना हृदय पवित्र न करो ? गुरु के पावन उपदेश का, गुरु के पावन प्रेम का बारम्बार स्मरण करके प्रेमसागर में न डूबो ? मूर्ख बन गये हो या ठग हो ? खुद को ब्रह्मज्ञानी मानकर कोरे-के-कोरे बैठे रह जाना चाहते हो पागल ? सचमुच तुम जन्मान्ध हो। तुम आवारा पशु हो। तुम्हारा हृदय पवित्र होना कठिन है। यदि तुम्हें गुरुप्रसाद का भी ख्याल नहीं है, गुरुप्रसाद की कद्र नहीं है तो तुम्हारे भाग्य में धक्के खाने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? तुम संसार के लिए रोओगे, सन्तानों के लिए रोओगे, परिवार के लिए आँसू बहाओगे परंतु मैं तो गुरु की कृपा के लिए रोऊँगा। मैं गुरुचरणों के लिए रो रहा हूँ और रोता ही रहूँगा। इसीमें जीवन की सार्थकता है।''

इस प्रकार निजानंद उस स्थिति में भी अपने शिष्यों को समझाने लगे। निजानंद के अंतर में निज का आनंद समा नहीं पा रहा था। जहाँ-जहाँ उनकी दृष्टि जाती थी, जहाँ-जहाँ उनकी पुकार पहुँचती थी वहाँ वे स्वयं ही निज स्वरूप हो जाते थे।

निजानंद गुरु की याद ताजा कर रहे हैं। गुरु के सान्निध्य में घटी सम्पूर्ण घटनाओं को हृदयपटल पर चित्रित करते हुए संसार को, संसार के सम्बन्ध को अलविदा कर रहे हैं।

निजानंद स्वामी धन्य-धन्य हो गये होंगे। गुरुचरणों में भाव-विभोर निजानंद स्वामी के चरणों में अपने बार-बार नमस्कार हों !

इस प्रकार के निजानंदगण, सद्गुरु के सत्‌शिष्यगण एवं

सद्भक्तगण भक्ति-भाव में विभोर हो गुरुप्रेम में जब रोते हैं तब जिस स्थान पर उनके वे आँसू पड़ते हैं वहाँ की भूमि कृतकृत्य हो जाती है, धन्य-धन्य हो उठती है। उसमें तीर्थत्व की शक्ति आ जाती है। जहाँ गुरुभक्त अपने चरण रखते हैं वह भूमि पूजी जाती है, उस धरा की धूल भी पूज्य है।

**ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।**
**मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥**

निजानंद निज गुरु की कृपा को पहचानकर गुरु बन गये। ज्ञानदेव गुरुकृपा का परिचय पाकर गुरुत्व को उपलब्ध हो गये। देवगढ़ के दीवान साहब, जनार्दन स्वामी के शिष्य एकनाथजी ने गुरुभक्ति में हँसते-हँसते और गुरुप्रेम में रोते-रोते जो प्राप्त किया, वह बड़े-बड़े योगी भी नहीं पा सके। योगी तो आँखों को दबाकर, नाक-कान को विविध प्रकार से परेशान करके अनेकों प्रकार साधनाओं एवं न जाने कितना परिश्रम करता है तब कहीं जाकर मन शांत होता है। एकनाथ का मन तो गुरुसेवा से ही शांत हो जाता था। गुरु के स्मरण मात्र से उनका हृदय पवित्र हो जाता था और उस पावन हृदय ने हजारों-हजारों शिष्यों के हृदय को पवित्र किया।

संत एकनाथ के आश्रम में एक विधवा स्त्री का पुत्र रहता था। वह पूरणपूड़ी खाने का इतना शौकीन था कि लोग उसका वास्तविक नाम ही भूल गये थे और उसे पूरणपूड़ा के नाम से ही पुकारने लगे थे, यही उसका नाम रख लिया गया था। वह विशेष पढ़ा-लिखा न था परंतु वह सेवा और श्रद्धा के बल से गुरुकृपा का अधिकारी बन गया था।

संत एकनाथ के आश्रम में बहुत वैभव था, खूब धन-सम्पत्ति थी। उनका पुत्र काशी हो आया था, बड़ा विद्वान था। एकनाथजी उन दिनों कोई ग्रंथ लिख रहे थे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा :

''इस ग्रंथ की पूर्णाहुति कदाचित मैं न कर सकूँ, उससे पूर्व मेरा शरीर शांत हो जायेगा। आप लोग मेरे पुत्र को यह ग्रंथ पूरा

करने के लिए दे देना। परंतु मुझे आशा नहीं है कि वह इसे पूरा कर सकेगा, कारण कि वह मुझे पिता मानता है, गुरु नहीं मानता। शास्त्री हो गया है, विद्वान है। फलस्वरूप, बुद्धि की गुत्थियाँ बढ़ी हैं परंतु हृदय का प्रसाद वह झेल नहीं सका है। अतः मेरा ग्रंथ पूरा करने में वह समर्थ नहीं है। इसके बावजूद तुम प्रयास तो करना। जब बात उसके वश से बाहर हो जाय तब मेरे शिष्य पूरणपूड़ा को ग्रंथ पूरा करने के लिए दे देना।''

एकनाथजी के अंतरंग शिष्य यह सुनकर दंग रह गये। बोलेः

''गुरुजी ! यह आप क्या कह रहे हैं ? उसे भात नहीं भाता, दाल भली नहीं लगती, रोटी-खिचड़ी आदि नहीं भाती, हलवा तक अच्छा नहीं लगता। प्रतिदिन केवल पूरणपूड़ी ही खाता है। तिस पर बुद्धू है, तब वह यह ग्रंथ किस प्रकार पूरा कर सकेगा ?''

संत एकनाथ ने कहा : ''अन्य सभी विषयों में वह बुद्धू है परंतु गुरुभक्ति में वह सर्वप्रथम है। भले ही वह पढ़ने में अँगूठाछाप है परंतु गुणातीत मस्ती को झेलने की क्षमता को प्राप्त कर चुका है। उसके हृदय के द्वार खुल चुके हैं। द्वार ही क्या खुले हैं, पूरी दीवार की दीवार ही हट गयी है। गुरु के आदेश को वह पूरी तरह अपना लेता है। प्रसाद में मिले फल के छिलके व गुठली तक को वह बाहर नहीं फेंकता। गुरु की ओर से उसके पास जो कुछ भी आता है वह अमृतफल का मधुर रस बन जाता है। वास्तव में गुठली और छिलके जैसी कोई वस्तु उसके पास पहुँचती ही नहीं। गुरुकृपा उसे इतना अधिक पवित्र बना चुकी है कि वह ग्रंथ पूरा कर सकेगा।''

वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। पूरणपूड़ा, विधवा स्त्री का वह पुत्र जो पूरणपूड़ी खाने के शौक में अपनी बेढंगी आदत के कारण अपना नाम तक खो बैठा था, अपने एक दिव्य स्वभाव के कारण महत्त्वपूर्ण हो गया। उस पवित्र आदत में सभी बेढंगी आदतें दब गयीं। सद्गुरु के प्रेम का ऐसा प्रवाह उठा जिसमें उसकी समस्त मूर्खताएँ तिरोहित हो गयीं। अंततोगत्वा वह ग्रंथ उसीने पूरा किया।

ऐसे कितने ही अनपढ़ शिष्य तर गये, अनेकों मूर्ख शिष्य पार उतर गये और विद्वान गुरुभाई देखते ही रह गये।

शंकराचार्यजी का एक ऐसा शिष्य तर गया जिसे कुछ भी याद नहीं रहता था, जो कुछ भी पढ़ ही न सकता था परंतु शंकराचार्य के लिए मर सकता था, मिट सकता था, गुरु की कृपा को झेल सकता था। वह मंत्र और मंत्र के न्यासादि कुछ न जानता था, ज्ञान-ध्यान भी कुछ न आता था।

जिसे गुरुप्रसाद मिला हो, उसे न्यास-व्यास करने की माथापच्ची में पड़ने की आवश्यकता ही क्या है बाबा ! न्यास इत्यादि विधि-विधान की दासता तो वहीं तक रहती है जहाँ तक अहंकार रहता है। जिसने अपना मस्तक गुरुचरणों में रख दिया, उसे विधि-विधान करने की अनिवार्यता कहाँ रहती है ?

शंकराचार्यजी के चार मुख्य शिष्य हुए : सुरेश्वराचार्य, पद्मपादाचार्य, हस्तामलकाचार्य और तोटकाचार्य। इनमें तीन तो बड़े विद्वान थे परंतु चौथा तोटक निरा बुद्धू ही था।

वह पागल छोकरा न न्यास जानता था न विन्यास जानता था, न ब्रह्मसूत्र पढ़ सकता था और न उपनिषदों की व्याख्या ही कर सकता था।

एक बार शंकराचार्य तोटक की प्रतीक्षा कर रहे थे कि वह आ जाय तो पाठ आरंभ करें। तीनों विद्वान शिष्यों ने कहा :

''गुरुजी ! वह तो कुछ भी याद नहीं रख सकता, वह तो नितान्त बुद्धू है, मूर्ख है। उसकी राह क्या देखनी है ? आप तो हमें ही सिखाइये।''

शंकराचार्यजी से रहा न गया। उन्होंने कहा :

''भले ही वह लौकिक बुद्धि में बुद्धू है परन्तु अलौकिकता में ? तोटक... मेरा वह तोटक तुम सबसे पीछे ? तुम्हें वह बुद्धू दिखाई देता है पागलों ! ...अरे ओ तोटक... ! इन लोगों ने अब तक जितना पढ़ा है उसे गाते-गाते आ और अब जो पढ़नेवाले हैं वह सब भी

गुनगुनाता हुआ आ ! तोटक आ...''

तोटक के हाथ में तो बर्तन माँजने की राख थी परंतु तत्क्षण उसकी जीभ पर सरस्वती बैठ गयी।

**गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम्।**

गुरुप्रसाद....!

आत्मा का आनंद तो गुरु-परम्परा से मिलता है, गुरुप्रसाद से मिलता है। बुद्धिमत्ता से यह रस प्रकट नहीं हो सकता। पूछकर देखिए किसी वैज्ञानिक को। गुरुकृपा प्राप्त कर सत्शिष्य को जो स्वाद आता है वह स्वाद क्या कभी वह विज्ञान से प्राप्त कर सका है ? आप बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक को खोज लाइए अथवा बड़े-से-बड़े दार्शनिक को ले आइए और उनसे पूछिए कि सद्गुरु का कोई सत्शिष्य जो लुत्फ उठाता है उस मजे की जानकारी भी क्या आपको है ? सत्शिष्य जो आनंद लूटता है, चरमसीमा पर पहुँचा हुआ वैज्ञानिक भी उस आनंद से परिचित नहीं। विज्ञान के सभी साधन एकत्रित करके भी जो-जो सुख व्यक्ति ले सकता है वह गुरुकृपा से प्राप्त सुख के आगे नितान्त तुच्छ हैं। शिष्य के हृदय में जो सुख छा जाता है वह त्रैलोक्य के साम्राज्य से भी मिलना सुलभ नहीं। इसीलिए तुलसीदासजी ने कहा है :

**तीन टूक कौपीन की, भाजी बिना लूण।**<br>
**तुलसी हृदय रघुवीर बसे, तो इन्द्र बापड़ो कूण ॥**

इन्द्र का सुख क्या है ? अप्सराओं के नाच-गान में क्या सुख है ? अरे देवताओं पर भी आदेश चलाने का सुख क्या है ? जहाँ एक बार भीतर का सुख आया कि ये समस्त सुख फीके पड़ जाते हैं। देवताओं पर हुक्म चलाकर बहिर्मुख हो जाओगे। देवता यदि आदेश न मानें तो द्वेष होगा। आत्मा के आनंद में तो राग-द्वेष के लिए स्थान ही नहीं। वहाँ तो न कोई देवता है और न ही कोई आज्ञा देनेवाला। वहाँ तो परमदेव के साथ एकरूप हो रहे हैं। द्वैत के परदे फट रहे हैं और अद्वैत का आविर्भाव हो रहा है।

वे ज्ञानेश्वर महाराज धन्य हैं जिनका स्मरण करके हम लोग पवित्र हो जाते हैं। ऐसे संत महापुरुष धन्य हैं। यद्यपि उनकी देह तो विलीन हो गयी तथापि उनका व्यवहार, उनकी कृपा, उनके प्रसंगों को याद कर-करके आज भी हजारों-लाखों लोग पावन होते हैं। यदि ऐसे ही कोई संतपुरुष जीवन्त मिलें तो फिर पूछना ही क्या ? उनके आगे कोई सत्‌शिष्य बन जाय तो शेष ही क्या रहे ? ...और ऐसे शिष्यों के कारण ही भारत विश्व का गुरु बना है। वास्तव में स्वार्थी नेताओं के कारण, राजाओं अथवा सम्राटों के कारण विश्व के सम्मुख भारत का मस्तक ऊँचा है, ऐसा नहीं है। सद्‌गुरुओं के कारण और सत्‌शिष्यों के कारण भारत उन्नत है, समग्र विश्व में गुरुस्थान को प्राप्त किये हुए है।

इंग्लैण्ड लोहे और कोयले के लिए प्रसिद्ध है, अमेरिका डॉलर के लिए प्रसिद्ध है, इटली शिल्पकला के लिए प्रसिद्ध है और भारत आध्यात्मिक गुरुओं और संतों के लिए प्रसिद्ध है।

भारत में सत्‌शिष्य परिपक्व होते हैं और सत्‌शिष्य ही सद्‌गुरु बन सकते हैं। सद्‌गुरु ही सदुपदेश का दान कर सकते हैं। उपदेश बेचा नहीं जा सकता, उसका दान हो सकता है। इस कारण हम सद्‌गुरुओं के ऋणी रहते हैं। सद्‌गुरु का कर्जदार रहना विश्व का सर्वाधिक धनवान बनने से भी बड़े भाग्य की बात है।

आप लोग बड़े भाग्यशाली हैं।

मानव में जो छुपा हुआ है उसे मानव अभी तक विकसित नहीं कर सका। वेद-उपनिषद् पुकार रहे हैं, भक्तिशास्त्र पुराणादि पुकार-पुकारकर कह रहे हैं कि आप अमृतपुत्र हैं और आप अपनेको देह मान बैठे हैं। आपके बड़े भाग्य हैं कि अब आपने इस अमृतत्व के मार्ग पर कदम रखा है। अभी तो किनारे की झलक मिली है। इस आनंदसागर की शीतल लहरों को आप झेल सके हैं। इसके अमृतबिन्दु आपके हृदय में उतर रहे हैं। आप सब बहुत-बहुत भाग्यशाली हैं।

आपको जो अमृत की बूँदें मिली हैं वह महापुरुषों का कृपाप्रसाद है, मेरे सद्‌गुरु का कृपाप्रसाद है, भारतीय योग और वेदान्त का कृपाप्रसाद है। आप इसका संवर्धन करते रहें, इसे विकसित करते रहें, जीवन भर बढ़ाते ही जायें। इस संप्राप्त चिंगारी को फूँकते रहिये, कभी बुझने न दीजिएगा। एक दिन आयेगा जब इसमें से ही एक अमर ज्योत जगमगा उठेगी।

आपके हृदय में जो गुरुत्व उतर सका है उसे मेरे नमस्कार !

ॐ आनंद ! ॐ आनंद !! ॐ आनंद !!!

# नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्

संसार में माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि सम्बन्धों की तरह गुरु-शिष्य का सम्बन्ध भी एक सम्बन्ध ही है, परन्तु दूसरे सारे सम्बन्ध जीव के बन्धन बढ़ानेवाले हैं जबकि गुरु-शिष्य का सम्बन्ध सब बन्धनों से मुक्त करता है। इसलिए संसार में यदि कोई सार्थक सम्बन्ध है तो वह है गुरु-शिष्य का सम्बन्ध। यही एकमात्र ऐसा सम्बन्ध है जो दूसरे सब बन्धनों से मुक्ति दिलाकर अंत में स्वयं भी हट जाता है। जीव को स्वयं शिवस्वरूप का अनुभव कराकर मुक्त कर देता है। ऐसी परम मुक्तावस्था के बारे में कहा गया है :

**अत्र पिताऽपिता भवति माताऽमाता लोकाऽलोका देवाऽदेवा वेदाऽवेदाः । अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहाऽभ्रूणहा चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽतापसोऽनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वांच्छोकान् हृदयस्य भवति।**

'इस अवस्था में पिता पिता नहीं रहता, माता माता नहीं रहती, लोक लोक नहीं रहते, देव देव नहीं रहते, वेद वेद नहीं रहते। इस स्थिति में चोर चोर नहीं रहता, भ्रूणहत्यारा (गर्भस्थ शिशु का

हत्यारा) भ्रूणहत्यारा नहीं रहता, चाण्डाल चाण्डाल नहीं रहता, पौल्कस (शूद्र बाप से क्षत्रिय माँ द्वारा उत्पन्न पुत्र) पौल्कस नहीं रहता। श्रमण श्रमण नहीं रहता, तपस्वी तपस्वी नहीं रहता। इस स्थिति में उसे न तो पुण्य लगता है न ही पाप लगता है, क्योंकि वह सब शोकों से पार चला जाता है।'

(बृहदारण्यक उपनिषद् : ४.३.२२)

ऐसे अद्‌भुत पद पर आरूढ़ होने के लिए सद्‌गुरु के सान्निध्य की परम आवश्यकता है।

सद्‌गुरु अर्थात् कौन ? जिनके सान्निध्यमात्र से, जिनके दर्शनमात्र से तुम्हें अपने भूले हुए शिवस्वरूप की याद आ जाय, जिनकी आँखों में तुम्हें अपनी स्वयं की आँखों की आभा नजर आ जाय, जिनकी वाणी में तुम्हें अपने अंतरतम का मधुर संगीत गूँजता सुनायी पड़ जाय, जिनकी उपस्थिति से तुम्हारा जीवत्व पिघलने लगे और भीतर सोयी हुई विराट संभावना करवटें लेने लगे तथा जिनकी शरण में जाकर तुम अपना अहंकार विसर्जित करने को तैयार हो जाओ।

ऐसे सद्‌गुरु तुम्हारे भीतर साहस भरते हैं, तुम्हारा आत्म-विश्वास जगाते हैं, तुम्हें मार्ग बताते हैं जिस पर चलने को तुम सक्षम हो जाओ, अंतर्मुख होकर अनंत की यात्रा पर चल पड़ो और अंत में शाश्वत शांति और परम निर्भयता के मालिक बन जाओ।

गुरु के सान्निध्य से शिष्य के चित्त में मौलिक परिवर्तन होने लगता है। गुरु के चित्त में अपार शक्ति होती है क्योंकि **उनका चित्त सूक्ष्मता और व्यापकता की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ होता है**, जबकि शिष्य का चित्त अभी भौतिकता के पाश में फँसा हुआ होता है। शिष्य अभी अपने भीतर जिस ईश्वरत्व को नहीं देख सकता, उस ईश्वरत्व को गुरु की पारदर्शी दृष्टि देख लेती है। शिष्य को उसके ईश्वरत्व में जगने में गुरु सहायता करते हैं, संप्रेक्षण शक्ति की वर्षा करके शिष्य के रोम-रोम को पुलकित कर देते हैं।

मानव जाति का यह सौभाग्य है कि आज विश्वभर के वैज्ञानिक आध्यात्मिक रहस्यों की खोज करने में दिलचस्पी लेने लगे हैं। अनेक प्रकार के प्रयोग करके अध्यात्मशास्त्र को वैज्ञानिक ढंग से जाँचने और समझने के लिए प्रयत्नशील हैं।

मनुष्य की उपस्थिति का प्रभाव, उसके संकल्पों और कृत्यों का प्रभाव वनस्पति पर कैसा होता है यह जानने के लिए अनेक प्रयोग हुए हैं। एक कमरे में चार पौधों को चार गमलों सहित रखकर बारी-बारी से चार व्यक्तियों को उसके पास से गुजारा गया। चार में से एक व्यक्ति ने पूर्व संकेत के अनुसार एक पौधे को कुचलकर नष्ट कर दिया। बाकी के तीन पौधों पर अति संवेदनशील यंत्र लगा दिये गये थे, जो उनके सूक्ष्म संवेदनों को पकड़ते थे।

अब हर व्यक्ति को बारी-बारी से उन पौधों के पास फिर से भेजा गया। तीन व्यक्तियों के पास में से गुजरते समय पौधों पर कुछ भी प्रभाव नजर नहीं आया, परंतु जब पौधे को कुचलने वाले उस चौथे व्यक्ति को भेजा गया तो वे पौधे घबरा गये। इस घबराहट के संवेदनों को यंत्रों ने सुई द्वारा स्पष्ट रूप से बताया।

दूसरे एक प्रयोग में एक बगीचे के माली को दूसरे गाँव भेजा गया। बगीचे के पौधों पर लगे यंत्रों ने पौधों के भीतर बढ़ते हुए विषादपूर्ण कम्पनों को दर्शाया, जैसे माली के दूर जाने से पौधों को बड़ा दुःख हुआ हो। फिर जिस दिन माली ने बगीचे के पास आना आरंभ किया, उसी समय से यंत्रों ने पौधों के भीतर फैलते हुए हर्षोल्लास के आन्दोलनों को दर्शाना शुरू कर दिया।

चैतन्य की सुषुप्त अवस्था में रहती हुई वनस्पति पर अशिक्षित माली की चेष्टाओं का प्रभाव पड़ता है तो परम सूक्ष्म अवस्था में विचरण करते हुए सद्गुरु की अमृतमयी दृष्टि से शिष्य के अंदर सोयी हुई चैतन्य की चिंगारी सुलगकर विशाल प्रकाशपुंज बन जाय तो इसमें क्या आश्चर्य ?

एक्स-रे मशीन तुम्हारे पहने हुए कपड़े, तुम्हारी चमड़ी, स्नायु,

रक्त, मांस उन सबके आरपार जाकर हड्डियों के फोटो खींच लेती है। तुम्हारे भीतर जो अनन्त चैतन्य तत्त्व है, तुम्हारा जो वास्तविक स्वरूप है वह तुम्हें ज्ञात नहीं परंतु सद्गुरु को स्पष्ट रूप से ज्ञात है। वे अपनी करुणापूर्ण दृष्टि से उस वास्तविकता को देखने का मार्ग बनाते हैं। उनका अनुकरण करके उस मार्ग द्वारा आप भी अपनी वास्तविकता को जानना सीख सकते हैं। जिस आत्मदेव की मस्ती में सद्गुरु स्वयं डूबे हुए हैं उन आत्मदेव की झाँकी वे तुम्हें भी करा सकते हैं। सद्गुरु शिष्य को आप समान बना देते हैं। इसमें उनकी अमोघ संकल्पशक्ति काम करती है।

रूस के एक वैज्ञानिक फयादोव ने हजार मील दूर से अपने विचार दूसरे व्यक्ति तक बिना तार के संप्रेक्षित करने के सफल प्रयोग किये हैं। मास्को में बैठकर वहाँ से एक हजार मील दूर बसे हुए तिफलिस शहर में बैठे हुए व्यक्ति पर फयादोव ने बिना किसी यंत्र की सहायता के अपने विचार प्रवाहित किये। उसने अपने मन को एकाग्र करके उस दूर बैठे व्यक्ति को सोने के लिए 'सो जा... सो जा...' इस प्रकार संकेत (सजेशन्स) दिये। थोड़ी ही देर में वह व्यक्ति प्रगाढ निद्रा में सो गया। फिर फयादोव ने एकाग्रचित्त होकर 'पाँच मिनट में ही उठ जा... उठ जा...' इस प्रकार के विचार उसे जगाने के लिए भेजे। पाँच मिनट से पूर्व ही वह व्यक्ति एकदम चौंककर उठा और इधर-उधर देखने लगा।

मन और बुद्धि के घेरे में रहकर जीनेवाले मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी इतना हो सकता है, तो मन, बुद्धि और समग्र प्रकृति से परे ऐसे ब्रह्मस्वरूप में सुनिष्ठित, आधिभौतिकता जिनकी दृष्टि में विसर्जित हो गयी है ऐसे परम चैतन्य स्वरूप सद्गुरु द्वारा क्या नहीं हो सकता ?

**विश्व में यदि कोई महान से भी महान कार्य है तो वह है जीव को जगाकर उसे उसके शिवत्व में स्थापित करने का, प्रकृति की पराधीनता से छुड़ाकर उसको मुक्त बनाने का।** ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष

के सान्निध्य में यह कार्य स्वाभाविक रूप से हो जाया करता है। उपनिषद् कहते हैं :

**यद् यद् स्पृश्यति पाणिभ्यां यद् यद् पश्यति चक्षुषा।**
**स्थावरणापि मुच्यन्ते किं पुनः प्राकृताः जनाः ॥**

ब्रह्मज्ञानी महापुरुष ब्रह्मभाव से स्वयं के हाथों द्वारा जिनको स्पर्श करते हैं, आँखों द्वारा जिनको देखते हैं वे जड़ पदार्थ भी कालान्तर में जीवत्व पाकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं तो फिर उनकी दृष्टि में आए हुए व्यक्तियों के देर-सबेर होनेवाले मोक्ष के बारे में तो शंका ही कैसी ?

जीव अपने मूल स्वरूप में तो ब्रह्म ही है। अंदर-बाहर, ऊपर-नीचे सर्वत्र, भूत-भविष्य-वर्त्तमान में सदा एक ही चैतन्यदेव है। तो फिर जीव को उसका अनुभव क्यों नहीं होता ? आकाश स्वरूप व्यापक और सूक्ष्म एवं आनंदस्वरूप होते हुए भी जीव दुःखी क्यों है ?

पानी दो घटकों से बना है : हाइड्रोजन और ऑक्सीजन। ये दोनों वातावरण में हमेशा उपस्थित हैं फिर भी दोनों मिलकर पानी बनकर बरसता नहीं। वैज्ञानिक कहते हैं : इन दोनों के मिलकर पानी बनने में एक 'केटेलिक एजेन्ट' (उत्प्रेरक अभिकर्त्ता) की जरूरत पड़ती है और वह एजेन्ट है एक विद्युत प्रवाह। पानी का यह कोई तीसरा घटक नहीं है। फिर भी उसकी उपस्थिति अनिवार्य है।

उसी प्रकार जीव को उसके ब्रह्मस्वरूप का अनुभव करने में सद्गुरु की उपस्थिति चाहिए। सद्गुरु स्वयं तो अकर्त्ता हैं। **उनके सान्निध्यमात्र से जीव की जड़ता बिखरने लगती है और सच्चिदानन्द स्वरूप प्रगट होने लगता है।**

जब-जब साधक सच्चे हृदय से, श्रद्धाभाव से, एकाग्रतापूर्वक सद्गुरुदेव का ध्यान करता है, प्रेम से स्मरण करता है, तब दिव्य अन्तर्चक्षुवाले सद्गुरुदेव को तत्काल संवेदन होता है कि साधक

की ओर से प्रार्थना एवं उन्नत विचारधारा का प्रवाह बह रहा है और हृदय को स्पर्श कर रहा है। उसी समय, जैसे एक बर्तन में से दूसरे बर्तन में तेल की धारा बहती है वैसे, सद्गुरुदेव के करुणामय हृदय में से आध्यात्मिक विद्युत का सुमधुर झरना साधक के प्रति बहने लगता है और उसे आध्यात्मिक आनंद से पुष्ट करने लगता है।

## ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु : ईश्वर का साकार स्वरूप

जिस किसी भी स्थान में परमात्मा का श्रवण, कीर्तन, गुणानुवाद होता है वह स्थान पवित्र है। उस स्थान को तीर्थत्व प्राप्त होता है। वहाँ आनेवाला व्यक्ति पवित्र हो जाता है। भगवद्-गुणानुवाद से जब स्थान की इतनी महत्ता हो जाती है तो भगवद्-गुणानुवाद और कीर्तन करनेवाला कितना पवित्र होगा ! ...और जिसमें भगवत्तत्त्व प्रकट हुआ हो वह कितना पवित्र होगा ! कैसा मंगलकारी होगा ! अतएव, जिनसे हमें आध्यात्मिक शिक्षा मिलती है, आत्मोन्नति होती है, आत्मशांति मिलती है उनके पास अति नम्रता और भक्ति के साथ जाना चाहिए।

संसार में ऐसे उत्कृष्ट पुरुषों की संख्या अति अल्प है और है भी किन्हीं पवित्र जगहों पर, सर्वत्र नहीं। तथापि संसार ऐसे महापुरुषों से सर्वथा शून्य नहीं है। वे मानव जीवन के सुन्दरतम सुरभियुक्त फूल हैं और अहैतुक असीम दया के सागर हैं। भगवान श्रीकृष्ण भागवत में कहते हैं : ''मुझे ही आचार्य जानो।''

ऐसे सत्तत्त्व का बोध करानेवाले, अहैतुकी कृपा बरसानेवाले आचार्यों के रूप में, गुरुओं के रूप में भगवान स्वयं ही अवनि पर अवतरित होते हैं।

यह संसार ज्यों ही ऐसे करुणासिन्धु सद्गुरुओं से बिल्कुल रहित हो जाता है, त्यों ही यह एक भयंकर नरककुण्ड बन जाता है और विनाश की ओर द्रुत गति से अग्रसर होता है।

साधारण गुरुओं से श्रेष्ठ एक और श्रेणी के गुरु होते हैं। वे हैं इस पृथ्वी पर ईश्वर का, ब्रह्म का साकार अवतार। वे केवल स्पर्श से, प्रसाद के आदान-प्रदान से, कथन से, दृष्टिपात से, यहाँ तक कि संकल्प मात्र से घोर नास्तिक को भी आध्यात्मिकता प्रदान कर सकते हैं। उनकी केवल इच्छामात्र से पतित-से-पतित व्यक्ति भी तुरंत साधु हो जाता है। वे गुरुओं के भी गुरु हैं। वे मनुष्य की देह में विराजित, मनुष्य के माध्यम से ईश्वर की सर्वोच्च अभिव्यक्ति हैं। उनके माध्यम के बिना, उनके करुणा-कृपाकटाक्ष के बिना, कदम-कदम पर उनकी सहायता के बिना हम अन्य किसी कठोर से कठोर प्रयत्न या उपाय से भी परमात्मा को पा नहीं सकते। वास्तव में वे ही परमात्मा हैं। हम उनकी उपासना किये बिना रह नहीं सकते। ब्रह्माण्ड भर में वे ही एकमात्र ऐसे हैं जिनकी कल्याणकारी, मोक्षप्रद उपासना किये बिना हम रह नहीं सकते। उनसे प्रेम करने के लिए हम परवश हो जाते हैं। वे अनंत प्रेम के भंडार हैं... सुख के दरिया हैं... आनंद के सागर हैं। करुणा उनकी जीविका है। प्रेम उनका श्वास है।

मानव देह में परमात्मा की इस अभिव्यक्ति के माध्यम के बिना कोई भी मनुष्य परमात्म-दर्शन नहीं कर सकता। जब हम किसी अन्य साधन की सहायता के द्वारा परमात्म-दर्शन का यत्न करते हैं तब हम अपने मन के भीतर परमात्मा का एक काल्पनिक रूप गढ़ लेते हैं और उसको ईश्वर के समकक्ष गिनकर उस मन-गढ़ंत रूप की पूजा-उपासना और तादात्म्य में लग जाते हैं। इस भयानक अनर्थपूर्ण खतरे से बचने के लिए ईश्वर की उपासना मनुष्य के रूप में की जा सकती है और मानवता में व्यक्त ईश्वरत्व को सद्‌गुरु के रूप में ही सफलता से भजा जा सकता है। यह त्रिकालाबाधित सत्य है। कुदरत का यह कानून है। आज नहीं तो कल छुरे की नोक पर भी तुम्हें उसे स्वीकारना ही पड़ेगा।

हम मनुष्य हैं। मनुष्यत्व की मान्यताओं में अपने को जकड़े हुए हैं। मनुष्यत्व से उच्चतर स्वरूप में परमात्मा को समझने में

उसका तात्त्विक ज्ञान पाने में हम समर्थ नहीं हैं। जब हम अपनी मानवीय प्रकृति से ऊपर उठकर गुणातीत अवस्था में पहुँचेंगे तब परमात्मा को तत्त्व रूप में पहचान सकेंगे। तब तक हमें मनुष्य के रूप में ही परमात्मा की उपासना करनी होगी।

ईश्वर के स्वरूप के बारे में कोई चाहे कितनी ही लम्बी-चौड़ी बातें करे, अपनी कल्पना और भावना को कितना ही विस्तृत करे, पर वह अपनी मानुषी कल्पना से आगे नहीं जा सकता। कोई चाहे ईश्वर और संसार पर लम्बे-चौड़े विद्वत्तापूर्ण वक्तृत्व दे डाले, बड़ा युक्तिवादी बनकर ईश्वरावतार का खंडन करे, उपासना की अर्थहीनता सिद्ध करे किन्तु यह सब केवल शब्दों का ढेर, बुद्धि की व्यर्थ कसरत मात्र है।

किसीको अवतार और उपासना के विरुद्ध अपना डिमडिम बजाता देखो तो उसके पास जाकर खोजना कि परमात्मा के विषय में उसकी धारणा क्या है। 'निराकार... सर्वव्यापी... सर्वशक्तिमान...' आदि शब्दों के लक्ष्यहीन उपयोग के अलावा उसे न कोई ज्ञान है न अनुभूति। वास्तव में वह कुछ नहीं समझता। उन बड़े-बड़े शब्दों के विषय में उसकी अपनी मानुषी प्रकृति से प्रभावित न हो ऐसा कोई अर्थ वह नहीं जानता। इस तथ्य में तो उसमें और रास्ते चलनेवाले एक अनपढ़ गँवार में कुछ भेद नहीं। अगर कुछ भेद है तो केवल यही कि वह गँवार कम से कम शांत तो रह सकता है ... संसार की शांति को भंग तो नहीं करता !

समाज में, राष्ट्र में, विश्व में शिक्षित व्यक्ति नये-नये आविष्कार कर सकता है, सुख-सुविधा, भोग-विलास की सामग्रियाँ इकट्ठी कर सकता है। अगर वह दीक्षित नहीं है, सद्गुरु की करुणापूर्ण दृष्टि से पूरित नहीं है, ईश्वर को, निराकार ब्रह्म को साकार रूप में सद्गुरु में प्रतिष्ठित देख नहीं सकता तो वह शिक्षित व्यक्ति विश्व में सबसे ज्यादा खतरा पैदा कर सकता है। एक जगह

पर बटन दबाने से ही करोड़ों का नरसंहार कर डालने की क्षमता का विकास इन्हीं शिक्षितों ने किया जो दीक्षित नहीं थे। आज वे ही लोग इन साधनों का, उपकरणों का आविष्कार करके पछताते हैं कि न जाने कौन इनका उपयोग कर बैठेगा और मानव जाति को भीषण दुःख सहना पड़ेगा।

परमात्म-तत्त्व में दृढ़ विश्वास और साकार सद्गुरु में अव्यभिचारिणी भक्ति ही सुख-शांति और दिव्यता का प्रकाश देती है। इस विषय में सहज, निर्मल बुद्धि जितनी आवश्यक है उतनी और कोई योग्यता या बाह्य आडम्बर आवश्यक नहीं।

दो प्रकार के लोग मनुष्य के रूप में ईश्वर की उपासना नहीं करते। एक तो वे नरपशु जिन्हें धर्म का कोई ज्ञान ही नहीं है। वे लोग आहार, निद्रा, भय, मैथुन के अलावा अपना कोई कर्त्तव्य न समझते हैं न समझने की उन्हें जिज्ञासा ही है। दूसरे हैं वे परमहंस जो मानव जाति की सारी दुर्बलताओं से ऊपर उठ चुके हैं, अपनी मानवीय प्रकृति की सीमा से परे चले गये हैं। उनके लिए सारी प्रकृति आत्मस्वरूप हो गयी है। देह में रहते हुए भी वे देहातीत, गुणों में बर्तते हुए भी गुणातीत भूमिका में विचरते हैं। वे ही ईश्वर को उसके वास्तविक स्वरूप में भज सकते हैं।

इस प्रकार अतिशय मूढ़ अज्ञानी और परम ज्ञानी, दोनों ही उपासना नहीं करते। अज्ञानी मूढ़ नरपशु अज्ञानवश उपासना नहीं करता और जीवन्मुक्त ज्ञानी अपने-आपमें ही परमात्मा का अनुभव करने के कारण उपासना नहीं करता। इन दो चरम विरोधाभासी अवस्थाओं के बीच रहनेवाला कोई मनुष्य आकर कहे कि 'भगवान को मनुष्य रूप में, गुरु के रूप में भजने को मैं तैयार नहीं हूँ' तो उस पर रहम करना। वह दया का पात्र है। वह थोथी बकवास करनेवाला है। उसका धर्म अविकसित और खोखला है। – स्वामी विवेकानन्द

❀

# गुरु में भगवद्बुद्धि

भगवान में तो श्रद्धा हो जाती है परंतु गुरु में श्रद्धा होनी बहुत कठिन है। लाखों मनुष्यों में कोई एक ही होगा, जो गुरु में कुछ भी दोष न देखेगा। जब तक गुरु में श्रद्धा नहीं होगी तब तक कुछ नहीं होगा।

गुरु में जब तक भगवद्बुद्धि नहीं की जाती, तब तक संसारसागर से पार नहीं हुआ जा सकता। गुरु में मनुष्यबुद्धि होना ही पाप है। 'गुरु और भगवान में बिल्कुल भेद नहीं है...' यही मानना कल्याणकारी है और इसी भाव से भगवान मिलते हैं।

यदि मनुष्य को प्रेमी, निःस्वार्थी, उदारप्रकृति, निरभिमान, श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु प्राप्त हों तो उनके ही चरणकमलों में आत्मसमर्पण कर देना उसका मुख्य कर्त्तव्य है।

गुरु और ईश्वर की कृपा प्राप्त किया हुआ भक्त भी प्रारब्धवश श्रद्धाहीन, दुर्बुद्धि या अभिमानी होने पर उनकी कृपा से वंचित हो जाता है।

उत्तम शिष्य चिन्तन करने से गुरु की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं, मध्यम शिष्य दर्शन करने से और कनिष्ठ शिष्य प्रश्न करने से शक्ति प्राप्त करते हैं। हमारे यहाँ गुरु से प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं मानी जाती। गुरु की सेवा करे और उनका चिन्तन करे। जब गुरु में अनुराग है, गुरु हमारे हैं तो उनके गुण हमारे हैं ही।

आज कल लोग गुरुसेवा तो करते नहीं फिर भी चाहते हैं कि हमें विद्या आ जाय। ऐसा भला कैसे हो सकता है ? गुरुसेवा के बिना तो कुछ भी नहीं सीखा जा सकता। पहले के समय में लोग इतने पढ़ते नहीं थे, जितनी गुरुसेवा करते थे। इसीसे उन्हें सब प्रकार की विद्याएँ प्राप्त हो जाती थीं। आज कल के बड़े-से-बड़े पढ़े-लिखे भी उन गुरुभक्तों के सामने कुछ नहीं हैं। उन्हें गुरुसेवा से जो चीज मिलती थी वह इन्हें प्राप्त नहीं हो सकती। गुरु के आशीर्वाद से ही उन्हें

आज कल शिष्य को गुरु में दृढ़ ईश्वर-भावना नहीं होती, इसीसे उसे गुरु के सिवा किसी अन्य इष्ट की आवश्यकता होती है। यदि गुरु में शिष्य की सुदृढ़ ईश्वर-भावना हो तो उसे ईश्वरोपासना की भी आवश्यकता नहीं होगी। गुरु की सेवा से ही उसे ईश्वर की प्राप्ति हो जायेगी।

## नीर-क्षीर विवेक

जगत की बाराक्षरी (एकड़िया) पढ़ाते हों, भूत-प्रेत के, मारण-वशीकरण के मंत्र सिखाते हों, भविष्य में भगवान दिखाते हों, स्वर्ग की सीढ़ियाँ चढ़ाते हों - ऐसे गुरु बहुत होते हैं। उनमें से कितनों को तो भगवान शंकर ने 'श्रीगुरुगीता' में झाड़ा (फटकारा) है। (श्लोक : १०२ से १०७ तथा १५८, १५९, १६७, १७४, १९८, १९९ इत्यादि।)

ऐसे गुरुओं के वाग्जाल में फँसनेवाले साधक का उद्धार नहीं हो सकता। जिनको ब्रह्म-साक्षात्कार हुआ हो, जो शिष्य के सर्व संशयों को छिन्न-भिन्न कर उसे आत्म-साक्षात्कार करा दें ऐसे श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ सच्चे सद्गुरुओं की छत्रछाया प्राप्त करनेवाले साधक ही इस संसारसागर से पार हो सकते हैं।

सद्गुरुओं के नाम पर तथाकथित गुरुओं ने ही समाज को तथ्यों से वंचित रखा है। कोई-कोई ही ऐसे विरले होते हैं जो ऐसे तथाकथित गुरुओं द्वारा रचित मत-पंथ-वाड़े में से अपनी जीवन-नौका को बचाकर ब्रह्मवेत्ताओं के सान्निध्य में पहुँच जाते हैं।

## संतवाणी

जैसी प्रीति कुटुम्ब से तैसी गुरु से होय।
कह कबीर तां दास को पला न पकड़े कोय ॥

– संत कबीर

जन रज्जब गुरु की दया दृष्टि परापति होय।
परगट गुप्त पहचानिये जिसहिं न दीखै कोई।।
– संत रज्जब

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।
गुरु पदरज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिअ दृगदोष विभंजन।।
गुरु बिन भवनिधि तरहिं न कोई।
जो बिरंचि शंकर सम होई।।
– संत तुलसीदास

गुरु समीप पुनि करिये बासा, जो अति उत्कट ह्वे जिज्ञासा।
गुरु मूरति को हिय में ध्याना धारै जो चाहे कल्याना।।
मन की जानै सब गुरु, कहाँ छिपावै अंध।
सद्गुरु सेवा कीजिये, सब कट जावे फंद।।
– निश्चलदासजी ('विचारसागर')

सगे सम्बन्धी स्वार्थ के हैं, स्वार्थ का संसार है।
निःस्वार्थ सद्गुरुदेव हैं, सच्चे वही हितकार हैं।।
ईश्वरकृपा होवे तभी, सद्गुरु–कृपा जब होय है।
सद्गुरु कृपा बिन ईश भी, नहीं मैल मन की धोय है।।
सद्गुरु जिसे मिल जाय सो ही, धन्य है जग मन्य है।
सुर सिद्ध उसको पूजते, ता सम न कोउ अन्य है।।
अधिकारी हो गुरुदेव से, उपदेश जो नर पाय है।
भोला तरे संसार से, नहीं गर्भ में फिर आय है।।
निर्जीव सारे शास्त्र सच्चा मार्ग ही दिखलाय हैं।
दृढ़ ग्रंथि चिज्जड़ खोलने की युक्ति नहीं बतलाय हैं।

निस्संग होने के सबब से ईश भी रुक जाय है।
गुरु गाँठ खोलन रीति तो गुरुदेव ही बतलाय हैं॥
छुड़वायकर सब कामना कर देय हैं निष्कामना।
सब कामनाओं का बता घर पूर्ण करते कामना।
मिथ्या विषयसुख से हटा सुखसिन्धु देते हैं बता।
सुखसिन्धु जल से पूर्ण अपना आप देते हैं जता॥

– भोले बाबा

नानक सत्गुरु भेटिया मैल जनम जनम दे लत्थे।
औखी घड़ी न देखण देवई सत्गुरु अपना बिरुद संभालै॥

– नानकदेव

ईश्वर तै गुरु में अधिक धारै भक्ति सुजान।
बिन गुरु भक्ति प्रवीन हूँ लहै न आतम ज्ञान॥
हरि हर आदिक जगत में पूज्य देव जो कोय।
सद्गुरु की पूजा किए सबकी पूजा होय॥

– विचारसागर (वेदान्तग्रंथ)

''भक्त जब एक निश्चित सोपान तक पहुँचता है और बोध (ज्ञान) का अधिकारी बनता है तब जिसकी वह भक्ति करता है वही भगवान गुरु के हृदय में बोलते हैं और उसको मार्गदर्शन देते हैं। गुरु उन्हें यह कहने के लिए ही आते हैं कि 'भगवान तेरे अंदर हैं। भीतर गोता मार और उसे जान ले।' भगवान, गुरु और आत्मा एक ही हैं।

गुरुकृपा तो हमेशा होती है। तुम ऐसी कल्पना करते हो कि वह एक ऐसी चीज है जो कहीं दूर, ऊँचे आसमान में है और वह उतरेगी। सचमुच वह तुम्हारे हृदय में है। जिस क्षण तुम मन को उसके अधिष्ठान में विलीन कर देते हो, उसी क्षण तुम्हारे भीतर से गुरुकृपा का फव्वारा छूटता है।''

– श्री रमण महर्षि

''हे रामजी ! चाण्डाल के घर से दिन में एक बार भी भिक्षा मिल जाय और साथ-साथ ब्रह्मज्ञान का सत्संग मिलता हो, ब्रह्मवेत्ता

का सान्निध्य मिलता हो तो अन्य ऐश्वर्य को छोड़कर भी ऐसे सत्पुरुषों का संग करना चाहिए क्योंकि 'स्वरूपज्ञान' से वंचित रखनेवाली यह अविद्या आधी तो उनके सान्निध्य मात्र से ही दूर हो जाती है। अविद्या का चौथा भाग प्रणव के जाप से और शेष चौथा भाग सत्शास्त्रों के चिंतन से दूर हो जाता है।'' – **महर्षि वशिष्ठ**

''बारह कोस चलकर जाने से भी यदि ऐसे सत्पुरुष के दर्शन मिलते हों तो मैं पैदल चलकर जाने के लिए तैयार हूँ क्योंकि ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष के दर्शन से कैसा आध्यात्मिक खजाना मिलता है वह मैं अच्छी प्रकार से जानता हूँ।'' – **स्वामी विवेकानन्द**

''किसान चाहे कितनी भी खेती करे, खाद डाले, बीज बोए, पानी देवे, परंतु जब तक सूर्य का प्रकाश नहीं मिलता तब तक सब व्यर्थ है, ऐसे ही मनुष्य चाहे कितना भी जप-तप करे, यम-नियमों का पालन करे परन्तु जब तक सद्गुरुरूपी सूर्य का आत्म-प्रकाश नहीं मिलता तब तक सब व्यर्थ है।'' – **स्वामी रामतीर्थ**

''मेरे गुरु कलालखाने जाते हों तो भी मेरे गुरु नंदराय हैं।''

– **रामकृष्ण परमहंस**

''वे गुरु गुरु नहीं हैं जो शिष्य को हमेशा के लिए शिष्य ही बनाए रखना चाहते हैं। सद्गुरु वे ही हैं जो शिष्य को जीवत्व से हटाकर शिवत्व में जगा दें, शिष्यत्व से हटाकर गुरुत्व में जगा दें, आत्मज्ञान का अमृत-सिंचन करके निर्विषय सुख में सैर करा दें, ध्यान और ज्ञान की अमृतधारा में नहलाकर परम पद का अमृत-प्रसाद दें।''

– **संत श्री आसारामजी बापू**

# भागवत में संत-महिमा

**नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।**
**ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥**

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया॥
यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एवं गोखरः॥

केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते और केवल मिट्टी या पत्थर की प्रतिमाएँ ही देवता नहीं होतीं। संत पुरुष ही वास्तव में तीर्थ और देवता हैं, क्योंकि तीर्थ और प्रतिमा का बहुत समय तक सेवन किया जाय, तब वे पवित्र करते हैं परंतु संत पुरुष तो दर्शनमात्र से ही कृतार्थ कर देते हैं।

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाणी और मन के अधिष्ठातृ देवता उपासना करने पर भी पाप का पूरा-पूरा नाश नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी उपासना से भेदबुद्धि का नाश नहीं होता, वह और भी बढ़ती है। परंतु यदि घड़ी-दो-घड़ी भी ज्ञानी महापुरुषों की सेवा की जाय तो वे सारे पाप-ताप मिटा देते हैं, क्योंकि वे भेदबुद्धि के विनाशक हैं।

जो मनुष्य वात, पित्त और कफ, इन तीन धातुओं से बने हुए शवतुल्य शरीर को ही आत्मा, अपना 'मैं' तथा स्त्री-पुत्र आदि को ही अपना तथा मिट्टी, पत्थर, काष्ठ आदि पार्थिव विकारों को ही इष्टदेव मानता है तथा जो केवल जल को ही तीर्थ समझता है, ज्ञानी महापुरुषों को नहीं, वह मनुष्य होने पर भी पशुओं में भी नीच गधा ही है।

(भागवत : १०.८४.११, १२, १३)

# धन्य है उन गुरुभक्तों को !

जो साधक तथाकथित अधूरे गुरुओं के जाल से बचकर सच्चे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु को पूर्ण परमात्मस्वरूप जानकर हृदय के पवित्र भाव से उनकी सेवा-भक्ति करते हैं वे साधक आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। सद्गुरु की जो सेवा करते हैं वे सम्पूर्ण विश्व की सेवा करते हैं। नम्रता और प्रेम से, अहंकार और उकताए बिना की हुई गुरुदेव की सेवा से साधक के हृदयमंदिर में आत्मज्ञान का प्रकाश जगमगा उठता है। आओ, ऐसे कुछ सत्‌शिष्यों की पावन कथाओं का रसपान करें।

## *।। आरूणि ।।*

प्राचीन काल में एक आयोद धौम्य नाम के ऋषि थे। उनके सुरम्य पवित्र आश्रम में बहुत शिष्य रहते थे। उनमें एक आरूणि नाम का शिष्य बड़ा ही नम्र, सेवाभावी और आज्ञापालक था। एक बार खूब वर्षा हुई। गुरु ने आरूणि को आश्रम के खेतों की देखभाल के लिए भेजा। आरूणि ने खेत में जाकर देखा कि खेत का पानी तो सीमा तोड़कर सब बाहर निकला जा रहा है। थोड़ी देर में तो सब पानी खेत की सारी पाल को तोड़ देगा और मिट्टी बह जायेगी।

आरूणि ने कमर कसी। जहाँ से पानी निकल रहा था वहाँ मिट्टी डालना शुरू किया परंतु पानी का वेग सब मिट्टी बहा ले जाता। आखिर आरूणि स्वयं ही उस टूटी हुई सीमा में पानी रोकने के लिए लेट गया। उसके शरीर के अवरोध के कारण बहता पानी तो रुक गया, परन्तु ऐसे उसे सारी रात ठंडे पानी में लेटे रहना पड़ा। इस प्रकार उसने खेत की पूरी देखभाल की।

प्रातःकाल हुआ। आश्रम के सब शिष्य जब गुरुदेव को प्रणाम करने गये तब उनमें आरूणि दिखा नहीं। गुरु शिष्यों को साथ लेकर आरूणि को ढूँढ़ने खेत की ओर गये और पुकार लगाई :

''आरूणि... ! आरूणि... !!''

आरुणि ने गुरु की आवाज सुनी। उसका शरीर तो ठंड से ठिठुर गया था, आवाज दब गयी थी। फिर भी वह उठा और गुरुदेव को प्रणाम करके बोला : ''क्या आज्ञा है गुरुदेव ?''

गुरु आयोद धौम्य का हृदय भर आया। शिष्य की सेवा देखकर उनका गुरुत्व छलक उठा। आरुणि के हृदय में ज्ञान की ज्योति जलाते हुए वे बोले :

''बेटा ! तू पढ़े बिना ही सब शास्त्रों में निपुण हो जायेगा।''

गुरुभक्ति द्वारा आरुणि के अंतर में शास्त्रों का ज्ञान अपने-आप प्रगट होने लगा। गुरु ने उसका नाम उद्दालक रखा। धन्य है गुरुभक्त आरुणि !

**तू मुझे उर आँगन दे दे, मैं अमृत की वर्षा कर दूँ।**

## ।। उपमन्यु ।।

आयोद धौम्य का दूसरा एक शिष्य उपमन्यु था। गुरु ने उसे गायें चराने की सेवा दी। उपमन्यु सारा दिन गायें चराता और शाम को गायों के साथ आश्रम पहुँच जाता। उसका शरीर हृष्टपुष्ट देखकर गुरु ने एक दिन पूछा :

''बेटा ! तू रोज क्या खाता है ?''

उपमन्यु : ''गुरुदेव ! भिक्षा में मुझे जो मिलता है वह खाता हूँ।''

गुरु : ''यह तो अधर्म है। भिक्षा गुरु को अर्पण किये बिना तो नहीं खाना चाहिए।''

**गुरु से कपट मित्र से चोरी।**
**या होइ निर्धन या होइ कोढ़ी ।।**

दूसरे दिन से उपमन्यु गायों को जंगल में छोड़कर, गाँव से भिक्षा माँगकर ले आता और गुरुदेव के चरणों में अर्पित कर देता। गुरुदेव सारी भिक्षा रख लेते और उसे कुछ नहीं देते। कुछ दिन बाद उपमन्यु को ऐसा ही तन्दुरुस्त देखकर गुरु ने पूछा तो उसने बताया :

''गुरुदेव ! एक बार माँगकर भिक्षा आपके चरणों में अर्पित कर देता हूँ। फिर, दूसरी बार माँगकर स्वयं खा लेता हूँ।''

गुरु : ''दो-दो बार भिक्षा माँगने से गृहस्थियों का हक मारा जाता है। यह तो उचित नहीं।''

गुरुदेव की यह आज्ञा भी उपमन्यु ने आदरपूर्वक स्वीकार की। कुछ दिन बाद फिर उपमन्यु को उसके निर्वाह के बारे में पूछा तो वह बोला : ''प्रभु ! मैं गायों का दूध पीकर निर्वाह कर लेता हूँ।''

गुरु : ''यह तो अधर्म है। गुरु की गायों का दूध गुरु की आज्ञा के बिना पी लेना तो चोरी हो गयी। ऐसा मत करो।''

दूध पीना बंद होने के बाद भी उपमन्यु को तन्दुरुस्त देखा तो फिर गुरु ने बुलाया। पूछने पर उपमन्यु बोला :

''गाय का दूध जब बछड़े पीते हैं तब थोड़ा फेन बाहर आता है। मैं उसे ही चाटकर संतोष कर लेता हूँ।''

गुरु : ''बेटा ! तुमको ऐसा करते देखकर तो बछड़े ज्यादा फेन बाहर छोड़ते होंगे और स्वयं भूखे रह जाते होंगे। ऐसा करना तुम्हारे लिए योग्य नहीं है।''

अब उपमन्यु के लिए भोजन के सब रास्ते बन्द हो गये। परन्तु गुरु के प्रति अहोभाव और श्रद्धा में लेशमात्र भी फर्क नहीं पड़ा। गुरु द्वारा सौंपी गयी सेवा चालू रही। बहुत भूख लगती तो कभी किसी वृक्ष या वनस्पति के पत्ते चबा लेता।

एक बार क्षुधापीड़ित उपमन्यु भूल से आक के पत्ते खा गया और अपनी आँखें खो बैठा। रास्ता न दिखने के कारण वह एक कुएँ में गिर पड़ा।

### वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।

शिष्य के कल्याण के लिए, उसके जीवन को गढ़ने के लिए बाहर तो वज्र से भी कठोर दिखनेवाले और भीतर से फूल से भी कोमल कृपालु गुरुदेव ने जब गायों के पीछे उपमन्यु को लौटता हुआ नहीं देखा तो उसे ढूँढ़ने के लिए स्वयं जंगल की ओर चल

पड़े। 'उपमन्यु... ! बेटा उपमन्यु... !' की पुकार जंगल में गूँज उठी।

(हे उपमन्यु ! तू धन्य है। हजारों भक्त पूजा के समय जिन्हें पुकारते हों वे गुरु तुझे पुकार रहे हैं। धन्य है तेरी सेवा !)

गुरु के मुख द्वारा अपने नाम का उच्चार सुनकर कुएँ में से उपमन्यु ने उत्तर दिया। कुएँ के पास आकर गुरु ने सारी हकीकत जानी और आँखों के उपचार के लिए देवों के वैद्य अश्विनीकुमारों की स्तुति करने के लिए उपमन्यु को कहा। उपमन्यु की स्तुति से तुरंत वहाँ अश्विनीकुमार प्रकट हुए और उसे आँखों की दवा के रूप में कोई मिठाई खाने को दी। उपमन्यु बोला :

''अब मुझसे गुरु की आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं खाया जायेगा।''

अश्विनीकुमार : ''यह तो दवाई है। इसे लेने में कोई हर्ज नहीं है। तुम्हारे गुरु की भी एक बार ऐसी ही अवस्था हुई थी, तब उन्होंने भी खा ली थी।''

उपमन्यु ने नम्र भाव से कहा : **''मेरे गुरुदेव क्या करते हैं यह मुझे नहीं देखना है। मुझे तो वे जैसा कहते हैं तदनुसार मानना है।''**

अश्विनीकुमार प्रसन्न हुए। उन्होंने उपमन्यु की आँखें ठीक कर दीं। उपमन्यु कुएँ से बाहर आया और सब वृत्तांत कहकर गुरुदेव के चरणों में गिर पड़ा। गुरुदेव का हृदय भर आया और उनके मुखारविन्द से अमृत-वचनों के रूप में आशीर्वाद निकल पड़े : ''बेटा ! तू वेद-वेदांग का ज्ञाता, धर्मावलंबी और महान पंडित बनेगा।''

हुआ भी ऐसा ही। लाख-लाख वन्दन हो, बाहर से कठोर दिखते हुए भी अन्दर से शिष्य का कल्याण करनेवाले ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुओं को ! धन्य है ऐसी कठोर कसौटी में भी अडिग रहकर प्रतिकार न करनेवाले एवं गुरु द्वारा मिलनेवाले आध्यात्मिक अमृत को पचाकर पार हो जानेवाले उपमन्यु जैसे सत्शिष्यों को !

## ।। बाबा फरीद ।।

पाकिस्तान में बाबा फरीद नाम के एक फकीर हो गये । वे अनन्य गुरुभक्त थे । गुरुजी की सेवा में ही उनका सारा समय व्यतीत होता था ।

एक बार उनके गुरु ख्वाजा बहाउद्दीन ने उनको किसी खास काम के लिए मुलतान भेजा । वहाँ उन दिनों में शाह शम्सतबरेज के शिष्यों ने अपने गुरु के नाम का एक दरवाजा बनाया था और घोषणा की थी कि आज इस दरवाजे से जो गुजरेगा वह जरूर स्वर्ग में जायेगा । हजारों फकीर और गृहस्थ आज इस दरवाजे से गुजर रहे थे । नश्वर शरीर का त्याग होने के बाद स्वर्ग में स्थान मिलेगा ऐसी सबको आशा थी । फरीद को भी उनके मित्र फकीरों ने दरवाजे से गुजरने के लिए खूब समझाया, परंतु फरीद तो उनको जैसे-तैसे समझा-पटाकर अपना काम पूरा करके, बिना दरवाजे से गुजरे ही अपने गुरुदेव के चरणों में पहुँच गये ।

सर्वान्तर्यामी गुरुदेव ने उनसे मुलतान के समाचार पूछे और कोई विशेष घटना हो तो बताने के लिए कहा । फरीद ने शम्सजी के दरवाजे का वर्णन करके सारी हकीकत सुना दी ।

गुरुदेव बोले : "मैं भी वहाँ होता तो उस पवित्र दरवाजे से गुजरता । तुम कितने भाग्यशाली हो फरीद, कि तुमको उस पवित्र दरवाजे से गुजरने का सुअवसर प्राप्त हुआ !"

सद्‌गुरु की लीला बड़ी अजीबोगरीब होती है । शिष्य को पता भी नहीं चलता और वे उसकी कसौटी कर लेते हैं ।

फरीद तो सत्‌शिष्य थे । उनको अपने सद्‌गुरुदेव के प्रति अनन्य भक्ति थी । गुरुदेव के शब्द सुनकर वे बोले :

"कृपानाथ ! मैं तो उस दरवाजे से नहीं गुजरा । मैं तो केवल आपके दरवाजे से ही गुजरूँगा । एक बार मैंने आपकी शरण ली है तो अब और किसीकी शरण मुझे नहीं जाना है ।"

यह सुनकर ख्वाजा बहाउद्दीन की आँखों में प्रेम उमड़ आया ।

शिष्य की दृढ़ श्रद्धा और अनन्य शरणागति देखकर उसे उन्होंने छाती से लगा लिया। उनके हृदय की गहराई से आशीर्वादात्मक शब्द निकल पड़े :

''फरीद ! शम्सतबरेज का दरवाजा तो केवल एक ही दिन खुला था, परंतु तुम्हारा दरवाजा तो ऐसा खुलेगा कि उसमें से जो हर गुरुवार को गुजरेगा वह सीधा स्वर्ग में जायेगा।''

आज भी पश्चिमी पाकिस्तान के पाक पट्टन कस्बे में बने हुए बाबा फरीद के दरवाजे में से हर गुरुवार को गुजरकर हजारों यात्री अपने को धन्यभागी मानते हैं। यह है गुरुदेव के प्रति अनन्य निष्ठा की महिमा !

धन्यवाद है ऐसे बाबा फरीद जैसे सत्‌शिष्यों को कि जिन्होंने सद्‌गुरु के हाथों में अपनी जीवन की बागडोर हमेशा के लिए सौंप दी और निश्चिंत हो गये !

## ।। संत एकनाथ ।।

संत एकनाथ देवगढ़ राज्य के दीवान श्री जनार्दन स्वामी के शिष्य थे। १० वर्ष की छोटी उम्र में ही उन्होंने श्रीगुरुचरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया था। वे गुरुदेव के कपड़े धोते, पूजा के लिए फूल लाते, गुरुदेव भोजन करते तब पंखा झलते, गुरु के पुत्रों की देखभाल करते, उनके नाम आये हुए पत्र पढ़ते और गुरु के संकेत अनुसार उनका जवाब देते। ऐसे एवं अन्य भी कई प्रकार के छोटे-मोटे काम वे गुरुचरणों में करते।

एक बार गुरुदेव ने एकनाथ को राजदरबार का हिसाब करने को कहा। एकनाथ बहियाँ लेकर हिसाब करने बैठे। दूसरे ही दिन प्रातः हिसाब-किताब राजदरबार में बताना था। सारा दिन हिसाब-किताब लिखने व देखने में बीत गया। रात हुई। नौकर दीपक जलाकर चला गया। एकनाथ को पता नहीं चला कि रात शुरू हो गयी है। हिसाब में एक पाई की भूल आ रही थी। आधी रात बीत गयी फिर भी भूल पकड़ में नहीं आयी। एकनाथ अपने काम में लगे रहे।

प्रात: जल्दी उठकर गुरुदेव ने देखा कि एकनाथ तो अभी भी हिसाब देख रहे हैं। वे आकर दीपक के आगे चुपचाप खड़े हो गये। बहियों पर थोड़ा अंधेरा छा गया फिर भी एकनाथ एकाग्र चित्त से बहियाँ देखते रहे। वे अपने काम में इतने मशगूल थे कि अंधेरे में भी उन्हें अक्षर साफ दिख रहे थे।

इतने में पाई की भूल पकड़ में आ गयी। एकनाथ हर्ष से चिल्ला उठे : ''मिल गयी... मिल गयी... !''

गुरुदेव ने पूछा : ''क्या मिल गयी, बेटा ?''

एकनाथ चौंक पड़े ! ऊपर देखा तो गुरुदेव सामने खड़े हैं ! उठकर प्रणाम किया और बोले : ''गुरुदेव ! एक पाई की भूल पकड़ में नहीं आ रही थी। अब वह मिल गयी।''

हजारों के हिसाब में एक पाई की भूल ! ...और उसको पकड़ने के लिए रातभर जागरण ! गुरु की सेवा में इतनी लगन, इतनी तितिक्षा और भक्ति देखकर दीवान जनार्दन स्वामी के हृदय में गुरुकृपा उछाला मारने लगी। उन्हें ज्ञानामृत की वर्षा करने के लिए योग्य अधिकारी का उरआँगन (हृदय) मिल गया। सद्गुरु की आध्यात्मिक वसीयत सम्हालनेवाला सत्‌शिष्य मिल गया। उसके बाद ही एकनाथ के जीवन में ज्ञान का सूर्य उदय हुआ और उनके सान्निध्य में अनेक दूसरे साधकों ने अपनी आत्मज्योति जगाकर धन्यता का अनुभव किया। साक्षात् गोदावरी माता भी लोगों द्वारा डाले गये पाप धोने के लिए इन ब्रह्मनिष्ठ संत के सत्संग में आती थीं। संत एकनाथजी की 'एकनाथी भागवत' को सुनकर आज भी कई लोग तृप्त होते हैं।

## ।। श्रीराम ।।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अपने शिक्षागुरु विश्वामित्र के पास बहुत संयम, विनय और विवेक से रहते थे। गुरु की सेवा में वे सदैव तत्पर रहते थे। उनकी सेवा के विषय में भक्त कवि तुलसीदासजी ने लिखा है :

मुनिवर सयन कीन्हीं तब जाई । लागे चरन चापन दोऊ भाई ।।
जिनके चरन सरोरुह लागी । करत विविध जप जोग विरागी ।।
बार बार मुनि आज्ञा दीन्हीं । रघुवर जाय सयन तब कीन्हीं ।।
गुरु ते पहले जगपति जागे राम सुजान...

सीता-स्वयंवर में जब सब राजा धनुष उठाने का एक-एक करके प्रयत्न कर रहे थे तब श्रीराम संयम से बैठे ही रहे। जब गुरु विश्वामित्र की आज्ञा हुई तभी वे खड़े हुए और उन्हें प्रणाम करके धनुष उठाया।

सुनि गुरु बचन चरन सिर नावा । हर्ष विषादु न कछु उर आवा ।।
गुरुहिं प्रनाम मन ही मन कीन्हा । अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा ।।

श्री सद्‌गुरुदेव के आदर और सत्कार में श्रीराम कितने विवेकी और सचेत थे इसका उदाहरण तब देखने को मिलता है, जब उनको राज्योचित शिक्षण देने के लिए उनके गुरु वशिष्ठजी महाराज महल में आते हैं। सद्‌गुरु के आगमन का समाचार मिलते ही सीताजी सहित श्रीराम दरवाजे पर आकर सम्मान करते हैं :

गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा । द्वार जाय पद नावउ माथा ।।
सादर अरघ देइ घर आने । सोरह भाँति पूजि सनमाने ।।
गहे चरन सिय सहित बहोरी । बोले राम कमल कर जोरी ।।

इसके उपरांत भक्तिभावपूर्वक कहते हैं : ''नाथ ! आप भले पधारे। आपके आगमन से घर पवित्र हुआ। परन्तु होना तो यह चाहिए था कि आप समाचार भेज देते तो यह दास स्वयं सेवा में उपस्थित हो जाता।''

इस प्रकार ऐसी विनम्र भक्ति से श्रीराम अपने गुरुदेव को संतुष्ट रखते थे।

## ।। स्वामी विवेकानन्द ।।

विश्वविख्यात स्वामी विवेकानन्द अपना जीवन अपने गुरुदेव स्वामी रामकृष्ण परमहंस को समर्पित कर चुके थे। गुरुदेव के शरीर-त्याग के दिनों में अपने घर और कुटुम्ब की नाजुक हालत की परवाह

किये बिना, स्वयं के भोजन की परवाह किये बिना गुरुसेवा में सतत हाजिर रहते। गुरुदेव का शरीर अत्यंत रुग्ण हो गया था। कैन्सर के कारण गले में से थूक, रक्त, कफ आदि निकलता था। इन सबकी सफाई वे खूब ध्यान से करते थे।

एक बार किसीने गुरुदेव की सेवा में घृणा और लापरवाही दिखायी तथा घृणा से नाक भौंहें सिकोड़ीं। यह देखकर विवेकानन्द को गुस्सा आ गया। उस गुरुभाई को पाठ पढ़ाते हुए और गुरुदेव की प्रत्येक वस्तु के प्रति प्रेम दर्शाते हुए उनके बिस्तर के पास रक्त-कफ आदि से भरी थूकदानी उठाकर पूरी पी गये।

गुरु के प्रति ऐसी अनन्य भक्ति और निष्ठा के प्रताप से ही वे अपने गुरु के शरीर और उनके दिव्यतम आदर्शों की उत्तम सेवा कर सके। गुरुदेव को वे समझ सके, स्वयं के अस्तित्व को गुरुदेव के स्वरूप में विलीन कर सके। समग्र विश्व में भारत के अमूल्य आध्यात्मिक खजाने की महक फैला सके। उनके इस महान व्यक्तितत्व की नींव में थी ऐसी गुरुभक्ति, गुरुसेवा और गुरु के प्रति अनन्य निष्ठा।

## ।। आचार्य शंकर ।।

श्रीमद् आद्य शंकराचार्य अल्प अवस्था में ही भाष्यसमेत शास्त्रों में पारंगत हो गये थे। फलस्वरूप उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया था। उनके हृदय में प्राणिमात्र के कल्याण की भावनाएँ तब से ही थीं जब उन्होंने होश सँभाला। माँ की आज्ञा लेकर बाल्यावस्था में ही उन्होंने संन्यास ले लिया और आत्मज्ञान-लाभ के लिए सद्गुरु की खोज में पैदल निकल पड़े। केरल प्रदेश से चलते-चलते दो मास के बाद नर्मदा के किनारे ओमकारनाथ पहुँचे। वहाँ पता चला कि एक गुफा में कोई महायोगी सैकड़ों वर्षों से समाधिस्थ हुए बैठे हैं। इस परिपक्व जिज्ञासु का हृदय आनंद से पुलकित हो उठा।

गुरु के लिए इस बालक की तीव्र जिज्ञासा जानकर वहाँ के वृद्ध

संन्यासियों ने कहा : ''हे बालक ! तुम धन्य हो ! धन्य है तुम्हार तितिक्षा और गुरुभक्ति ! यहाँ पर महायोगी श्रीमान गोविन्दपादाचाय समाधिस्थ बैठे हैं। कब से बैठे हैं यह कोई नहीं जानता। उनसे उपदेश पाने की प्रतीक्षा में बैठे हम भी अब वृद्ध हो चले।''

बालक शंकर ने वृद्ध संन्यासी के संकेत के अनुसार दीपक लेकर उस अंधकारमय गुफा में प्रवेश किया। वहाँ एक अति दीर्घकाय, लंबी जटावाले योगी पद्मासन में ध्यानस्थ बैठे थे। उनकी त्वचा सूख चुकी थी। देह कंकालमात्र अवशिष्ट रही थी फिर भी ज्योतिर्मय थी।

जिनके पावन चरणकमलों में आश्रय पाने के लिए इस कोमल वय में ही इतनी लम्बी पैदल यात्रा की, उन गुरुदेव के दर्शन पाकर बालक शंकर का मन अनिर्वचनीय दिव्यानंद से भर उठा। वे भी ध्यान में लीन हो गये। अबाध अश्रुजल से उनका वक्षस्थल भीग गया। वे भावावेश में आकर गुरुदेव की स्तुति करने लगे :

''हे प्रभो ! आपकी महिमा अपार है। ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति की कामना से मैं आपके श्रीचरणों में आश्रय की भिक्षा माँगता हूँ। समाधि-भूमि से व्युत्थित होकर इस दीन शिष्य को स्वीकार करें।''

इस प्रकार बालक शंकर की स्तुति से गुफा मुखरित हो उठी। महायोगी के निश्चल निस्पंद देह में प्राणों का स्पन्दन होने लगा। क्षणभर में उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर आँखें खोलीं। क्रम से उनका मन यौगिक प्रक्रियाओं द्वारा जीवनभूमि पर उतर आया। सहस्रों वर्षों की समाधि एक सच्चे अधिकारी जिज्ञासु बालक के आने से छूटी। यह वार्त्ता द्रुतगति से चारों ओर फैल गयी। दर्शनाभिलाषी नर-नारियों की भीड़ ने ओमकारनाथ को एक तीर्थ-क्षेत्र में परिणत कर दिया।

सद्‌गुरुदेव श्रीगोविन्दपादाचार्य ने बाल संन्यासी शंकर को शिष्य रूप से ग्रहण किया। उन्हें क्रमशः हठयोग, राजयोग और

ज्ञानयोग सिखाया। साधनक्रमानुसार अपरोक्षानुभूति के उच्च स्तर में उसे दृढ़ प्रतिष्ठित कर दिया। अद्वैत वेदान्त के आखिरी रहस्यों का उद्घाटन कर दिया। उनकी देह में ब्रह्मज्योति प्रस्फुट हो उठी। यही बाल संन्यासी शंकर जगद्गुरु श्रीमद् आद्य शंकराचार्य हो गये। भारतीय संस्कृति के अनुपम रत्न इन महान आचार्य के योगदान को आज कौन नहीं जानता ? धन्य है आचार्य शंकर की गुरुभक्ति को !

## ।। स्वामी दयानन्द ।।

स्वामी विरजानन्दजी की पुण्यकीर्ति सुनकर उनके दर्शन करने की और उनसे आर्ष ग्रंथों का अभ्यास, वैदिक अमृत का पान करने की तीव्र जिज्ञासा स्वामी दयानन्द के अंदर जाग उठी। वे मथुरा में स्थित दण्डी स्वामी विरजानन्दजी की कुटिया पर पहुँचे। दण्डीजी का सामान्य नियम था कि पढ़ाने के अतिरिक्त समय में वे अपना द्वार बन्द रखते थे। केवल दर्शनार्थियों से मिलना उन्हें पसंद न था।

दयानन्द ने धीरे से दरवाजा खटखटाया। अंदर से प्रश्न हुआ : ''कौन है ?''

''मैं कौन हूँ यही जानने के लिए आपकी शरण में आया हूँ।'' दयानन्द ने विनयपूर्वक कहा।

''क्या कुछ पढ़े भी हो ?''

दयानन्द ने जो कुछ पढ़ा था वह सब कह सुनाया फिर भी दरवाजा न खुला। भीतर से आवाज आयी :

''आज तक जो कुछ तुमने पढ़ा है वह सब भुला दो। जब तक मनुष्यप्रणीत ग्रंथों का प्रभाव तुम्हारे हृदयपटल पर रहेगा तब तक तुम्हारे चित्त में आर्ष ग्रंथों का प्रभाव प्रवेश न कर सकेगा। यदि तुम्हारे पास ऐसे ग्रंथ हों तो उन्हें भी यमुना में डाल आओ।''

पढ़ी हुई विद्या को फेंकना कितना दुष्कर है ! किन्तु दयानन्द विलक्षण पुरुष थे। अपनी सभी पुस्तकें उन्होंने यमुना में डाल दीं और पुराने पढ़े को विस्मृत कर हृदयपटल को स्वच्छ कर दिया।

गुरुदेव की कुटिया का दरवाजा खुल गया। उन्हीं के कृपा-प्रसाद से स्वामी दयानन्द ने हिन्दू जाति को आडम्बर और भ्रमजाल से निकाला तथा वेदों के ज्ञान को नये सिरे से प्रकाशित किया।

धन्य है गुरुचरणों में अपनी मान्यताएँ अर्पण कर देनेवाले ऐसे शिष्यों को !

## प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज एक बार संध्या के समय बैठे थे। समाधिस्थ-से बैठे हुए वे आत्मानन्द की मस्ती में मस्त थे।

जहाँ स्वयं ही आनंदस्वरूप हो उनको अब क्या प्राप्तव्य शेष रहा ? फिर भी अंतर्मुख रहने का संतों का स्वभाव होता है। ...तो वे अपनी आत्ममस्ती में बैठे हुए थे।

इतने में किसी एक व्यक्ति ने आकर उनको प्रणाम किया। स्वामीजी ने आँखें खोलकर प्रेमपूर्वक पूछा : ''तुम कौन हो?''

''स्वामी ! केशवानन्द।'' (अर्थात् 'मैं केशवानन्द हूँ।') आगंतुक ने कहा।

पूज्य लीलाशाहजी महाराज के सद्गुरुदेव का नाम भी 'स्वामी केशवानन्द' था। आगंतुक के मुख से जब उन्होंने अपने गुरुदेव का नाम सुना तो उनकी आँखों में प्रेम के आँसू भर आये। स्वामीजी की ८८ वर्ष की उम्र, ज्ञान की परिपक्व अवस्था, अद्वैत वेदान्त की चरम सीमा पर पहुँचे हुए, जहाँ गुरु और शिष्य में कोई भेद नहीं रहता उस परम पद में पहुँचे हुए- ऐसी अवस्था में भी गुरुदेव के स्मरण मात्र से शिष्य के हृदय में कैसा बाल्य भाव उमड़ आता है !

गुरुदेव के प्रति ऐसे प्रेम और अहोभाव के बल पर ही शिष्य

गुरुत्व को झेलकर और पचाकर गुरु समान बन जाता है। धन्य है भारत देश को कि जिसकी भूमि ऐसे सत्‌शिष्यों और सद्‌गुरुओं की चरणरज से सदा ही पावन होती रही है !

## ।। परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू ।।

पूज्यश्री के जन्म के समय से ही छोटे-मोटे चमत्कार होने लगे थे। तीन वर्ष की छोटी उम्र में ही उन्होंने साधना शुरू कर दी थी। दस वर्ष की उम्र में तो अनजाने ही वाक्‌सिद्धि उनकी सेवा में हाजिर हो गयी थी।

पूज्यश्री ने भगवान श्रीराम, प्रेममूर्ति श्रीकृष्ण, शक्तिरूपा महाकाली आदि की उपासना की और बाद में भगवान शिव को इष्ट मानकर अनुष्ठान किया। परंतु पूज्यश्री जब अपने सद्‌गुरुदेव पूज्य स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज की छत्रछाया में आये तब तो ऐसे अनुपम आनंद का खजाना उन्हें हाथ लगा कि जिसके आगे चौदह भुवन के सुख भी तुच्छ थे।

पूज्यश्री अपने सद्‌गुरुदेव के आश्रम में रहते थे तब उन्होंने आश्रम एवं सद्‌गुरुदेव की सेवा में खूब तितिक्षा सहन की। उन्हीं के शब्दों में कहें तो :

''मैं जब गुरुदेव के आश्रम में रहता था तब वहाँ के सब लोगों को सहायरूप सिद्ध होता था। आश्रम के पेड़-पौधों को पानी पिलाता, बर्तन माँजता, गुरुदेव के नाम आये हुए पत्र पढ़ता और गुरुदेव के कहे मुताबिक उनके उत्तर लिखता। गुरुभाइयों को भी राजी रखता। ऐसा न हो कि कहीं कोई गुरुभाई मेरी शिकायत गुरुदेव को कर दे जिससे मेरे प्रति उनके छलकते हृदय को ठेस लग जाय और मुझ पर बरसता हुआ उनका कृपा-अमृत अटक जाय... इस बात का मैं पूरा ख्याल रखता।

भोजन में केवल उबाले हुए मूँग खाता अथवा मूँग का पानी लेता। सोने के लिए तो मात्र साढ़े चार फुटवाली कोठरी ही थी जिसमें ढंग से आसन भी नहीं कर सकता था। परंतु यह सब सहन करते हुए भी जब गुरुदेव की कृपा हजम करने की शक्ति प्राप्त हुई, उनकी कृपा पूर्ण रूप से बरसी और वह हमारे अंतरतम में पची तथा जन्म-मरण के कारणरूप अज्ञान का नाश हुआ तब जो अनुपम आनंद प्राप्त हुआ उसका तो फिर कहना ही क्या ! उसके आगे सहन की हुई सब प्रतिकूलताएँ-तितिक्षाएँ तुच्छ लगीं।''

पूज्यश्री कई बार ये पंक्तियाँ दुहराया करते हैं :

**हम न हँसकर सीखे हैं, न रोकर सीखे हैं।**
**जो कुछ भी सीखे हैं, सद्गुरु के होकर सीखे हैं॥**

ॐ आनंद ! ॐ आनंद !! ॐ आनंद !!!

# निर्दुःख होने का उपाय : बीस सूत्री साधना

प्राचीन सूफी फकीरों का एक शेर है :

**अगर है शौक मिलने का**
**तो कर खिदमत फकीरों की।**
**ये जौहर नहीं मिलता**
**अमीरों के खजाने में॥**

मानव-जीवन का वास्तविक उद्देश्य है सच्चे सुख को पाना, आत्म-साक्षात्कार करना। ईश्वर के सिवाय और कुछ भी मिलेगा तो छूट जायेगा। वास्तव में अपने आत्मवैभव को पाने के लिए ही मनुष्य-जीवन मिला है।

सच्चा सुख, सच्चा जीवन, निर्दुःख जीवन ब्रह्मनिष्ठ संतों के सत्संग के बिना नहीं मिलता। आपके पास एक मिलियन (दस लाख) तो क्या, एक करोड़ मिलियन भी हो जायें फिर भी आप

निर्दुःख नहीं हो सकते। एक राज्य की सत्ता नहीं, पूरे देश की सत्ता और पूरे देश की सत्ता नहीं, पूरे विश्व की सत्ता और सौंदर्य एक व्यक्ति को मिल जाय फिर भी वह निर्दुःख नहीं हो सकता।

डॉ. जॉन बेडेनोक ने इंग्लैण्ड के राजाओं के जीवन का अध्ययन करके लिखा है कि जेम्स प्रथम (सन् १५६६-१६२५) को सदा दस्त लगे रहते थे और नाक बहती रहती थी। टाई, रूमाल- कुछ भी सामने मिल जाता - बस, नाक ही पोंछता रहता था। धन, सत्ता तो है लेकिन आरोग्य नहीं है।

किसीका स्वास्थ्य उत्तम है तो उसके पास धन नहीं है, धन है तो सत्ता का पद नहीं है अथवा कुटुम्ब में गड़बड़ है और अंत में मृत्यु तो है ही...

जेम्स प्रथम को मात्र ज्वर आया और उसकी मृत्यु हो गयी।

महारानी एनी (सन् १६६५-१७१४) भी हमेशा पेटदर्द और अंग-प्रत्यंग की कमजोरी की शिकार रहती थी। कमजोरी और गठिया के कारण महारानी को अचानक कम्पन हो आता व ऐंठन होने लगती। उसी कम्पन और ऐंठन से पीड़ित होकर वह मर गयी।

चार्ल्स द्वितीय (सन् १६३०-१६८५) ने वर्षों तक राज्य किया, लोगों की नजरों में 'ही इज ग्रेट पर्सन' की छवि भी बन गयी, लेकिन वह हमेशा मलेरिया के रोग से पीड़ित रहता था और उसे दौरे पड़ते थे। इन दौरों को रोकने के लिए डॉक्टरों ने उसके शरीर से ५०० मि.ली. खून निकाला और दौरे बढ़ने पर उसकी नस काट डाली, सिर पर जलते कोयलों से दाह किया, उलटियाँ करायीं, दस्त कराये। उन्हीं दौरों, उलटियों और दस्तों से आखिर वह मर गया।

डॉ. जॉन ने आगे लिखा है कि अगर मैटेरियल लाईफ (भौतिक सुख-सुविधायुक्त जीवन) में सुख होता तो इतना वैभव होने के बाद भी वे दुःखी होकर क्यों मरते ?

आज तक दुःखी होने के लिए किसीने काम नहीं किया फिर भी सारी दुनिया दुःखी है। निर्दुःख होना हो तो दुःखों को हरनेवाला जो आत्मस्वभाव है उसमें आना पड़ेगा। उस स्वभाव की स्मृति दिलाने के लिए जो शास्त्र और पर्व हैं, उनके जो मूर्धन्य महापुरुष हैं उनका नाम है - व्यासजी।

यदि कोई इन २० साधनों को समझ ले और उनका पालन करे तो वह सदा के लिए निर्दुःख हो सकता है। २० सूत्री साधना करने से पहले पंचसूत्री साधना समझ लें तो २० सूत्री साधना करने में आसानी होगी।

## *पंचसूत्री साधना :*

**१. शास्त्राध्ययन** : ईश्वरप्राप्त महापुरुषों के जीवन-चरित्र और ईश्वरप्राप्ति में प्रोत्साहित करनेवाले शास्त्रों का प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा अध्ययन करें।

**२. संतुलित आहार व युक्तियुक्त उपवास** : न अति भूखा मरें न अति खायें, न तीसों दिन खायें न दस-दस दिन उपवास करें।

अगर मधुमेह (डायबिटिज) है तो उपवास न करें। अगर मोटे हैं तो महीने में ४ उपवास, यदि मोटापा नहीं है तो महीने में २ उपवास अपनी शक्ति के अनुसार करें।

**३. विवेकपूर्ण सेवा** : सेवा का अपना आनंद है, औदार्य है, पुण्य एवं प्रभाव है। आप लौकिक दुनिया में हों चाहे आध्यात्मिक जगत में, सेवा के बिना प्रगति सम्भव ही नहीं है। लौकिक जगत में दिखावा करने के लिए सेवा करते हो तो दिखावटी प्रगति होगी और आध्यात्मिक दुनिया में सच्चाई से सेवा करोगे तो सच्ची प्रगति होगी। अतः सेवा के लिए सेवा करें। सेवा में दिखावे की गंध न आने पाये। वाहवाही के लिए नहीं, हृदय में छुपे हुए आनंद को जगाने के लिए सेवा करें।

**४. विधिवत् ध्यान और ज्ञान का अभ्यास।**

**५. भगवत्समर्पण :** जो सृष्टि का मूल है, उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय का कारण है, उस भगवान को सर्वभावेन अपने 'मैं' का समर्पण करें।

यदि यह पंचसूत्री साधना आपको कबूल हो तो २० सूत्री साधना मैं बता सकता हूँ। अब किसीको कबूल हो किसीको न हो, इसलिए **जलवृष्टि न्यायेन** मैं सबको बताता हूँ। बरसात तो वही-की-वही लेकिन किसान उससे खेती करेगा और सीप मोती पकायेगी। कहीं झरने बहेंगे, कहीं नदियाँ बहेंगी तो कहीं डेम बनेगा। सड़क पर भी बरसात फालतू नहीं जायेगी, डीजल और गोबर के दाग तो धो ही डालेगी, सफाई तो कर ही देगी। जहाँ जैसी जगह होगी, बरसात का पानी वहाँ वैसा कार्य करेगा। ऐसे ही जहाँ जैसा पात्र होगा, सत्संग उसे वैसा ही फल देगा। इसे **जलवृष्टि न्यायेन** बोलते हैं।

**इन २० सूत्रों से आपकी उन्नति होगी, होगी और पक्की होगी।** चतुर्मास में इस २० सूत्री साधना को दृढ़ता से अमल में लायें तो बड़ा भारी लाभ होगा। शारीरिक स्वास्थ्य-लाभ, मानसिक लाभ तथा नैतिक लाभ के साथ आध्यात्मिक लाभ भी होता है। ऐसा कौन है जो इन ४ लाभों से वंचित रहना चाहे ? ये २० सूत्र हैं :

**१. ब्राह्ममुहूर्त में उठने का पक्का निर्णय करें।** वैज्ञानिक कहते हैं कि ब्राह्ममुहूर्त में ओजोन वायु का बाहुल्य होता है। उस समय वातावरण में सत्त्व की प्रधानता, ऋणायनों का बाहुल्य तथा धनात्मक ऊर्जा की विशेष मात्रा होती है, जो स्वास्थ्य के लिए हितकारी है। ऋषियों की दृष्टि से देखें तो उस समय वातावरण में शांति होती है। ऋषि-मुनियों के संकल्प तो होते ही हैं, साथ में निःसंकल्प नारायण के ध्यान-समाधि के तरंग भी होते हैं।

**प्रातःकाल की वायु को, सेवन करत सुजान।**
**तातें मुख छबि बढ़त है, बुद्धि होत बलवान॥**

सूर्य उगने से सवा दो घंटे पहले ब्रह्ममुहूर्त शुरू होता है और सूर्योदय तक रहता है। चन्द्रमा की किरणें धरती पर पड़नी बंद हो गयी हों और सूर्य की किरणें अभी न पड़ी हों, उस वेला में अर्थात् ब्रह्मवेला में मंत्र जाग्रत होते हैं। उस समय मंत्रजप कर हम मंत्र के ऋषियों की कृपा विशेष रूप से पा सकते हैं।

उस काल में प्राणायाम करें, जिससे मनःशक्ति, प्राणशक्ति, भावशक्ति, क्रियाशक्ति, अनुमान शक्ति, क्षमाशक्ति, शौर्यशक्ति और स्वास्थ्य का विकास होता है।

२. त्रिबंध प्राणायाम करें। साधना के लिए किसी एक आसन (पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन या सुखासन) को पसंद करके उसमें बैठने का अभ्यास करें। मूलबंध करके उड्डीयान बंध और जालंधर बंध करें। ऐसे १० त्रिबंध प्राणायाम करें। ३ दिन में ही फर्क महसूस होगा। जितने प्राणायाम एक दिन करें, दूसरे दिन उससे कम न करें। एक दिन १० किये, दूसरे दिन १५ किये, तीसरे दिन ११ किये, ऐसा नहीं। प्रतिदिन नियमित रूप से नियत संख्या में प्राणायाम करें।

### त्रिबंध

**मूलबंध :** बायीं एड़ी से गुह्य प्रदेश को संकुचित करें और दायीं एड़ी से उपस्थ को दृढ़तापूर्वक दबा लें। इसे मूलबंध कहते हैं। कुल मिलाकर शौच जाने की इन्द्रिय (गुदा) का संकोचन करना मूलबंध कहलाता है। इससे मानसिक भावनाओं और स्वास्थ्य में अद्भुत लाभ होता है। मूलबंध करके किये गये प्राणायाम आरोग्य में अद्भुत फायदा तो करते हैं, साथ-ही-साथ पुराने संस्कारों का शमन, पुरानी वासनाओं का दमन करके हममें आध्यात्मिक आभा का खजाना विकसित करते हैं।

स्त्रियों को रजोदर्शन के समय जो पीड़ा व खिन्नता होती है, मूलबंध के अभ्यास से वह नहीं होगी। प्रसूति के पहले देवियाँ यदि मूलबंध का थोड़ा अभ्यास करें तो प्रसूति की पीड़ा अधिक नहीं होगी, शल्यक्रिया (ऑपरेशन) के बिना ही संतान कों जन्म देने की क्षमता विकसित होगी। प्रसूति के बाद भी अगर वे प्रतिदिन ५-१५ मिनट मूलबंध का अभ्यास करती रहें, लेटे-लेटे ही मूलबंध करती रहें तो जो कोशिकाएँ क्षतिपूर्ति होने में ४० दिन लगाती हैं, वे १५ दिन में काम पूरा कर लेंगी। प्रसूति के बाद जो हारमोन्स परिवर्तित और संतुलित होने चाहिए, वे जल्दी हो जायेंगे। स्वास्थ्य-लाभ जल्दी हो जायेगा।

मूलबंध के कारण एड्रीनल ग्रंथि और मणिपुर चक्र पर दबाव पड़ने से ऊर्जा जाग्रत होती है जो रोगों को दूर करनेवाली है। तनाव-चिंता को दूर करनेवाली वह ऊर्जा तन-मन के रोगों को मिटाने की क्षमता भी रखती है।

**उड्डीयान बंध :** प्राणायाम के समय पेट अंदर सिकोड़ लेना उड्डीयान बंध कहलाता है। इससे पाचन तंत्र सुव्यवस्थित रहता है। अम्लपित्त, अफरा, कब्जियत जैसी तकलीफें गायब हो जाती हैं। गुर्दे पुष्ट होते हैं और पथरी की नौबत नहीं आती।

**जालंधर बंध :** दोनों नथुनों से लंबा श्वास लें, ठोड़ी से कंठकूप को दबायें, जितनी देर चुपचाप बैठ सकते हों बैठें, भगवन्नाम या गुरुमंत्र का जप करें। दायाँ नथुना बंद करें और बायें नथुने से धीरे-धीरे श्वास जाने दें। फिर से दोनों नथुनों से श्वास लें। ऐसे ५ प्राणायाम प्रतिदिन करें। श्वास जितनी अधिक देर तक रोक सकें, उतना अच्छा है।

शरीर में कोई भी रोग हो, इस प्राणायाम के अभ्यास से उसकी जड़ें हिलती हैं। हृदय की गति सुचारू रूप से चलती है, रक्तचाप घटता है, मांसपेशियों को विश्राम मिलता है।

मूलबंध, उड्डीयान बंध और जालंधर बंध- तीनों बंध करके प्राणायाम करें तो बहुत लाभ होता है। बच्चों से यदि ये प्राणायाम कराये जायें तो उन्हें रोगों से मुक्ति मिल जायेगी और वे बड़े तेजस्वी होंगे।

[त्रिबंध प्राणायाम की विधि पुस्तक 'ईश्वर की ओर' में दी हुई है।]

**३. मंत्र के अर्थ में चित्त लगाते हुए प्रीतिपूर्वक जप करें; यंत्र की नाईं जप न करें।** इससे आप हाहा-हूहू और भाषणों से जो उपलब्धियाँ होती हैं उससे कई गुना कम शक्ति से बहुत सारी उपलब्धियों के धनी हो जायेंगे।

'मेरा भाग्य ऐसा है... मेरा मुकद्दर ही ऐसा है...' ऐसा चिंतन उनको सौंप दीजिये जो भाग्यवादी हैं। मनुष्य अपने भाग्य का आप विधाता है।

**बिगड़ी जनम अनेक की सुधरे अब और आजु।**
**तुलसी होई राम को राम भजि तजि कुसमाजु ॥**

अनेक जन्मों की बिगड़ी बाजी को आप इसी जन्म में सँवार सकते हैं और विश्वनियंता का अनुभव कर सकते हैं।

**४. सात्त्विक आहार और सात्त्विक संग का आदर करें। ध्यान की जगह को कभी-कभी कुदरती पुष्पों आदि से सुगंधित करें।**

सात्त्विक सुगंध से ज्ञानतंतुओं की पुष्टि होती है। परफ्यूम आदि सात्त्विक सुगंध नहीं हैं। इनसे पुष्टि का कोई सम्बन्ध नहीं है, अपितु विकारों का सीधा सम्बन्ध है। परफ्यूम आदि से बचें और ध्यान के स्थान पर फूल आदि रखें तो अच्छा है।

**५. भगवान को सर्वभावेन आत्मसमर्पण करें।** अपने घर में यथासंभव एक ऐसी जगह या कमरा बनाइये जहाँ संसार का व्यवहार, खान-पान, शयन आदि न हो। वहाँ पर भगवत्प्रार्थना हो, जप-सुमिरन हो। प्रार्थना उन्हींकी फलती है, जिनको हृदयपूर्वक अपनी कमी खटकती है। अपनी कमी पूरी करने में हम

समर्थ नहीं हैं, किंतु यह सर्वसमर्थ के बायें हाथ की बात है। सर्वसमर्थ के लिए असंभव कुछ नहीं। यदि प्रार्थना को सफल करना है तो जरा-जरा बात में ईश्वरीय शक्ति को खर्च न करें। जहाँ तक हो सके अपने पुरुषार्थ से ऐहिक परिस्थितियों को ठीक करते जायें किंतु ईश्वरप्राप्ति की प्रार्थना ईश्वर से ही करें। फिर ऐहिक विघ्न आयें तो आप उन्हें यथायोग्य दूर करें। यदि दूर नहीं होते तो अपने इष्ट की तरफ एकटक देखते-देखते कहें कि 'मेरी वासना तो कहती है कि ऐसा हो जाय, किंतु मेरा हित किसमें है यह तो तुम्हीं जानते हो। अब तो बाबा ! हमने सब कुछ तुम्हींको सौंपा है। तेरी मर्जी पूरण हो...' असंभव काम प्रार्थना के द्वारा संभव हो जाते हैं। इसमें संदेह करना मूर्खों का काम है।

**६. प्रार्थना करते-करते प्रार्थनाकर्ता थोड़ा शांत हो जाय।**

सन् १९५६ में मद्रास में अकाल पड़ा था। नगरपालिका ने अपने हाथ ऊँचे कर दिये क्योंकि वह पानी नहीं दे पा रही थी। उस समय चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य तमिलनाडु के मुख्यमंत्री थे। उन्होंने समुद्रतट पर भगवत्प्रार्थना का आयोजन किया। शाम के चार बजे सामूहिक प्रार्थना करते-करते गद्‌गद कंठ, श्रद्धा व भाव से भरे हृदय प्रार्थना में एकाकार हो गये -

**जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।**
**ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥**

उसी रात्रि को बादल मँडारने लगे। मेघ गरजे, बादल बरसे और इतना बरसे, इतना बरसे कि सुबह होते-होते 'रेडस्टोन लेक' (वहाँ का तालाब) छलोछल भर गया ! लेनेवाले थक गये किंतु देनेवाला देता ही गया... मद्रास की सड़कों पर नावें चलानी पड़ीं ! आज भी रेकॉर्ड देखकर कोई नास्तिक भी इस बात को स्वीकार कर सकता है।

प्रार्थना करते-करते आपकी भाषा और हृदय जब एक हो जाते

हैं, सर्वसमर्थ के लिए सब संभव है यह आप पक्का ठान लेते हैं तथा अपनी प्रार्थना को आप रोज ९ बार दोहराते हैं तो कितना भी विकट कार्य हो, सर्वसमर्थ की कृपा से आसानी से हो जाता है।

वृष्टि करना आदि तो छोटी बात है, इससे भी बड़े-बड़े कार्य सृष्टिकर्ता अपने प्यारे भक्तों के लिए कर लेते हैं।

**७. अपने जीवन का जो सार तत्त्व (वीर्य) है, उसकी रक्षा करें।** ब्रह्मचर्य या वीर्य-रक्षण का बड़ा भारी महत्त्व है, अतः वीर्य की रक्षा करें। जो रक्षा करने में असमर्थ हैं, वे '**ॐ अर्यमायै नमः।**' इस ब्रह्मचर्य-रक्षक मंत्र का जप करें। कितना भी विकारी मन हो और कितने ही विकारी वातावरण में आप फँसे हों, इस मंत्र का जप करो तो आपकी रक्षा होगी। मुझे ६० साल की उम्र में यह मंत्र मिला और मैंने इसका अद्भुत चमत्कार पाया।

सोने से पहले तर्जनी उँगली से (बिना स्याही या पेन के) अपनी माता का नाम तकिये पर लिखकर सोनेवाले महाविकारी व्यक्ति को भी अपने विकार से जान छुड़ाने में सफलता मिलती है।

**८. जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप साधना कर रहे हैं, उसीके अनुरूप प्रतिदिन थोड़ा स्वाध्याय करें।**

**९. मौन का सामर्थ्य जुटायें।** गाँधीजी हर सोमवार को मौन रखते थे और दुनिया जानती है कि वे सोमवार को अधिक ऊँचे निर्णय कर पाते थे।

**१०. पन्द्रह दिन में एक दिन एकादशी आदि व्रत-उपवास रखें।** यह आपके तन के रोगों को तो हरता ही है, मन के विकारों को भी हरता है और भविष्य तो क्या, वर्तमान भी उज्ज्वल कर देता है। गृहस्थ को चतुर्मास में दोनों पक्षों की व अन्य माह में केवल शुक्लपक्ष की एकादशी रखनी चाहिए।

**११. आप दाता बनिये।** मान के भिखारी न बनिये, मान के दाता बनिये। धन के भिखारी या चौकीदार न बनिये, धन के दाता

बनिये। धन के चौकीदार वे हैं जो धन को सँभाल-सँभालकर मर जाते हैं।

**१२. सदा सत्संग का आश्रय लें।**

**१३. जिस माला पर जप करें वह माला कंठ में रहे।** रात्रि को भी माला अपने साथ रहे। गाँधीजी मानसिक जप करते रहते थे। रात्रि को भी जब नींद खुलती तो उनका मानसिक जप चालू हो जाता था।

**१४. हमेशा सनातन धर्म के सिद्धांत के अनुसार बोलें।** इससे सनातन सत्य आपके इर्दगिर्द एक 'रक्षा-कवच' बनकर तैयार रहेगा।

कुछ धर्म होते हैं व्यक्तियों, आचार्यों, खुदा के पैगंबरों या गॉड के पुत्रों के स्थापित किये हुए, किंतु सनातन धर्म किसी व्यक्ति, पैगंबर अथवा किसी गॉड के बेटे ने स्थापित नहीं किया। भगवान ने भी सनातन धर्म की परंपरा नहीं चलायी, अपितु सनातन धर्म में भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण प्रकट हुए। जबसे सृष्टि है तभीसे सनातन धर्म चला आ रहा है।

अन्य धर्मों में भी सनातन धर्म के जो सिद्धांत लिये गये हैं, उनका आदर करनेवालों को लाभ होता है। बौद्ध धर्म में करुणा की प्रधानता है, जैन धर्म में अहिंसा की प्रधानता है, इस्लाम धर्म में यकीन (श्रद्धा) की प्रधानता है, ईसाइयत में प्रार्थना की प्रधानता है लेकिन सनातन धर्म में प्रार्थना भी है, श्रद्धा भी है, करुणा-अहिंसा भी है। साथ ही एक विशेषता और है कि इसमें हित की प्रधानता है। किसी भी धर्म का अवलंबी अगर इस सनातन धर्म के सिद्धांत को स्वीकार करके चले तो उसको भी सनातन सत्य की प्राप्ति हो सकती है।

आप जब भी किसीसे व्यवहार करें तो वर्तमान में उसका हित हो और भविष्य में भी हित हो, इन दो सूत्रों को याद रखकर व्यवहार

करते हैं तो आप चाहे जिस धर्म को मानें, आपकी मौज है लेकिन आपका सनातन सत्य के अनुसार मंगल होकर ही रहेगा।

'हित की प्रधानता' यह सनातन संस्कृति का सिद्धांत है। वैसे तो कहा गया है कि सत्य बोलें, प्रिय बोलें, हितकर बोलें किंतु माँ कभी-कभी बच्चे के आगे झूठ बोलती है और कटु भी बोलती है, फिर भी उसे कटु और झूठ बोलने का पाप नहीं लगता क्योंकि उसमें बच्चे के हित की भावना है। ऐसे ही वैद्य-चिकित्सक-गुरु आदि कभी-कभी ऐसा-वैसा व्यवहार करते हुए दिखें लेकिन हित की प्रधानता से है तो सनातन धर्म में उसकी स्वीकृति है।

अर्जुन और समाज के हित की प्रधानता रखते हुए अपना वचन तक भंग कर दिया श्रीकृष्ण ने ! हथियार न उठाने का नियम लेकर भी हथियार उठाया। **'नरो वा कुंजरो वा...'** यह क्या है ? श्रीकृष्ण ने हितदृष्टि से ही युधिष्ठिर से ऐसा कहलवाया।

उत्तरा के पुत्र को गर्भ में ही नष्ट करनेवाले हत्यारे अश्वत्थामा को पकड़कर उत्तरा के समक्ष लाया गया और उत्तरा से कहा गया कि 'यह तेरे पुत्र का हत्यारा है, अतः तू जैसा चाहेगी वैसा ही दंड इसे दें।' भारत की वह देवी कहती है :

''**मुच्यतां मुच्यतामेष...** छोड़ दो इसे, छोड़ दो। यह भी किसीका बेटा है। अभी एक माँ रो रही है, फिर दूसरी माँ रोयेगी।''

श्रीकृष्ण गद्गद हो गये और बोले : ''उत्तरा ! तुम्हारी समता गजब की है ! अब मेरी समता देख ले :

दिशाएँ सुन लें, देवता सुन लें, यक्ष-गंधर्व-किन्नर सुन लें ! संधिदूत होकर गया तबसे लेकर घमासान युद्ध के समय और आज तक मेरे हृदय में कौरवों के प्रति अगर द्वेष न रहा हो तो, पांडवों के प्रति राग न रहा हो तो, उस समता के परीक्षार्थ यह मृतक बालक जीवित हो जाय।''

समता के परीक्षार्थ जीवित किये गये बालक का नाम रखा गया

'परीक्षित'। जिन्होंने सात दिन में भागवत के माध्यम से ब्रह्मज्ञान का सत्संग सुनकर अपने परमात्म-पद की प्राप्ति करके मोक्ष का अनुभव कर लिया।

ऐसी समता सनातन संस्कृति का उद्देश्य है।

**१५. अपनी मृत्यु को याद रखें।** दफनानेवाले समझ लें कि एक दिन यह शरीर कब्र में पड़ा रह जायेगा और हिन्दू समझ लें कि एक दिन यह शरीर जल जायेगा।

बुढ़ापे में कान बहरे हो जायें उससे पहले हम अपनी (आत्मस्वरूप की) खबर सुन लें, जहाँ मृत्यु की दाल नहीं गलती, जहाँ जवानी का, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि का कोई महत्त्व नहीं, हम ऐसे अमर पद की यात्रा कर लें।

मृत्यु न जाने कब शरीर छीन ले ? अतः करने योग्य कर्म कर डालें।

'करने योग्य कर्म क्या है ? बाबा ! क्या मैं अपनी पढ़ाई पूरी कर लूँ ?'

यह कोई करने योग्य बड़ी बहादुरी का काम नहीं है। करने योग्य कर्म तो है कि

**देखा अपने-आपको, मेरा दिल दीवाना हो गया।**
**न छेड़ो मुझे यारों, मैं खुद पे मस्ताना हो गया॥**
**दिले तस्वीर है यार !**
**जबकि गर्दन झुका ली और मुलाकात कर ली।**

अपने-आपमें विश्रांति पाने की कला पा लें, करने योग्य कर्म कर लें। फिर बाहर के काम आसानी से होंगे, परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।

**१६. आत्मनिर्भरता का अभ्यास बनाये रखें।** व्यस्तता हो और किसीसे निजी सेवा लेनी पड़े तो ले लें, किंतु जब मौका मिले तब अपना काम आप ही कर लें, जिससे आत्मनिर्भरता बनी रहे।

मनोबल, भावबल एवं बुद्धिबल सुविकसित रहे। ऐसा नहीं कि 'रसोइया चला गया, अब मैं क्या करूँगा... ?' कभी हम ड्राइवर को भी बोलते हैं कि तू किनारे हो जा, हम ड्राइविंग करेंगे। हम अमेरिका गये तो कई गाड़ियाँ लेने के लिए आयीं। किसीने कहा : ''बापूजी ! हम आपको लेने के लिए आये हैं।''

मैंने कहा : ''तुम मुझे क्या लेने के लिए आये हो ? हम तुमको ले चलते हैं। तुम हटो, हम ड्राइविंग करते हैं।'' अमेरिका में हमने ५०-६० मील तक गाड़ी चलायी। लोग देखकर दंग रह गये। किंतु इसमें क्या बड़ी बात है ? अमेरिका का ड्राइवर भारत में आये तो गाड़ी नहीं चला सकता, किंतु भारत का बंदा विश्व के किसी भी देश में जाय तो गाड़ी चला लेता है, वहाँ का पानी और खाना भी हजम कर लेता है।

इसका ध्यान रखें कि किसी व्यक्ति, परिस्थिति अथवा कारण से आपकी खुशी, सुख और स्वातंत्र्य का गला न घुटे, आत्मनिर्भरता बनी रहे।

**१७. आत्मविश्लेषण करें।** बीमार हो गये तो 'क्या खाया था ?', दुःख हो रहा है तो 'क्या कारण है ?', किसीके प्रति वैर हो रहा है या भयभीत हो रहे हैं तो 'भय मुझे हो रहा है कि शरीर अथवा मन को हो रहा है ?' - इस प्रकार आत्मविश्लेषण कर आप भय से तुरंत परे निकल जाइये, बीमारी से पृथक् हो जाइये।

**१८. अपने को कोसें नहीं।** आपके मन-बुद्धि में जो कमियाँ हैं उनको अपने में आरोपित कर 'मैं कामी हूँ... मैं क्रोधी हूँ... मैं कमजोर हूँ... मैं लोभी हूँ... मैं लाचार हूँ... मैं बीमार हूँ...' इस प्रकार अपने को कोसें नहीं। कमियाँ किसमें हैं, यह खोज लें।

यदि कोई अनपढ़, मूर्ख हो तो सोचे कि 'अनपढ़, मूर्ख मैं हूँ कि मन या बुद्धि है ?' बीमार हो तो आप हो कि शरीर है ? आप पायेंगे कि आप सनातन सत्य परमात्मा के अमृतपुत्र हो।

बाकी ये सब गड़बड़ियाँ प्रपंच में हैं । 'जहाँ गड़बड़ नहीं है वह मेरा स्वरूप है और प्रभु ! तेरा भी वही स्वरूप है । तू सत् है, चित् है, आनंदस्वरूप है, सुखस्वरूप है, चैतन्यस्वरूप है । मेरा शरीर जड़ है किंतु मैं चैतन्य हूँ ।'- इस प्रकार अपने चैतन्य की स्मृति करते हुए गुरु के ज्ञान को पचाने की युक्ति पाते रहना और गुरु की मीठी निगाह में अपने को आगे बढ़ाते रहना ।

**१९. अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ कम करें ।** इससे आपकी आत्मिक उन्नति होगी ।

**२०. जागने पर अपने को डुबाइये अपने प्रिय प्रभु में और सोने से पहले अपना दिल मिलाइये अपने पिया दिलबर से ।**

इस २० सूत्री पाठ को अगर आप अपने जीवन में लाते हो तो आपका तो मंगल होगा ही, आपके सम्पर्क में आनेवालों का भी कल्याण होगा । यह २० सूत्री साधना आपके जीवन में शारीरिक, मानसिक, नैतिक व आध्यात्मिक - चारों प्रकार की उन्नति करेगी, बिल्कुल पक्की बात है ।

क्यों, यह कठिन तो नहीं है ? इसमें कुछ अनावश्यक भी नहीं है । तो कर लो तैयारी । अभी से गाँठ बाँध लो । आज रात को सोते समय ही शुरू कर दो - प्रार्थना और प्रीति । कल सुबह से लग जाओ ।

जो कुछ तुम्हारा कामकाज, जिम्मेदारियाँ हों वे तो निभती रहेंगी, उनमें चार चाँद भी लग जायेंगे । इन २० नियमों को पढ़ लो २-५ बार और आत्मसात् कर लो । तुम्हारे लिए यह असंभव भी नहीं है और कठिन भी नहीं है ।

# गुरुभक्ति गीत

## हो गयी रहमत तेरी...

हो गयी रहमत तेरी सद्गुरु रहमत छा गयी।
देखते ही देखते आँखों में मस्ती आ गयी ॥
गम मेरे सब मिट गये और मिट गये रंजो अलम।
जब से देखी है तेरी दीदार ऐ मेरे सनम ॥
आँख तेरी ने पिलाई है मुझे ऐसी शराब।
बेखुदी से मस्त हूँ उठ गये सारे हिजाब ॥
मस्त करती जा रही शक्ल नूरानी तेरी।
कुछ पता-सा दे रही आँख मस्तानी तेरी ॥
अब तो जीऊँगा मैं दुनियाँ में तेरा ही नाम ले।
आ जरा नैनों के सदके मुझको सद्गुरु थाम ले ॥

## मस्ताना हो गया हूँ...

पीकर शराबे मुर्शिद मस्ताना हो गया हूँ।
मन और बुद्धि से यारों बेगाना हो गया हूँ ॥
कहने को कुछ जुबाँ से किसको है होशे फुर्सत।
साकी की शम्माए लौ का परवाना हो गया हूँ ॥
यारों बताऊँ कैसे हाँसिल हुई ये मस्ती।
साकी की खाक पाका नजराना हो गया हूँ ॥
जबसे पिलाया भरके सद्गुरु ने जामे वादत।
उस दिन से गोया खुद ही मैखाना हो गया हूँ ॥
रंजो अलम वहाँ अब ढूँढ़े मिले न मुझमें।
शाहों के साथ मिलकर शाहाना हो गया हूँ ॥
लायक नहीं था इसके बक्षिस हुई जो गुरु की।
मस्तों के साथ मिलकर मस्ताना हो गया हूँ ॥

# सत्गुरु का प्यार लिख दे

लिखनेवाले तू हो के दयाल लिख दे।
मेरे हृदय अन्दर सत्गुरु का प्यार लिख दे ॥
माथे पे लिख दे ज्योति गुराँ की।
नयनों में उनका दीदार लिख दे ॥मेरे०॥
जिभ्या पे लिख दे नाम गुरु का।
कानों में शब्द झंकार लिख दे ॥मेरे०॥
हाथों पे लिख दे सेवा गुरु की।
तन मन धन उन पे वार लिख दे ॥मेरे०॥
पैरों पे लिख दे जाना गुरु के द्वार।
सारा ही जीवन उनके साथ लिख दे ॥मेरे०॥
इक मत लिखना गुरु का बिछड़ना।
चाहे तू सारा संसार लिख दे ॥मेरे०॥

# ईश्वर की ओर

[मार्च, १९८२ में आश्रम में चेटीचंड, चैत शुक्ल दूज का ध्यान योग शिविर चल रहा है। प्रातःकाल में साधक भाई-बहन पूज्यश्री के मधुर और पावन सान्निध्य में ध्यान कर रहे हैं। पूज्यश्री उन्हें ध्यान द्वारा जीवन और मृत्यु की गहरी सतहों में उतार रहे हैं... जीवन के गुप्त रहस्यों का अनुभव करा रहे हैं। साधक लोग ध्यान में पूज्यश्री की धीर, गम्भीर, मधुर वाणी के तंतु के सहारे अपने अन्तर में उतरते जा रहे हैं। पूज्यश्री कह रहे हैं :]

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं अनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

'इन्द्रिय-विषयों में विरक्ति, अहंकार का अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख और दोषों को देखना (यह ज्ञान है)।'

(भगवद्गीता : १३.८)

आज तक कई जन्मों के कुटुम्ब और परिवार तुमने सजाये-धजाये। मृत्यु के एक झटके से वे सब छूट गये। अतः अभी से कुटुम्ब का मोह मन-ही-मन हटा दो।

यदि शरीर की इज्जत-आबरू की इच्छा है, शरीर के मान-मरतबे की इच्छा है तो वह आध्यात्मिक राह में बड़ी रुकावट हो जायेगी। फेंक दो शरीर की ममता को। निर्दोष बालक जैसे हो जाओ।

इस शरीर को बहुत सँभाला। कई बार इसको नहलाया, कई बार खिलाया-पिलाया, कई बार घुमाया, लेकिन... लेकिन यह शरीर सदा फरियाद करता ही रहा। कभी बीमारी कभी अनिद्रा, कभी जोड़ों में दर्द कभी सिर में दर्द, कभी पचना कभी न पचना। शरीर की गुलामी बहुत कर ली। मन-ही-मन अब शरीर की यात्रा कर लो पूरी। शरीर को कब तक 'मैं' मानते रहोगे बाबा... !

अब दृढ़तापूर्वक मन से ही अनुभव करते चलो कि तुम्हारा

शरीर दरिया के किनारे घूमने गया। बेंच पर बैठा। सागर के सौन्दर्य को निहार रहा है। आ गया कोई आखिरी झटका। तुम्हारी गरदन झुक गयी। तुम मर गये...

घर पर ही सिरदर्द हुआ या पेट में कुछ गड़बड़ हुई, बुखार आया और तुम मर गये...

तुम लिखते-लिखते अचानक हक्के-बक्के हो गये। हो गया 'हार्टफेल'। तुम मर गये...

तुम पूजा करते-करते, अगरबत्ती करते-करते एकदम सो गये। आवाज लगायी मित्रों को, कुटुम्बियों को, पत्नी को। वे लोग आये। पूछा : क्या हुआ... क्या हुआ ? कुछ ही मिनटों में तुम चल बसे...

तुम रास्ते पर चल रहे थे। अचानक कोई घटना घटी, दुर्घटना हुई और तुम मर गये...

निश्चित ही कुछ-न-कुछ निमित्त बन जायेगा तुम्हारी मौत का। तुमको पता भी न चलेगा। अतः चलने से पहले एक बार चलकर देखो। मरने से पहले एक बार मरकर देखो। बिखरने से पहले एक बार बिखरकर देखो।

दृढ़तापूर्वक निश्चय करो कि तुम्हारी जो विशाल काया है, जिसे तुम नाम और रूप से 'मैं' करके सँभाल रहे हो उस काया का, अपने देह का अध्यास आज तोड़ना है। साधना के आखिरी शिखर पर पहुँचने के लिए यह आखिरी अड़चन है। इस देह की ममता से पार होना पड़ेगा। जब तक यह देह की ममता रहेगी तब तक किये हुए कर्म तुम्हारे लिए बंधन बने रहेंगे। जब तक देह में आसक्ति बनी रहेगी तब तक विकार तुम्हारा पीछा न छोड़ेगें। चाहे तुम लाख उपाय कर लो लेकिन जब तक देहाध्यास बना रहेगा तब तक प्रभु के गीत नहीं गूँज पायेंगे। जब तक तुम अपने को देह मानते रहोगे तब तक ब्रह्म-साक्षात्कार न हो पायेगा। तुम अपने को हड्डी, मांस, त्वचा, रक्त, मलमूत्र, विष्टा का थैला मानते रहोगे तब तक दुर्भाग्य

से पिण्ड न छूटेगा। बड़े-से-बड़ा दुर्भाग्य है जन्म लेना और मरना। हजार-हजार सुविधाओं के बीच कोई जन्म ले, फर्क क्या पड़ता है ? दुःख झेलने ही पड़ते हैं उस बेचारे को।

हृदयपूर्वक ईमानदारी से प्रभु को प्रार्थना करो कि :

'हे प्रभु ! हे दया के सागर ! तेरे द्वार पर आये हैं। तेरे पास कोई कमी नहीं। तू हमें बल दे, तू हमें हिम्मत दे कि तेरे मार्ग पर कदम रखे हैं तो पहुँचकर ही रहें। हे मेरे प्रभु ! देह की ममता को तोड़कर तेरे साथ अपने दिल को जोड़ लें।'

आज तक अगले कई जन्मों में तुम्हारे कई पिता रहे होंगे, माताएँ रही होंगी, कई नाते-रिश्तेवाले रहे होंगे। उसके पहले भी कोई रहे होंगे और उसके पहले भी कोई रहे होंगे। तुम्हारा लगाव देह के साथ जितना प्रगाढ़ होगा उतना ये नाते-रिश्तों का बोझ तुम्हारे पर बना रहेगा। देह का लगाव जितना कम होगा उतना बोझ हलका होगा। भीतर से देह की अहंता टूटी तो बाहर की ममता तुम्हें फँसाने में समर्थ नहीं हो सकती।

भीतर से देह की आसक्ति टूट गयी तो बाहर की ममता तुम्हारे लिए खेल बन जायेगी। तुम्हारे जीवन से फिर जीवन्मुक्ति के गीत निकलेंगे।

जीवन्मुक्त पुरुष सबमें होते हुए, सब करते हुए भी सुखपूर्वक जीते हैं, सुखपूर्वक खाते-पीते हैं, सुखपूर्वक आते-जाते हैं, सुखपूर्वक स्वस्वरूप में समाते हैं।

केवल ममता हटाना है। देहाध्यास हट गया तो ममता भी हट गयी। देह की अहंता को हटाने के लिए आज स्मशानयात्रा कर लो। जीते-जी मर लो जरा-सा। डरना मत। आज मौत को बुलाओ : 'हे मौत ! तू इस शरीर पर आज उतर।'

कल्पना करो कि तुम्हारे शरीर पर आज मौत उतर रही है। तुम्हारा शरीर ढीला हो गया। किसी निमित्त से तुम्हारे प्राण निकल

गये। तुम्हारा शव पड़ा है। लोग जिसको आज तक 'फलाना भाई... फलाना सेठ... फलाना साहब...' कहते थे, उसके प्राण-पखेरू आज उड़ गये। अब वह लोगों की नजरों में मुर्दा होकर पड़ा है। हकीम-डॉक्टरों ने हाथ धो लिये हैं। जिसको तुम इतना पालते-पोसते थे, जिसकी इज्जत-आबरू को सँभालने में व्यस्त थे, वह शरीर आज मरा पड़ा है सामने। तुम उसे देख रहे हो। भीड़ इकट्ठी हो गयी। कोई सचमुच में आँसू बहा रहा है, कोई झूठमूठ का रो रहा है।

तुम चल बसे। शव पड़ा है। लोग आये, मित्र आये, पड़ोसी आये, साथी आये, स्नेही आये। टेलिफोन की घण्टियाँ खटखटायी जा रही हैं, टेलिग्राम दिये जा रहे हैं। मृत्यु होने पर जो होना चाहिए वह सब किया जा रहा है।

यह आखिरी ममता है देह की, जिसको पार किये बिना कोई योगी सिद्ध नहीं बन सकता, कोई साधक ठीक से साधना नहीं कर सकता, ठीक से सौभाग्य को उपलब्ध नहीं हो सकता। यह अंतिम अड़चन है। उसे हटाओ।

**मैं अरु मोर तोर की माया।**
**बश कर दीन्हीं जीवन काया॥**

तुम्हारा शरीर गिर गया, ढह गया। हो गया 'रामनाम सत है।' तुम मर गये। लोग इकट्ठे हो गये। अर्थी के लिए बाँस मँगवाये जा रहे हैं। तुम्हें नहलाने के लिए घर के अंदर ले जा रहे हैं। लोगों ने उठाया। तुम्हारी गरदन झुक गयी। हाथ-पैर लथड़ रहे हैं। लोग तुम्हें सँभालकर ले जा रहे हैं। एक बड़े थाल में शव को नहलाते हैं। लेकिन...

लेकिन वह चमत्कार कहाँ... ? वह प्रकाश कहाँ... ? वह चेतना कहाँ... ? जिस शरीर ने कितना-कितना कमाया, कितना-कितना खाया, जिसको कितना-कितना सजाया, कितना-कितना दिखाया, वह शरीर आज शव हो गया। एक श्वास लेना आज उसके बस की बात नहीं। मित्र को धन्यवाद देना उसके हाथ की बात

नहीं। एक संत-फकीर को हाथ जोड़ना उसके बस की बात नहीं।

आज वह पराश्रित शरीर बेचारा, शव बेचारा चला कूच करके इस जहाँ से। जिस पर इतने 'टेन्शन' (तनाव) थे, जिस जीवन के लिए इतना खिंचाव-तनाव था उस जीवन की यह हालत ? जिस शरीर के लिए इतने पाप और सन्ताप सहे वह शरीर आज इस परिस्थिति में पड़ा है ! देख लो जरा मन की आँख से अपने शरीर की हालत। लाचार पड़ा है। आज तक जो 'मैं... मैं...' कर रहा था, अपनेको उचित समझ रहा था, सयाना समझ रहा था, चतुर समझ रहा था, देख लो उस चतुर की हालत। पूरी चतुराई खाक में मिल गयी। पूरा **Known unknown** (ज्ञात अज्ञात) हो गया। पूरा ज्ञान एक झटके में समाप्त हो गया। सब नाते और रिश्ते टूट गये। धन और परिवार पराया हो गया।

जिनके लिए तुम रात्रियाँ जगे थे, जिनके लिए तुमने मस्तक पर बोझ उठाया था वे सब अब पराये हो गये बाबा... ! जिनके लिए तुमने पीड़ाएँ सहीं, वे सब तुम्हारे कुछ नहीं रहे। तुम्हारे इस प्यारे शरीर की यह हालत... ! !

मित्रों के हाथ से तुम नहलाये जा रहे हो। शरीर पोंछा न पोंछा, तौलिया घुमाया न घुमाया और तुम्हें वस्त्र पहना दिये। फिर उसे उठाकर बाँसों पर सुलाते हैं। अब तुम्हारे शरीर की यह हालत ! जिसके लिए तुमने बड़ी-बड़ी कमाइयाँ कीं, बड़ी-बड़ी विद्याएँ पढीं, कई जगह लाचारियाँ कीं, तुच्छ जीवन के लिए गुलामी की, कइयों को समझाया, सँभाला, वह लाचार शरीर, प्राण-पखेरू के निकल जाने से पड़ा है अर्थी पर।

जीते-जी मरने का अनुभव कर लो। तुम्हारा शरीर वैसे भी तो मरा हुआ है। इसमें रखा भी क्या है ?

अर्थी पर पड़े हुए शव पर लाल कपड़ा बाँधा जा रहा है। गिरती हुई गरदन को सँभाला जा रहा है। पैरों को अच्छी तरह रस्सी बाँधी

जा रही है, कहीं रास्ते में मुर्दा गिर न जाय। गरदन के इर्दगिर्द भी रस्सी के चक्कर लगाये जा रहे हैं। पूरा शरीर लपेटा जा रहा है। अर्थी बनानेवाला बोल रहा है : 'तू उधर से खींच।' दूसरा बोलता है : 'मैंने खींचा है, तू गाँठ मार।'

लेकिन यह गाँठ भी कब तक रहेगी ? रस्सियाँ भी कब तक रहेंगी ? अभी जल जायेंगी... और रस्सियों से बाँधा हुआ शव भी जलने को ही जा रहा है बाबा !

धिक्कार है इस नश्वर जीवन को... ! धिक्कार है इस नश्वर देह की ममता को... ! धिक्कार है इस शरीर के अध्यास और अभिमान को... !

अर्थी को कसकर बाँधा जा रहा है। आज तक तुम्हारा नाम सेठ, साहब की लिस्ट (सूची) में था। अब वह मुर्दे की लिस्ट में आ गया। लोग कहते हैं : 'मुर्दे को बाँधो जल्दी से।' अब ऐसा नहीं कहेंगे कि 'सेठ को, साहब को, मुनीम को, नौकर को, संत को, असंत को बाँधो...' पर कहेंगे, 'मुर्दे को बाँधो।'

हो गया तुम्हारे पूरे जीवन की उपलब्धियों का अंत। आज तक तुमने जो कमाया था वह तुम्हारा न रहा। आज तक तुमने जो जाना था वह मृत्यु के एक झटके में छूट गया। तुम्हारे 'इन्कमटेक्स' (आयकर) के कागजातों को, तुम्हारे प्रमोशन और रिटायरमेन्ट की बातों को, तुम्हारी उपलब्धि और अनुपलब्धियों को सदा के लिए अलविदा होना पड़ा।

हाय रे हाय मनुष्य तेरा श्वास ! हाय रे हाय तेरी कल्पनाएँ ! हाय रे हाय तेरी नश्वरता ! हाय रे हाय मनुष्य तेरी वासनाएँ ! आज तक इच्छाएँ कर रहा था कि इतना पाया है और इतना पाऊँगा, इतना जाना है और इतना जानूँगा, इतनों को अपना बनाया है और इतनों को अपना बनाऊँगा, इतनों को सुधारा है, औरों को सुधारूँगा।

अरे ! तू अपने को मौत से तो बचा ! अपने को जन्म-मरण से

तो बचा ! देखें तेरी ताकत। देखें तेरी कारीगरी बाबा !

तुम्हारा शव बाँधा जा रहा है। तुम अर्थी के साथ एक हो गये हो। स्मशानयात्रा की तैयारी हो रही है। लोग रो रहे हैं। चार लोगों ने तुम्हें उठाया और घर के बाहर तुम्हें ले जा रहे हैं। पीछे-पीछे अन्य सब लोग चल रहे हैं।

कोई स्नेहपूर्वक आये हैं, कोई मात्र दिखावा करने आये हैं। कोई निभाने आये हैं कि समाज में बैठे हैं तो...

दस-पाँच आदमी सेवा के हेतु आये हैं। उन लोगों को पता नहीं कि बेटे ! तुम्हारी भी यही हालत होगी। अपनेको कब तक अच्छा दिखाओगे ? अपनेको समाज में कब तक 'सेट' करते रहोगे ? 'सेट' करना ही है तो अपने को परमात्मा में 'सेट' क्यों नहीं करते भैया ?

दूसरों की शवयात्राओं में जाने का नाटक करते हो ? ईमानदारी से शवयात्राओं में जाया करो। अपने मन को समझाया करो कि तेरी भी यही हालत होनेवाली है। तू भी इसी प्रकार उठनेवाला है, इसी प्रकार जलनेवाला है। बेईमान मन ! तू अर्थी में भी ईमानदारी नहीं रखता ? जल्दी करवा रहा है ? घड़ी देख रहा है ? 'आफिस जाना है... दुकान पर जाना है...' अरे ! आखिर में तो स्मशान में जाना है ऐसा भी तू समझ ले। आफिस जा, दुकान पर जा, सिनेमा में जा, कहीं भी जा लेकिन आखिर तो स्मशान में ही जाना है। तू बाहर कितना जायेगा ?

ऐ पागल इन्सान ! ऐ माया के खिलौने ! सदियों से माया तुझे नचाती आयी है। अगर तू ईश्वर के लिए न नाचा, परमात्मा के लिए न नाचा तो माया तेरे को नचाती रहेगी। तू प्रभुप्राप्ति के लिए न नाचा तो माया तुझे न जाने कैसी-कैसी योनियों में नचायेगी ! कहीं बन्दर का शरीर मिल जायेगा तो कहीं रीछ का, कहीं गंधर्व का शरीर मिल जायेगा तो कहीं किन्नर का। फिर उन शरीरों को तू अपना मानेगा। किसीको अपनी माँ मानेगा तो किसीको बाप, किसीको

बेटा मानेगा तो किसीको बेटी, किसीको चाचा मानेगा तो किसीको चाची, उन सबको अपना बनायेगा। फिर वहाँ भी एक झटका आयेगा मौत का... और उन सबको भी छोड़ना पड़ेगा, पराया बनाना पड़ेगा। तू ऐसी यात्राएँ कितने युगों से करता आया है रे ? ऐसे नाते-रिश्ते तू कितने समय से बनाता आया है ?

'मेरे पुत्र की शादी हो जाय... बहू मेरे कहने में चले... मेरा नौकर वफादार रहे... दोस्तों का प्यार बना रहे...' यह सब ऐसा हो भी गया तो आखिर कब तक ? 'प्रमोशन हो जाय...' हो गया। फिर क्या ? 'शादी हो जाय...' हो गयी शादी। फिर क्या ? 'बच्चे हो जायें...' हो गये बच्चे भी। फिर क्या करोगे ? आखिर में तुम भी इसी प्रकार अर्थी में बाँधे जाओगे। इसी प्रकार कन्धों पर उठाये जाओगे। तुम्हारे देह की हालत जो सचमुच होनेवाली है उसे देख लो। इस सनातन सत्य से कोई बच नहीं सकता। तुम्हारे लाखों रुपये तुम्हारी सहाय नहीं कर सकते। तुम्हारे लाखों परिचय तुम्हें बचा नहीं सकते। इस घटना से तुम्हें गुजरना ही होगा। अन्य सब घटनाओं से तुम बच सकते हो लेकिन इस घटना से बचानेवाला आज तक पृथ्वी पर न कोई है, न हो पायेगा। अतः इस अनिवार्य मौत को तुम अभी से ज्ञान की आँख द्वारा जरा निहार लो।

तुम्हारी प्राणहीन देह को अर्थी में बाँधकर लोग ले जा रहे हैं स्मशान की ओर। लोगों की आँखों में आँसू हैं। लेकिन आँसू बहानेवाले भी सब इसी प्रकार जानेवाले हैं। आँसू बहाने से जान न छूटेगी। आँसू रोकने से भी जान न छूटेगी। शव को देखकर भाग जाने से भी जान न छूटेगी। शव को लिपट जाने से भी जान न छूटेगी। जान तो तुम्हारी तब छूटेगी जब तुम्हें आत्म-साक्षात्कार होगा। जान तो तुम्हारी तब छूटेगी जब संत का कृपा-प्रसाद तुम्हें पच जायेगा। जान तुम्हारी तब छूटेगी जब ईश्वर के साथ तुम्हारी एकता हो जायेगी।

भैया ! तुम इस मौत की दुर्घटना से कभी नहीं बच सकते। इस कमनसीबी से आज तक कोई नहीं बच सका।

**आया है सो जायेगा राजा रंक फकीर।**

किसीकी अर्थी के साथ ५० आदमी हों या ५०० आदमी हों, किसीकी अर्थी के साथ ५००० आदमी हों या मात्र ५ आदमी हों, इससे फर्क क्या पड़ता है ? आखिर तो वह अर्थी अर्थी है, शव शव ही है।

तुम्हारा शव उठाया जा रहा है। किसीने उस पर गुलाल छिड़का है, किसीने गेंदे के फूल रख दिये हैं। किसीने उसे मालाएँ पहना दी हैं। कोई तुमसे बहुत निभा रहा है तो तुम पर इत्र छिड़क रहा है, स्प्रे कर रहा है। परन्तु अब क्या फर्क पड़ता है इत्र से ? स्प्रे तुम्हें क्या काम देगी बाबा... ?

शव पर चाहे ईंट-पत्थर डाल दो चाहे सुवर्ण की इमारत खड़ी कर दो, चाहे फूल चढ़ा दो चाहे हीरे-जवाहरात न्योछावर कर दो, फर्कक्या पड़ता है ?

घर से बाहर अर्थी जा रही है। लोगों ने अर्थी को घेरा है। चार लोगों ने उठाया है, चार लोग साथ में हैं। राम... बोलो भाई राम...। तुम्हारी यात्रा हो रही है। उस घर से तुम विदा हो रहे हो जिसके लिए तुमने कितने-कितने 'प्लान' बनाये थे। उस द्वार से तुम सदा के लिए जा रहे हो बाबा... ! जिस घर को बनाने के लिए तुमने ईश्वरीय घर का त्याग कर रखा था, जिस घर को निभाने के लिए तुमने अपने प्यारे के घर का तिरस्कार कर रखा था उस घर से तुम मुर्दे के रूप में सदा के लिए विदा हो रहे हो। घर की दीवारें चाहे रो रही हों चाहे हँस रही हों, लेकिन तुमको तो जाना ही पड़ता है।

समझदार लोग कह रहे हैं कि शव को जल्दी ले जाओ। रात का मरा हुआ है... इसे जल्दी ले जाओ, नहीं तो इसके 'वायब्रेशन' ... इसके 'बैक्टीरिया' फैल जायेंगे, दूसरों को बीमारी हो जायेगी।

अब तुम्हें घड़ीभर रखने की किसीमें हिम्मत नहीं। चार दिन सँभालने का किसीमें साहस नहीं। सब अपना-अपना जीवन जीना चाहते हैं। तुम्हें निकालने के लिए उत्सुक हैं समझदार लोग। 'जल्दी करो। समय हो गया। कब पहुँचोगे ? जल्दी करो, जल्दी करो भाई... !'

तुम घर से कब तक चिपके रहोगे ? आखिर तो लोग तुम्हें बाँध-बूँधकर जल्दी से स्मशान ले जायेंगे।

देह की ममता तोड़नी पड़ेगी। इस ममता के कारण तुम जकड़े गये हो पाश में। इस ममता के कारण तुम जन्म-मरण के चक्कर में फँसे हो। यह ममता तुम्हें तोड़नी पड़ेगी। चाहे आज तोड़ो चाहे एक जन्म के बाद तोड़ो, चाहे एक हजार जन्मों के बाद तोड़ो।

लोग तुम्हें कन्धे पर उठाये ले जा रहे हैं। तुमने खूब मक्खन-घी खाया है, चरबी ज्यादा है तो लोगों को परिश्रम ज्यादा है। चरबी कम है तो लोगों को परिश्रम कम है। कुछ भी हो, तुम अब अर्थी पर आरूढ़ हो गये हो।

**यारों ! हम बेवफाई करेंगे।**
**तुम पैदल होगे हम कंधे चलेंगे ॥**
**हम पड़े रहेंगे तुम धकेलते चलोगे।**
**यारों ! हम बेवफाई करेंगे ॥**

तुम कन्धों पर चढ़कर जा रहे हो जहाँ सभी को अवश्य जाना है। राम... बोलो भाई... राम। राम... बोलो भाई... राम। राम... बोलो भाई... राम।

अर्थीवाले तेजी से भागे जा रहे हैं। पीछे ५०-१०० आदमी जा रहे हैं। वे आपस में बातचीत कर रहे हैं कि : 'भाई अच्छे थे, मालदार थे, सुखी थे।' (अथवा) 'गरीब थे, दुःखी थे... बेचारे चल बसे...।'

उन मूर्खों को पता नहीं कि वे भी ऐसे ही जायेंगे। वे तुम पर दया कर रहे हैं और अपने को शाश्वत समझ रहे हैं नादान !

अर्थी सड़क पर आगे बढ़ रही है। बाजार के लोग बाजार की

तरफ भागे जा रहे हैं। नौकरीवाले नौकरी की तरफ भागे जा रहे हैं। तुम्हारे शव पर किसीकी नजर पड़ती है वह 'ओ... हो...' करके फिर अपने काम की तरफ, अपने व्यवहार की तरफ भागा जा रहा है। उसको याद भी नहीं आती कि मैं भी इसी प्रकार जानेवाला हूँ, मैं भी मौत को उपलब्ध होनेवाला हूँ। साइकिल, स्कूटर, मोटर पर सवार लोग शवयात्रा को देखकर 'आहा... उहू...' करते आगे भागे जा रहे हैं, उस व्यवहार को सँभालने के लिए जिसे छोड़कर मरना है उन मूर्खों को। फिर भी सब उधर ही जा रहे हैं।

अब तुम घर और स्मशान के बीच के रास्ते में हो। घर दूर सरकता जा रहा है... स्मशान पास आ रहा है। अर्थी स्मशान के नजदीक पहुँची। एक आदमी स्कूटर पर भागा और स्मशान में लकड़ियों के इन्तजाम में लगा। स्मशानवाले से कह रहा हैः 'लकड़ी ८ मन तौलो, १२ मन तौलो, १६ मन तौलो। आदमी अच्छे थे इसलिए लकड़ी ज़्यादा खर्च हो जाय तो कोई बात नहीं।' जैसी जिनकी हैसियत होती है वैसी लकड़ियाँ खरीदी जाती हैं, लेकिन अब शव ८ मन में जले या १८ मन में, इससे क्या फर्क पड़ता है? धन ज्यादा है तो १० मन लकड़ी ज्यादा आ जायेगी, धन कम है तो दो-पाँच मन लकड़ी कम आ जायेगी, क्या फर्क पड़ता है इससे? तुम तो बाबा हो गये पराये।

अब स्मशान बिल्कुल नजदीक आ गया है। शकुन करने के लिए वहाँ बच्चों के बाल बिखेरे जा रहे हैं। लड्डू लाये थे साथ में, वे कुत्तों को खिलाये जा रहे हैं।

जिसको बहुत जल्दी है वे लोग वहीं से खिसक रहे हैं। बाकी के लोग तुम्हें वहाँ ले जाते हैं जहाँ सभी को जाना होता है।

लकड़ियाँ जमानेवाले लकड़ियाँ जमा रहे हैं। दो-पाँच मन लकड़ियाँ बिछा दी गयीं। अब तुम्हारी अर्थी को वे उन लकड़ियों पर उतार रहे हैं। बोझा कंधों से उतरकर अब लकड़ियों पर पड़ रहा

है। लेकिन वह बोझा भी कितनी देर वहाँ रहेगा ?

घास की गड्डियाँ, नारियल की जटायें, माचिश, घी और बत्ती सँभाली जा रही है। तुम्हारा अंतिम स्वागत करने के लिए ये चीजें यहाँ लायी गयी हैं। अंतिम अलविदा...

अपने शरीर को तुमने हलवा-पूरी खिलाकर पाला या रूखी-सूखी रोटी खिलाकर टिकाया इससे अब क्या फर्क पड़ता है ? गहने पहनकर जिये या बिना गहनों के जिये, इससे क्या फर्क पड़ता है ? आखिर तो वह अग्नि के द्वारा ही सँभाला जायेगा। माचिश से तुम्हारा स्वागत होगा।

इसी शरीर के लिए तुमने पाप-संताप सहे। इसी शरीर के लिए तुमने लोगों के दिल दुःखाये। इसी शरीर के लिए तुमने लोकेश्वर से सम्बन्ध तोड़ा। लो, देखो, अब क्या हो रहा है ? चिता पर पड़ा है वह शरीर। उसके ऊपर बड़े-बड़े लक्कड़ जमाये जा रहे हैं। जल्दी जल जाय इसलिए छोटी लकड़ियाँ साथ में रखी जा रही हैं।

सब लकड़ियाँ रख दी गयीं। बीच में घास भी मिलाया गया है, ताकि कोई हिस्सा कच्चा न रह जाय। एक भी मांस की लोथ बच न जाय। एक आदमी देख-रेख करता है, 'मैनेजमेन्ट' कर रहा है। वहाँ भी नेतागिरी नहीं छूटती। नेतागिरी की खोपड़ी उसकी चालू है। 'ऐसा करो... वैसा करो...' वह सूचनायें दिये जा रहा है।

ऐ चतुराई दिखानेवाले ! तुमको भी यही होनेवाला है। समझ लो भैया मेरे ! शव को जलाने में भी अगवानी चाहिए ? कुछ मुख्य विशेषताएँ चाहिए वहाँ भी ? वाह... वाह... !

हे अज्ञानी मनुष्य ! तू क्या-क्या चाहता है ? हे नादान मनुष्य ! तूने क्या-क्या किया है ? ईश्वर के सिवाय तूने कितने नाटक किये ? ईश्वर को छोड़कर तूने बहुत कुछ पकड़ा, मगर आज तक मृत्यु के एक झटके से सब कुछ हर बार छूटता आया है। हजारों बार तुझसे छुड़वाया गया है और इस जन्म में भी छुड़वाया जायेगा। तू जरा

सावधान हो जा मेरे भैया !

अर्थी के ऊपर लकड़े 'फिट' हो गये हैं। तुम्हारे पुत्र, तुम्हारे स्नेही मन में कुछ भाव लाकर आँसू बहा रहे हैं। कुछ स्नेहियों के आँसू नहीं आते हैं इसलिए वे शरमिंदा हो रहे हैं। बाकी के लोग गपशप लगाने बैठ गये हैं। कोई बीड़ी पीने लगा है कोई स्नान करने बैठ गया है, कोई स्कूटर की सफाई कर रहा है। कोई अपने कपड़े बदलने में व्यस्त है। कोई दुकान जाने की चिन्ता में है, कोई बाहरगाँव जाने की चिन्ता में है। तुम्हारी चिन्ता कौन करता है ? कब तक करेंगे लोग तुम्हारी चिन्ता ? तुम्हें स्मशान तक पहुँचा दिया, चिता पर सुला दिया, दीया-सलाई दान में दी, बात पूरी हो गयी।

लोग अब जाने को आतुर हैं। 'अब चिता को आग लगाओ। बहुत देर हो गयी। जल्दी करो... जल्दी करो...' इशारे हो रहे हैं। वे ही तो मित्र थे जो तुमसे कह रहे थे : 'बैठे रहो, तुम मेरे साथ रहो, तुम्हारे बिना चैन नहीं पड़ता।' अब वे ही कह रहे हैं : 'जल्दी करो... आग लगाओ... हम जायें... जान छोड़ो हमारी...'

वाह रे वाह संसार के मित्रों ! वाह रे वाह संसार के रिश्ते-नाते। धन्यवाद... धन्यवाद... तुम्हारा पोल देख लिया।

प्रभु को मित्र न बनाया तो यही हाल होनेवाला है। आज तक जो लोग तुम्हें सेठ, साहब कहते थे, जो तुम्हारे लंगोटिया यार थे वे ही जल्दी कर रहे हैं। उन लोगों को भूख लगी है। खुलकर तो नहीं बोलते लेकिन भीतर ही भीतर कह रहे हैं कि अब देर नहीं करो। जल्दी स्वर्ग पहुँचाओ। सिर की ओर से आग लगाओ ताकि जल्दी स्वर्ग में जाय।

वह तो क्या स्वर्ग में जायेगा ! उसके कर्म और मान्यताएँ जैसी होंगी ऐसे स्वर्ग में वह जायेगा लेकिन तुम रोटी रूप स्वर्ग में जाओगे। तुमको यहाँ से छुट्टी मिल जायेगी।

नारियल की जटाओं में घी डालते हैं। ज्योति जलाते हैं, तुम्हारे बुझे हुए जीवन को सदा के लिए नष्ट करने के हेतु ज्योति जलायी

जा रही है। यह ब्रह्मज्ञानी गुरु की ज्योति नहीं है, यह सद्‌गुरु की ज्योति नहीं है। यह तुम्हारे मित्रों की ज्योति है। जिनके लिए पूरा जीवन तुम खो रहे थे वे लोग तुम्हें यह ज्योति देंगे। जिनके पास जाने के लिए तुम्हारे पास समय न था उन सद्‌गुरु की ज्योति तुमने देखी भी नहीं है बाबा !

लोग ज्योति जलाते हैं। सिर की तरफ लकड़ियों के बीच जो घास है उसे ज्योति का स्पर्श कराते हैं। घास की गड्डी को आग ने घेर लिया है। पैरों की तरफ भी एक आदमी आग लगा रहा है। भुभुक... भुभुक... अग्नि शुरू हो गयी। तुम्हारे ऊपर ढँके हुए कपड़े तक आग पहुँच गयी है। लकड़े धीरे-धीरे आग पकड़ रहे हैं। अब तुम्हारे बस की बात नहीं कि आग बुझा लो। तुम्हारे मित्रों को जरूरत नहीं कि फायर ब्रिगेड बुला लें। अब डॉक्टर-हकीमों को बुलाने का मौका नहीं है। जरूरत भी नहीं है। अब सबको घर जाना है, तुमको छोड़कर विदा होना है।

धुआँ निकल रहा है। आग की ज्वालाएँ निकल रही हैं। जो ज्यादा स्नेही और साथी थे, वे भी आग की तपन से दूर भाग रहे हैं। चारों ओर अग्नि के बीच तुम्हें अकेला जलना पड़ रहा है। मित्र-स्नेही-सम्बन्धी-बचपन के दोस्त सब दूर खिसक रहे हैं।

अब... कोई... किसीका... नहीं। सारे सम्बन्ध... ममता के सम्बन्ध। ममता में जरा-सी आँच सहने की ताकत कहाँ है ? तुम्हारे नाते-रिश्तों में मौत की एक चिनगारी सहने की ताकत कहाँ है ? फिर भी तुम सम्बन्धों को पक्के किये जा रहे हो। तुम कितने भोले महेश्वर हो ! तुम कितने नादान हो ! अब देख लो जरा-सा।

अर्थी को आग ने घेरा है। लोगों को भूख ने घेरा है। कुछ लोग वहाँ से खिसक गये। कुछ लोग बचे हैं। चिमटा लिए हुए स्मशान का एक नौकर भी है। वह सँभाल करता है कि लक्कड़ इधर-उधर न चला जाय। लक्कड़ गिरता है तो फिर चढ़ाता है तुम्हारे सिर पर। अब

आग ने ठीक से घेर लिया है। चारों तरफ भुभुक... भुभुक... आग जल रही है। सिर की तरफ आग... पैरों की तरफ आग... बाल तो ऐसे जले मानो घास जला। मुंडी को भी आग ने घेर लिया है। मुँह में घी डाला हुआ था, बत्ती डाली हुई थी, आँखों पर घी लगाया हुआ था।

**मत कर रे भाया गरव गुमान गुलाबी रंग उड़ी जावेलो।**
**मत कर रे भाया गरव गुमान जवानीरो रंग उड़ी जावेलो ॥**
**उड़ी जावेलो रे फीको पड़ी जावेलो रे काले मर जावेलो,**
**पाछो नहीं आवेलो... मत कर रे गरव०**
**जोर रे जवानी थारी फिर को नी रे वेला...**
**इणने जातां नहीं लागे वार गुलाबी रंग उड़ी जावेलो ॥**
**पतंगी रंग उड़ी जावेलो... मत कर रे गरव०**
**धन रे दौलत थारा माल खजाना रे...**
**छोड़ी जावेलो रे पलमां उड़ी जावेलो ॥**
**पाछो नहीं आवेलो... मत कर रे गरव०**
**कंई रे लायो ने कंई ले जावेलो भाया...**
**कंई कोनी हाले थारे साथ गुलाबी रंग उड़ी जावेलो ॥**
**पतंगी रंग उड़ी जावेलो... मत कर रे गरव०**

तुम्हारे सारे शरीर को स्मशान की आग ने घेर लिया है। एक ही क्षण में उसने अपने भोग का स्वीकार कर लिया है। सारा शरीर काला पड़ गया। कपड़े जल गये, क़फन जल गया, चमड़ी जल गयी। पैरों का हिस्सा नीचे लथड़ रहा है, गिर रहा है। चरबी को आग स्वाहा कर रही है। मांस के टुकड़े जलकर नीचे गिर रहे हैं। हाथ के पंजे और हड्डियाँ गिर रही हैं। खोपड़ी तड़ाका देने को उत्सुक हो रही है। उसको भी आग ने तपाया है। शव में फैले हुए 'बैक्टीरिया' तथा बचा हुआ गैस था वह सब जल गया।

**ऐ गाफिल ! न समझा था, मिला था तन रतन तुझको।**
**मिलाया खाक में तूने, ऐ सजन ! क्या कहूँ तुझको ?**

अपनी वजूदी हस्ती में तू इतना भूल मस्ताना...
अपनी अहंता की मस्ती में तू इतना भूल मस्ताना...
करना था किया वो न, लगी उलटी लगन तुझको ॥
ऐ गाफिल०

जिन्होंके प्यार में हरदम मुस्तके दीवाना था...
जिन्होंके संग और साथ में भैया ! तू सदा विमोहित था...
आखिर वे ही जलाते हैं करेंगे या दफन तुझको ॥
ऐ गाफिल०

शाही और गदाही क्या ? कफन किस्मत में आखिर ।
मिले या ना खबर पुख्ता ऐ कफन और वतन तुझको ॥
ऐ गाफिल०

पहनी हुई टेरीकोटन, पहने हुए गहने तेरे काम न आये। तेरे वे हाथ, तेरे वे पैर सदा के लिए अग्नि के ग्रास हो रहे हैं। लक्कड़ों के बीच से चरबी गिर रही है। वहाँ भी आग की लपटें उसे भस्म कर रही हैं। तुम्हारे पेट की चरबी सब जल गयी। अब हड्डियाँ-पसलियाँ एक-एक होकर जुदा हो रही हैं।

ओ... हो... कितना सँभाला था इस शरीर को ! कितना प्यारा था वह ! जरा-सी किडनी बिगड़ गयी तो अमेरिका तक की दौड़ थी। अब तो पूरी देह बिगड़ी जा रही है। कहाँ तक दौड़ोगे ? कब तक दौड़ोगे ? जरा-सा पैर दुखता था, हाथ में चोट लगती थी तो स्पेश्यलिस्टों से घेरे जाते थे। अब कौन-सा स्पेश्यलिस्ट यहाँ काम देगा ? ईश्वर के सिवाय कोई यहाँ सहाय न कर सकेगा। आत्मज्ञान के सिवाय इस मौत की आग से तुम्हें सदा के लिए बचाने का सामर्थ्य डॉक्टरों-स्पेश्यलिस्टों के पास कहाँ है ? वे लोग खुद भी इस अवस्था में आनेवाले हैं। भले थोकबन्ध फीस ले लें, पर कब तक रखेंगे ? भले जाँच-पड़ताल मात्र के लिए थप्पीबंद नोटों के बंडल ले लें, पर लेकर जायेंगे कहाँ ? उन्हें भी इसी अवस्था से गुजरना होगा।

**शाही और गदाही क्या ? कफन किस्मत में आखिर...**

कर लो इकट्ठा। ले लो लम्बी-चौड़ी फीस। लेकिन याद रखोः यह क्रूर मौत तुम्हें साम्यवादी बनाकर छोड़ देगी। सबको एक ही तरह से गुजारने का सामर्थ्य यदि किसीमें है तो मौत में है। मौत सबसे बड़ी साम्यवादी है। प्रकृति सच्ची साम्यवादी है।

तुम्हारे शरीर का हाड़पिंजर भी अब बिखर रहा है। खोपड़ी टूटी। उसके पाँच-सात टुकड़े हो गये। गिर रहे हैं इधर-उधर। आ... हा...हा... हड्डी के टुकड़े किसके थे ? कोई साहब के थे या चपरासी के थे ? सेठ के थे या नौकर के थे ? सुखी आदमी के थे या दुःखी आदमी के थे ? भाई के थे या माई के थे ? कुछ पता नहीं चलता।

अब आग धीरे-धीरे शमन को जा रही है। अधिकांश मित्र स्नान में लगे हैं। तैयारियाँ कर रहे हैं जाने की। कितने ही लोग बिखर गये। बाकी के लोग अब तुम्हारी आखिरी इजाजत ले रहे हैं। आग को जल की अंजलि देकर, आँखों में आँसू लेकर विदा हो रहे हैं।

**कह रहा है आसमाँ यह समाँ कुछ भी नहीं।**
**रोती है शबनम कि नैरंगे जहाँ कुछ भी नहीं॥**
**जिनके महलों में हजारों रंग के जलते थे फानूस।**
**झाड़ उनकी कब्र पर है और निशाँ कुछ भी नहीं॥**
**जिनकी नौबत से सदा गूँजते थे आसमाँ।**
**दम बखुद है कब्र में अब हूँ न हाँ कुछ भी नहीं॥**
**तख्तवालों का पता देते हैं तख्ते गौर के।**
**खोज मिलता तक नहीं वादे अजां कुछ भी नहीं॥**

स्मशान में अब केवल अंगारों का ढेर बचा। तुम आज तक जो थे वह समाप्त हो गये। अब हड्डियों से मालूम करना असंभव है कि वे किसकी हैं। केवल अंगारे रह गये हैं। तुम्हारी मौत हो गयी। हड्डियाँ और खोपड़ी बिखर गयी। तुम्हारे नाते और रिश्ते टूट गये। अपने और पराये के सम्बन्ध कट गये। तुम्हारे शरीर की जाति और सांप्रदायिक

सम्बन्ध टूट गये। शरीर का कालापन और गोरापन समाप्त हो गया। तुम्हारी तन्दुरुस्ती और बीमारी अग्नि ने एक कर दी।

**ऐ गाफिल ! न समझा था...**

आग अब धीरे-धीरे शांत हो रही है क्योंकि जलने की कोई चीज बची नहीं। कुटुम्बी, स्नेही, मित्र, पड़ोसी सब जा रहे हैं। स्मशान के नौकर से कह रहे हैं : 'हम परसों आयेंगे फूल चुनने के लिए। देखना, किसी दूसरे के फूल मिश्रित न हो जायें।' कइयों के फूल वहाँ पड़े भी रह जाते हैं। मित्र अपनेवालों के फूल समझकर उठा लेते हैं।

कौन अपना कौन पराया ? क्या फूल और क्या बेफूल ? 'फूल' जो था वह तो अलविदा हो गया। अब हड्डियों को फूल कहकर भी क्या खुशी मनाओगे ? फूलों का फूल तो तुम्हारा चैतन्य था। उस चैतन्य से सम्बन्ध कर लेते तो तुम फूल ही फूल थे।

सब लोग घर गये। एक दिन बीता। दूसरा दिन बीता। तीसरे दिन वे लोग पहुँचे स्मशान में। चिमटे से इधर-उधर ढूँढ़कर अस्थियाँ इकट्ठी कर लीं। डाल रहे हैं तुम्हें एक डिब्बे में बाबा ! खोपड़ी के कुछ टुकड़े, जोड़ों की कुछ हड्डियाँ मिल गयीं। जो पक्की-पक्की थीं वे मिलीं, बाकी सब भस्म हो गयीं।

करीब एकाध किलो फूल मिल गये। उन्हें डिब्बे में डालकर मित्र घर ले आये हैं। समझानेवालों ने कहा : 'हड्डियाँ घर में न लाओ। बाहर रखो, दूर कहीं। किसी पेड़ की डाली पर बाँध दो। जब हरिद्वार जायेंगे तब वहाँ से लेकर जायेंगे। उसे घर में न लाओ, अपशकुन है।'

अब तुम्हारी हड्डियाँ अपशकुन हैं। घर में आना अमंगल है। वाह रे वाह संसार ! तेरे लिए पूरा जीवन खर्च किया था। इन हड्डियों को कई वर्ष बनाने में और सँभालने में लगे। अब अपशकुन हो रहा है ? बोलते हैं : इस डिब्बे को बाहर रखो। पड़ोसी के घर ले जाते हैं तो पड़ोसी नाराज होता है कि यह क्या कर रहे हो ? तुम्हारे जिगरी

दोस्त के घर ले जाते हैं तो वह इन्कार कर देता है कि इधर नहीं... दूर... दूर... दूर...

तुम्हारी हड्डियाँ किसीके घर में रहने लायक नहीं हैं, किसीके मंदिर में रहने लायक नहीं हैं। लोग बड़े चतुर हैं। सोचते हैं : अब इससे क्या मतलब है ? दुनियाँ के लोग तुम्हारे साथ नाता और रिश्ता तब तक सँभालेंगे जब तक तुमसे उनको कुछ मिलेगा। हड्डियों से मिलना क्या है ?

दुनियाँ के लोग तुम्हें बुलायेंगे कुछ लेने के लिए। तुम्हारे पास अब देने के लिए बचा भी क्या है ? वे लोग दोस्ती करेंगे कुछ लेने के लिए। सद्‌गुरु तुम्हें प्यार करेंगे... प्रभु देने के लिए। दुनियाँ के लोग तुम्हें नश्वर देकर अपनी सुविधा खड़ी करेंगे, लेकिन सद्‌गुरु तुम्हें शाश्वत देकर अपनी सुविधा की परवाह नहीं करेंगे। ॐ... ॐ... ॐ...

जिसमें चॉकलेट पड़ी थी, बिस्कुट पड़े थे उस छोटे-से डिब्बे में तुम्हारी अस्थियाँ पड़ी हैं। तुम्हारे सब पद और प्रतिष्ठा इस छोटे-से डिब्बे में पराश्रित होकर, अति तुच्छ होकर पेड़ पर लटकाये जा रहे हैं। जब कुटुम्बियों को मौका मिलेगा तब जाकर गंगा में प्रवाहित कर देंगे।

देख लो अपने कीमती जीवन की हालत !

जब बिल्ली दिखती है तब कबूतर आँखें बंद करके मौत से बचना चाहता है लेकिन बिल्ली उसे चट कर देती है। इसी प्रकार तुम यदि इस ठोस सत्य से बचना चाहोगे, 'मेरी मौत न होगी' ऐसा विचार करोगे अथवा इस सत्संग को भूल जाओगे फिर भी मौत छोड़ेगी नहीं।

इस सत्संग को याद रखना बाबा ! मौत से पार कराने की कुंजी वह देता है तुम्हें। तुम्हारी अहंता और ममता तोड़ने के लिए युक्ति दिखाता है ताकि तुम साधना में लग जाओ। इस राह पर कदम रख ही दिये हैं तो मंजिल तक पहुँच जाओ। कब तक रुके रहोगे ? हजार-हजार रिश्ते और नाते तुम जोड़ते आये हो। हजार-हजार

सम्बन्धियों को तुम रिझाते आये हो। अब तुम्हारी अस्थियाँ गंगा में पड़े उससे पहले अपना जीवन ज्ञान की गंगा में बहा देना। तुम्हारी अस्थियाँ पेड़ पर टँगें उससे पहले तुम अपने अहंकार को टाँग देना परमात्मा की अनुकंपा में। परमात्मारूपी पेड़ पर अपना अहंकार लटका देना। फिर जैसी उस प्यारे की मर्जी हो... नचा ले, जैसी उसकी मर्जी हो... दौड़ा ले।

**तेरी मर्जी पूरन हो...**

ऐसा करके अपने अहंकार को परमात्मारूपी पेड़ तक पहुँचा दो।

तीसरा दिन मनाने के लिए लोग इकट्ठे हुए हैं। हँसनेवाले शत्रुओं ने घर बैठे थोड़ा हँस लिया। रोनेवाले स्नेहियों ने थोड़ा रो लिया। दिखावा करनेवालों ने औपचारिकताएँ पूरी कर लीं।

सभा में आये हुए लोग तुम्हारी मौत के बारे में कानाफूसी कर रहे हैं :

मौत कैसे हुई ? सिर दुखता था। पानी माँगा। पानी दिया और पीते पीते चल बसे।

चक्कर आये और गिर पड़े। वापस नहीं उठे।

पेट दुखने लगा और वे मर गये।

सुबह तो घूमकर आये। खूब खुश थे। फिर जरा-सा कुछ हुआ। बोले : 'मुझे कुछ हो रहा है, डॉक्टर को बुलाओ।' हम बुलाने गये और पीछे यह हो गया।

हॉस्पिटल में खूब उपचार किये, बचाने के लिए डॉक्टरों ने खूब प्रयत्न किये लेकिन मर गये। रास्ते पर चलते-चलते सिधार गये। कुछ-न-कुछ निमित्त बन ही गया।

तीसरा दिन मनाते वक्त तुम्हारी मौत के बारे में बातें हो गयी थोड़ी देर। फिर समय हो गया : पाँच से छः। उठकर सब चल दिये। कब तक याद करते रहेंगे ? लोग लग गये अपने-अपने काम-धन्धे में।

अस्थियों का डिब्बा पेड़ पर लटक रहा है। दिन बीत रहे हैं।

मौका आया। वह डिब्बा अब हरिद्वार ले जाया जा रहा है। एक थैली में डिब्बा डालकर ट्रेन की सीट के नीचे रखते हैं। लोग पूछते हैं : 'इसमें क्या है ?' तुम्हारे मित्र बताते हैं : 'नहीं नहीं, कुछ नहीं। सब ऐसे ही है। अस्थियाँ हैं इसमें...' ऐसा कहकर वे पैर से डिब्बे को धक्का लगाते हैं। लोग चिल्लाते हैं:

'यहाँ नहीं... यहाँ नहीं... उधर रखो।'

वाह रे वाह संसार ! तुम्हारी अस्थियाँ जिस डिब्बे में हैं वह डिब्बा ट्रेन में सीट के नीचे रखने के लायक नहीं रहा। वाह रे प्यारा शरीर ! तेरे लिए हमने क्या-क्या किया था ? तुझे सँभालने के लिए हमने क्या-क्या नहीं किया ? ॐ... ॐ... ॐ... !!

मित्र हरिद्वार पहुँचे हैं। पण्डे लोगों ने उन्हें घेर लिया। मित्र आखिरी विधि करवा रहे हैं। अस्थियाँ डाल दीं गंगा में, प्रवाहित हो गयीं। पण्डे को दक्षिणा मिल गयी। मित्रों को आँसू बहाने थे, दो-चार बहा लिये। अब उन्हें भी भूख लगी है। अब वे भी अपनी हड्डियाँ सँभालेंगे, क्योंकि उन्हें तो सदा रखनी हैं। वे खाते हैं, पीते हैं, गाड़ी का समय पूछते हैं।

जल्दी वापस लौटना है क्योंकि ऑफिस में हाजिर होना है, दुकान सँभालनी है। वे सोचते हैं : 'वह तो मर गया। उसे विदा दे दी। मैं मरनेवाला थोड़े हूँ !'

मित्र भोजन में जुट गये हैं।

❀ ❀ ❀

आज तुमने अपनी मौत की यात्रा देखी। अपने शव की, अपनी हड्डियों की स्थिति देख ली। तुम एक ऐसी चेतना हो कि तुम्हारी मौत होने पर भी तुम उस मौत के साक्षी हो। तुम्हारी हड्डियाँ जलने पर भी तुम उससे पृथक रहनेवाली ज्योति हो। तुम्हारी अर्थी जलने के बाद भी तुम अर्थी से पृथक चेतना हो। तुम साक्षी हो, आत्मा हो। तुमने आज अपनी मौत को भी साक्षी होकर देख लिया। आज

तक तुम हजारों-हजारों मौत की यात्राओं को देखते आये हो।

जो मौत की यात्रा के साक्षी बन जाते हैं उनके लिये यात्रा यात्रा रह जाती है, साक्षी उससे परे हो जाता है।

मौत के बाद अपने सब पराये हो गये। तुम्हारा शरीर भी पराया हो गया। लेकिन तुम्हारी आत्मा आज तक परायी नहीं हुई।

हजारों मित्रों ने तुमको छोड़ दिया, लाखों कुटुम्बियों ने तुमको छोड़ दिया, करोड़ों-करोड़ों शरीरों ने तुमको छोड़ दिया, अरबों-अरबों कर्मों ने तुमको छोड़ दिया लेकिन तुम्हारा आत्मदेव तुमको कभी नहीं छोड़ता।

शरीर की स्मशानयात्रा हो गयी लेकिन तुम उससे अलग साक्षी चैतन्य हो। तुमने अब जान लिया कि :

'मैं इस शरीर की अंतिम यात्रा के बाद भी बचता हूँ, अर्थी के बाद भी बचता हूँ, जन्म से पहले भी बचता हूँ और मौत के बाद भी बचता हूँ। मैं चिदाकाश... ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। मैंने छोड़ दिया मोह-ममता को। तोड़ दिया सब प्रपंच।'

इस अभ्यास को बढ़ाते रहना। शरीर की अहंता और ममता, जो आखिरी विघ्न है, उसे इस प्रकार तोड़ते रहना। मौका मिले तो स्मशान में जाना। दिखाना अपनेको वह दृश्य।

मैं भी जब घर में था, तब स्मशान में जाया करता था। कभी-कभी दिखाता था अपने मन को कि, 'देख! तेरी हालत भी ऐसी होगी।'

स्मशान में विवेक और वैराग्य होता है। बिना विवेक और वैराग्य के तुम्हें ब्रह्माजी का उपदेश भी काम न आयेगा। बिना विवेक और वैराग्य के तुम्हें साक्षात्कारी पूर्ण सद्गुरु मिल जायें फिर भी तुम्हें इतनी गति न करवा पायेंगे। तुम्हारा विवेक और वैराग्य न जगा हो तो गुरु भी क्या करें ?

विवेक और वैराग्य जगाने के लिए कभी-कभी स्मशान में जाते रहना। कभी घर में बैठे ही मन को स्मशान की यात्रा करवा लेना।

**मरो मरो सब कोई कहे मरना न जाने कोय ।**
**एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना न होय ॥**

ज्ञान की ज्योति जगने दो । इस शरीर की ममता को टूटने दो । शरीर की ममता टूटेगी तो अन्य नाते-रिश्ते सब भीतर से ढीले हो जायेंगे । अहंता-ममता टूटने पर तुम्हारा व्यवहार प्रभु का व्यवहार हो जायेगा । तुम्हारा बोलना प्रभु का बोलना हो जायेगा । तुम्हारा देखना प्रभु का देखना हो जायेगा । तुम्हारा जीना प्रभु का जीना हो जायेगा ।

केवल भीतर की अहंता तोड़ देना । बाहर की ममता में तो रखा भी क्या है ?

**देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।**
**यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥**

**देह छतां जेनी दशा वर्ते देहातीत ।**
**ते ज्ञानीना चरणमां हो वन्दन अगणित ॥**

भीतर-ही-भीतर अपने-आपसे पूछो कि :

'मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि देह होते हुए भी मैं अपने को देह से पृथक अनुभव करूँगा ? मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि एकांत में बैठा-बैठा मैं अपने मन-बुद्धि को पृथक देखते-देखते अपनी आत्मा में तृप्त होऊँगा ? मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि मैं आत्मानन्द में मस्त रहकर संसार के व्यवहार में निश्चिन्त रहूँगा ? मेरे ऐसे मेरे दिन कब आयेंगे कि शत्रु और मित्र के व्यवहार को मैं खेल समझूँगा ?'

ऐसा न सोचो कि वे दिन कब आयेंगे कि मेरा प्रमोशन हो जायेगा... मैं प्रेसिडेन्ट हो जाऊँगा... मैं प्राइम मिनिस्टर हो जाऊँगा ?

आग लगे ऐसे पदों की वासना को ! ऐसा सोचो कि मैं कब आत्मपद पाऊँगा ? कब प्रभु के साथ एक होऊँगा ?

अमेरिका के प्रेसिडेन्ट मि. कूलिज व्हाइट हाउस में रहते थे । एक बार वे बगीचे में घूम रहे थे । किसी आगन्तुक ने पूछा :

''यहाँ कौन रहता है ?''

कूलिज ने कहा : ''यहाँ कोई रहता नहीं है । यह सराय है, धर्मशाला है । यहाँ कई आ-आकर चले गये, कोई रहता नहीं ।''

रहने को तुम थोड़े ही आये हो ! तुम यहाँ से गुजरने को आये हो, पसार होने को आये हो । यह जगत तुम्हारा घर नहीं है । घर तो तुम्हारा आत्मदेव है । फकीरों का जो घर है वही तुम्हारा घर है । जहाँ फकीरों ने डेरा डाला है वहीं तुम्हारा डेरा सदा के लिए टिक सकता है, अन्यत्र नहीं । अन्य कोई भी महल, चाहे कैसा भी मजबूत हो, तुम्हें सदा के लिए रख नहीं सकता ।

**संसार तेरा घर नहीं, दो चार दिन रहना यहाँ ।**
**कर याद अपने राज्य की, स्वराज्य निष्कंटक जहाँ ।।**

कूलिज से पूछा गया : ''**I have come to know that Mr. Coolidge, President of America lives here.**''

(''मुझे पता चला है कि अमेरिका के राष्ट्रपति श्री कूलिज यहाँ रहते हैं ।'')

कूलिज ने कहा : ''**No, Coolidge does not live here. Nobody lives here. Everybody is passing through.**''

(''नहीं, कूलिज यहाँ नहीं रहता । कोई भी नहीं रहता । सब यहाँ से गुजर रहे हैं ।'')

चार साल पूरे हुए । मित्रों ने कहा : ''फिर से चुनाव लड़ो । समाज में बड़ा प्रभाव है आपका । फिर से चुने जाओगे ।''

कूलिज बोला : ''चार साल मैंने व्हाइट हाउस में रहकर देख लिया । प्रेसिडेन्ट का पद सँभालकर देख लिया । कोई सार नहीं । अपने-आपसे धोखा करना है, समय बरबाद करना है । **I have no time to waste.** अब मेरे पास बरबाद करने के लिए समय नहीं है ।''

ये सारे पद और प्रतिष्ठा समय बरबाद कर रहे हैं तुम्हारा । बड़े-बड़े नाते-रिश्ते तुम्हारा समय बरबाद कर रहे हैं ।

स्वामी रामतीर्थ प्रार्थना किया करते थे :

''हे प्रभु ! मुझे मित्रों से बचाओ, मुझे सुखों से बचाओ।''

सरदार पूरनसिंह ने पूछा : ''क्या कह रहे हैं स्वामीजी ? शत्रुओं से बचना होगा, मित्रों से क्या बचना है ?''

रामतीर्थ : ''नहीं, शत्रुओं से मैं निपट लूँगा, दुःखों से मैं निपट लूँगा। दुःख में कभी आसक्ति नहीं होती, ममता नहीं होती। ममता, आसक्ति जब हुई है तब सुख में हुई है, मित्रों में हुई है, स्नेहियों में हुई है।''

मित्र हमारा समय खा जाते हैं, सुख हमारा समय खा जाता है। वे हमें बेहोशी में रखते हैं। जो करना है वह रह जाता है। जो नहीं करना है उसे सँभालने में ही जीवन खप जाता है।

तथाकथित मित्रों से हमारा समय बच जाय, तथाकथित सुखों से हमारी आसक्ति हट जाय। सुख में होते हुए भी परमात्मा में रह सको, मित्रों के बीच रहते हुए भी ईश्वर में रह सको- ऐसी समझ की एक आँख रखना अपने पास।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ! ॐ... ॐ... ॐ... !!

तुम्हारे शरीर की यात्रा हो गयी पूरी। मौत को भी तुमने देखा। मौत को देखनेवाले तुम दृष्टा कैसे मर सकते हो ? तुम साक्षात् चैतन्य हो। तुम आत्मा हो। तुम निर्भय हो। तुम निःशंक हो। मौत कई बार आकर शरीर को झपट गयी। तुम्हारी कभी मृत्यु नहीं हुई। केवल शरीर बदलते आये, एक योनि से दूसरी योनि में यात्रा करते आये।

तुम निर्भयतापूर्वक अनुभव करो कि मैं आत्मा हूँ। मैं अपनेको ममता से बचाऊँगा। बेकार के नाते और रिश्तों में बहते हुए अपने जीवन को बचाऊँगा। पराई आशा से अपने चित्त को बचाऊँगा। आशाओं का दास नहीं लेकिन आशाओं का राम होकर रहूँगा। ॐ... ॐ... ॐ...

मैं निर्भय रहूँगा। मैं बेपरवाह रहूँगा जगत के सुख-दुःख में। मैं संसार की हर परिस्थिति में निश्चिन्त रहूँगा, क्योंकि मैं आत्मा हूँ।

ऐ मौत ! तू शरीरों को बिगाड़ सकती है, मेरा कुछ नहीं कर सकती। तू क्या डराती है मुझे ?

ऐ दुनियाँ की रंगीनियाँ ! ऐ संसार के प्रलोभन ! तुम मुझे अब क्या फँसाओगे ! तुम्हारी पोल मैंने जान ली है। हे समाज के रीति-रिवाज ! तुम कब तक बाँधोगे मुझे ? हे सुख और दुःख ! तुम कब तक नचाओगे मुझे ? अब मैं मोहनिशा से जाग गया हूँ।

निर्भयतापूर्वक, दृढ़तापूर्वक, ईमानदारी और निःशंकता से अपनी असली चेतना को जगाओ । कब तक तुम शरीर में सोते रहोगे ?

साधना के रास्ते पर हजार-हजार विघ्न होंगे, लाख-लाख काँटे होंगे। उन सबके ऊपर निर्भयतापूर्वक पैर रखेंगे। वे काँटे फूल न बन जायें तो हमारा नाम 'साधक' कैसे ?

ॐ... ॐ... ॐ...

हजारों-हजारों उत्थान और पतन के प्रसंगों में हम अपनी ज्ञान की आँख खोले रहेंगे। हो होकर क्या होगा ? इस मुर्दे शरीर का ही तो उत्थान और पतन गिना जाता है। हम तो अपनी आत्म-मस्ती में मस्त हैं।

**बिगड़े तब जब हो कोई बिगड़नेवाली शय।**
**अकाल अछेद्य अभेद्य को कौन वस्तु का भय ॥**

मुझ चैतन्य को , मुझ आत्मा को क्या बिगड़ना है और क्या मिलना है ? बिगड़-बिगड़कर किसका बिगड़ेगा ? इस मुर्दे शरीर का ही न ? मिल-मिलकर भी क्या मिलेगा ? इस मुर्दे शरीर को ही मिलेगा न ? इसको तो मैं ज़लाकर आया हूँ ज्ञान की आग में। अब सिकुड़ने की क्या जरूरत है ? बाहर के दुःखों के सामने, प्रलोभनों के सामने झुकने की क्या जरूरत है ?

अब मैं सम्राट की नाईं जिऊँगा... बेपरवाह होकर जिऊँगा। साधना के मार्ग पर कदम रखा है तो अब चलकर ही रहूँगा। ॐ...

ॐ... ॐ... ऐसे व्यक्ति के लिए सब संभव है।

**एक मरणियो सोने भारे।**

आखिर तो मरना ही है, तो अभी से मौत को निमंत्रण दे दो।

साधक वह है कि जो हजार विघ्न आयें तो भी न रुके, लाख प्रलोभन आयें तो भी न फँसे। हजार भय के प्रसंग आयें तो भी भयभीत न हो और लाख धन्यवाद मिले तो भी अहंकारी न हो। उसका नाम साधक है। साधक का अनुभव होना चाहिए कि :

**हमें रोक सके ये जमाने में दम नहीं।**
**हम से जमाना है जमाने से हम नहीं॥**

प्रह्लाद के पिता ने रोका तो प्रह्लाद ने पिता की बात को ठुकरा दी। वह भगवान के रास्ते चल पड़ा। मीरा को पति और परिवार ने रोका तो मीरा ने उनकी बात को ठुकरा दिया। राजा बलि को तथाकथित गुरु ने रोका तो राजा बलि ने उनकी बात को सुनी अनसुनी कर दी।

ईश्वर के रास्ते पर चलने में यदि गुरु भी रोकता है तो गुरु की बात को भी ठुकरा देना, पर ईश्वर को नहीं छोड़ना।

ऐसा कौन गुरु है जो भगवान के रास्ते चलने से रोकेगा ? वह निगुरा गुरु है। ईश्वर के रास्ते चलने में यदि कोई गुरु रोके तो तुम बलि राजा को याद करके कदम आगे रखना। यदि पत्नी रोके तो राजा भरथरी को याद करके पत्नी की ममता को ढकेल देना। यदि पुत्र और परिवार रोकता है तो उन्हें ममता की जाल समझकर काट देना ज्ञान की कैंची से। ईश्वर के रास्ते, आत्म-साक्षात्कार के रास्ते चलने में दुनियाँ का अच्छे-से-अच्छा व्यक्ति भी आड़े आता हो तो... आहा ! तुलसीदासजी ने कितना सुन्दर कहा है !

**जाके प्रिय न राम वैदेही,**
**तजिए ताहि कोटि वैरी सम, यद्यपि परम सनेही।**

ऐसे प्रसंग में परम स्नेही को भी वैरी की तरह त्याग दो। अन्दर

की चेतना का सहारा लो और 'ॐ' की गर्जना करो ।

दुःख और चिन्ता, हताशा और परेशानी, असफलता और दरिद्रता भीतर की चीजें होती हैं, बाहर की नहीं । जब भीतर तुम अपने को असफल मानते हो तब बाहर तुम्हें असफलता दिखती है ।

भीतर से तुम दीन-हीन मत होना । घबराहट पैदा करनेवाली परिस्थितियों के आगे भीतर से झुकना मत । ॐकार का सहारा लेना । मौत भी आ जाय तो एक बार मौत के सिर पर भी पैर रखने की ताकत पैदा करना । कब तक डरते रहोगे ? कब तक मनौतियाँ मनाते रहोगे ? कब तक नेताओं को, साहबों को, सेठों को, नौकरों को रिझाते रहोगे ? तुम अपने-आपको रिझा लो एक बार । अपने-आपसे दोस्ती कर लो एक बार । बाहर के दोस्त कब तक बनाओगे ?

**कबीरा इह जग आय के, बहुत से कीने मीत ।**
**जिन दिल बाँधा एक से, वे सोये निश्चिंत ।।**

बहुत सारे मित्र किये लेकिन जिसने एक से दिल बाँधा वह धन्य हो गया । अपने-आपसे दिल बाँधना है । यह 'एक' कोई आकाश-पाताल में नहीं बैठा है । कहीं टेलीफोन के खम्भे नहीं डालने हैं, वायरिंग नहीं जोड़नी है । वह 'एक' तो तुम्हारा अपना-आपा है । वह 'एक' तुम्हीं हो । नाहक सिकुड़ रहे हो । 'यह मिलेगा तो सुखी होऊँगा, वह मिलेगा तो सुखी होऊँगा...'

अरे ! सब चला जाय तो भी ठीक है, सब आ जाय तो भी ठीक है । आखिर यह संसार सपना है । गुजरने दो सपने को । हो होकर क्या होगा ? क्या नौकरी नहीं मिलेगी ? खाना नहीं मिलेगा ? कोई बात नहीं । आखिर तो मरना है इस शरीर को । ईश्वर के मार्ग पर चलते हुए बहुत-बहुत तो भूख-प्यास से पीड़ित हो मर जायेंगे । वैसे भी खा-खाकर लोग मरते ही हैं न ! वास्तव में होता तो यह है कि प्रभु-प्राप्ति के मार्ग पर चलनेवाले भक्त की रक्षा ईश्वर स्वयं करते हैं । तुम जब निश्चिंत हो जाओगे तो तुम्हारे लिए ईश्वर चिन्तित

होगा कि कहीं भूखा न रह जाए ब्रह्मवेत्ता।

**सोचा मैं न कहीं जाऊँगा यहीं बैठकर अब खाऊँगा।**
**जिसको गरज होगी आयेगा सृष्टिकर्त्ता खुद लायेगा॥**

सृष्टिकर्त्ता खुद भी आ सकता है। सृष्टि चलाने की और सँभालने की उसकी जिम्मेदारी है। तुम यदि सत्य में जुट जाते हो तो धिक्कार है उन देवी-देवताओं को जो तुम्हारी सेवा के लिए लोगों को प्रेरणा न दें। तुम यदि अपने-आपमें आत्मारामी हो तो धिक्कार है उन किन्नरों और गंधर्वों को जो तुम्हारा यशोगान न करें!

नाहक तुम देवी-देवताओं के आगे सिकुड़ते रहते हो कि 'आशीर्वाद दो... कृपा करो...' तुम अपनी आत्मा का घात करके, अपनी शक्तियों का अनादर करके कब तक भीख माँगते रहोगे? अब तुम्हें जागना होगा। इस द्वार पर आये हो तो सोये-सोये काम न चलेगा।

हजार तुम यज्ञ करो, लाख तुम मंत्र करो लेकिन तुमने मूर्खता नहीं छोड़ी तब तक तुम्हारा भला न होगा। ३३ करोड़ देवता तो क्या, ३३ करोड़ कृष्ण आ जायें, लेकिन जब तक तत्त्वज्ञान को व्यवहार में उतारा नहीं तब तक अर्जुन की तरह तुम्हें रोना पड़ेगा। **Let the lion of Vedant roar in your life.** वेदान्तरूपी सिंह को अपने जीवन में गर्जने दो। टँकार कर दो ॐ कार का। फिर देखो, दुःख-चिन्ताएँ कहाँ रहते हैं।

चाचा मिटकर भतीजे क्यों होते हो? आत्मा होकर शरीर क्यों बन जाते हो? कब तक इस जलनेवाले को 'मैं' मानते रहोगे? कब तक इसकी अनुकूलता में सुख, प्रतिकूलता में दुःख महसूस करते रहोगे? अरे, सुविधा के साधन तुम्हें पाकर धनभागी हो जायें, तुम्हारे कदम पड़ते ही असुविधा सुविधा में बदल जाय- ऐसा तुम्हारा जीवन हो।

घने जंगल में चले जाओ। वहाँ भी सुविधा उपलब्ध हो जाय। न भी हो तो अपनी मौज, अपना आत्मानंद भंग न हो। भिक्षा मिले

तो खा लो। न भी मिले तो वाह वाह! आज उपवास हो गया।

**राजी हैं उसमें जिसमें तेरी रजा है।**
**हमारी न आरजू है न जूस्तजू है॥**

खाना या नहीं खाना यह मुर्दे के लिए है। जिसकी अस्थियाँ भी ठुकराई जाती हैं उसकी चिन्ता ? भगवान का प्यारा होकर टुकड़ों की चिन्ता ? संतों का प्यारा होकर कपड़ों की चिन्ता ? फकीरों का प्यारा होकर रुपयों की चिन्ता ? सिद्धों का प्यारा होकर नाते-रिश्तों की चिन्ता ?

चिन्ता के बहुत बोझे उठाये। अब निश्चिन्त हो जाओ। फकीरों के संग में आये हो तो अब फक्कड़ हो जाओ। साधना में जुट जाओ।

फकीर का मतलब भिखारी नहीं। फकीर का मतलब लाचार नहीं। फकीर वह है जो भगवान की छाती पर खेलने का सामर्थ्य रखता हो। ईश्वर की छाती पर लात मारने की शक्ति जिसमें है वह फकीर। भृगु ने भगवान की छाती पर लात मार दी और भगवान पैरचंपी कर रहे हैं। भृगु फकीर थे। भिखमंगों को थोड़े ही फकीर कहते हैं ? तृष्णावान को थोड़े ही फकीर कहते हैं ?

भृगु को भगवान के प्रति द्वेष न था। उनकी समता निहारने के लिए लगा दी लात। भगवान विष्णु ने क्या किया ? कोप किया ? नहीं। भृगु के पैर पकड़कर चंपी की कि हे मुनि ! तुम्हें चोट तो नहीं लगी ?

फकीर ऐसे होते हैं। उनके संग में आकर भी लोग रोते हैं : 'कंकड़ दो... पत्थर दो... मेरा क्या होगा... ? बच्चों का क्या होगा... सद्‌गुरु ? कुटुम्ब का क्या होगा... ?'

सब ठीक हो जायेगा। पहले तुम अपनी महिमा में आ जाओ। अपने-आपमें आ जाओ।

न्यायाधीश कोर्ट में झाड़ू लगाने थोड़े ही जाता है ? वादी-प्रतिवादी को, असील-वकील को बुलाने थोड़ी ही जाता है ? वह तो कोर्ट में आकर विराजमान होता है अपनी कुर्सी पर। बाकी के

सब काम अपने-आप होने लगते हैं। न्यायाधीश अपनी कुर्सी छोड़कर पानी भरने लग जाय, झाड़ू लगाने लग जाय, वादी-प्रतिवादी को पुकारने लग जाय तो वह क्या न्याय करेगा ?

तुम न्यायाधीशों के भी न्यायाधीश हो। अपनी कुर्सी पर बैठ जाओ। अपनी आत्मचेतना में जग जाओ।

छोटी-बड़ी पूजाएँ बहुत की। अब आत्मपूजा में आ जाओ।

**देखा अपने आपको, मेरा दिल दीवाना हो गया।**
**ना छेड़ो मुझे यारों ! मैं खुद पे मस्ताना हो गया॥**

ऐसे गीत निकलेंगे तुम्हारे भीतर से। तुम अपनी महिमा में आओ। तुम कितने बड़े हो ! इन्द्रपद तुम्हारे आगे तुच्छ है, अति तुच्छ है। इतने तुम बड़े हो, फिर सिकुड़ रहे हो ! धक्का-मुक्की कर रहे हो ! 'दया कर दो... जरा-सा प्रमोशन दे दो... अव्वल कारकुन में से तहसीलदार बना दो... तहसीलदार में से कलेक्टर बना दो ... कलेक्टर में से सचिव बना दो ...'

लेकिन... **जो तुमको यह सब बनायेंगे वे तुमसे बड़े बन जायेंगे। तुम छोटे ही रह जाओगे**। बनती हुई चीज से बनानेवाला बड़ा होता है। अपने से किसको बड़ा रखोगे ? मुर्दों को क्या बड़ा रखना ? अपनी आत्मा को ही सबसे बड़ी जान लो, भैया ! यहाँ तक कि तुम अपने से इन्द्र को भी बड़ा न मानो।

फकीर तो और आगे की बात कहेंगे। वे कहते हैं : 'ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी अपने से बढ़कर नहीं होते, एक ऐसी अवस्था आती है। यह है आत्म-साक्षात्कार।'

ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तत्त्ववेत्ता से आलिंगन करके मिलते हैं कि यह जीव अब शिवस्वरूप हुआ। ऐसे ज्ञान में जगने के लिए तुम्हारा मनुष्य जन्म हुआ है। ...और तुम सिकुड़ते रहते हो ? 'मुझे नौकर बनाओ, चाकर रखो।' अरे, तुम्हारी यदि तैयारी है तो अपनी महिमा में जगना कोई कठिन बात नहीं है।

**यह कौन-सा उकदा है जो हो नहीं सकता।**
**तेरा जी न चाहे तो हो नहीं सकता॥**
**छोटा-सा कीड़ा पत्थर में घर करे।**
**और इन्सान क्या दिले दिलबर में घर न करे॥**

तुम्हारे सब पुण्य, कर्म, धर्माचरण और देव-दर्शन का यह फल है कि तुम्हें आत्मज्ञान में रुचि हुई। ब्रह्मवेत्ताओं के शरीर की मुलाकात तो कई नास्तिकों को भी हो जाती है, अभागों को भी हो जाती है। श्रद्धा जब होती है तब शरीर के पार जो बैठा है उसे पहचानने के काबिल तुम बन जाओगे। ॐ... ॐ... ॐ...

जो तत्त्ववेत्ताओं की वाणी से दूर है उसे इस संसार में भटकना ही पड़ेगा। जन्म-मरण लेना ही पड़ेगा। चाहे वह कृष्ण के साथ हो जाय चाहे अम्बाजी के साथ हो जाय लेकिन जब तक तत्त्वज्ञान नहीं हुआ तब तक तो बाबा...

गुजराती भक्त-कवि नरसिंह मेहता कहते हैं :

**आत्मतत्त्व चीन्या विना सर्व साधना झूठी।**

सर्व साधनाओं के बाद नरसिंह मेहता यह कहते हैं।

तुम कितनी साधना करोगे ?

पहले मैंने भी खूब पूजा-उपासना की थी। भगवान शिव की पूजा के बिना कुछ खाता-पीता नहीं था। परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री लीलाशाहजी बापू के पास गया तब भी भगवान शंकर का बाण और पूजा की सामग्री साथ में लेकर गया था। मैं लकड़ियाँ भी धोकर जलाऊँ, ऐसी पवित्रता को माननेवाला था। फिर भी जब तक परम पवित्र आत्मज्ञान नहीं हुआ तब तक यह सब पवित्रता उपाधि थी। अब तो... अब क्या कहूँ ?

नैनीताल में १५ डोटियाल (कुली) रहने के लिए एक मकान किराये पर ले रहे थे। किराया ३२ रुपये था और वे लोग १५ थे। लीलाशाहजी बापू ने दो रुपये देते हुए कहा :

''मुझे भी एक 'मेम्बर' बना लो। ३२ रुपये किराया है, हम १६ किरायेदार हो जायेंगे।''

ये अनन्त ब्रह्माण्डों के शाहनशाह उन डोटियालों के साथ वर्षों तक रहे। वे तो महा पवित्र हो गये थे। उन्हें कोई अपवित्रता छू नहीं सकती थी।

एक बार जो परम पवित्रता को उपलब्ध हो गया उसे क्या होगा ? लोहे का टुकड़ा मिट्टी में पड़ा है तो उसे जंग लगेगा। उसे सँभालकर अलमारी में रखोगे तो भी हवाएँ वहाँ जंग चढ़ा देंगी। उसी लोहे के टुकड़े को पारस का स्पर्श करा दो, एक बार सोना बना दो, फिर चाहे अलमारी में रखो चाहे कीचड़ में डाल दो, उसे जंग नहीं लगेगा।

ऐसे ही हमारे मन को एक बार आत्मस्वरूप का साक्षात्कार हो जाय। फिर उसे चाहे समाधि में बिठाओ, पवित्रता में बिठाओ चाहे नरक में ले जाओ। वह जहाँ होगा, अपने-आपमें पूर्ण होगा। उसीको ज्ञानी कहते हैं। ऐसा ज्ञान जब तक नहीं मिलेगा तब तक रिद्धि-सिद्धि आ जाय, मुर्दे को फूँक मारकर उठाने की शक्ति आ जाय फिर भी उस आत्मज्ञान के बिना सब व्यर्थ है। वाक्सिद्धि या संकल्पसिद्धि ये कोई मंजिल नहीं है। साधनामार्ग में ये बीच के पड़ाव हो सकते हैं। यह ज्ञान का फल नहीं है। ज्ञान का फल तो यह है कि ब्रह्मा और महेश का ऐश्वर्य भी तुम्हें अपने निजस्वरूप में भासित हो, छोटा-सा लगे। ऐसा तुम्हारा आत्म-परमात्मस्वरूप है। उसमें तुम जागो। ॐ... ! ॐ... ! ॐ... ! ! !

# मोहनिशा से जागो

आँखों के द्वारा, कानों के द्वारा दुनियाँ भीतर घुसती है और चित्त को चंचल करती है। जप, ध्यान, स्मरण, शुभ कर्म करने से बुद्धि स्वच्छ होती है। स्वच्छ बुद्धि परमात्मा में शांत होती है और मलिन

बुद्धि जगत में उलझती है। बुद्धि जितनी-जितनी पवित्र होती है उतनी-उतनी परम शांति से भर जाती है। बुद्धि जितनी-जितनी मलिन होती है, उतनी संसार की वासनाओं में, विचारों में भटकती है।

आज तक जो भी सुना है, देखा है, उसमें बुद्धि गयी लेकिन मिला क्या? आज के बाद जो देखेंगे, सुनेंगे उसमें बुद्धि को दौड़ायेंगे लेकिन अन्त में मिलेगा क्या? श्रीकृष्ण कहते हैं :

**यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।**
**तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥**

'जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरूप दलदल को भलीभाँति पार कर जायेगी, उस समय तू सुने हुए और सुनने में आनेवाले इस लोक और परलोक सम्बन्धी सभी भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जायेगा।'

(भगवद्गीता : २.५२)

दलदल में पहले आदमी का पैर धँस जाता है। फिर घुटने, फिर जाँघें, फिर नाभि, फिर छाती, फिर पूरा शरीर धँस जाता है। ऐसे ही संसार के दलदल में आदमी धँसता है। 'थोड़ा-सा यह कर लूँ, थोड़ा-सा यह देख लूँ, थोड़ा-सा यह खा लूँ, थोड़ा-सा यह सुन लूँ।' प्रारम्भ में बीड़ी पीनेवाला जरा-सी फूँक मारता है, फिर व्यसन में पूरा बँधता है। शराब पीनेवाला पहले जरा-सा घूँट पीता है, फिर पूरा शराबी हो जाता है।

ऐसे ही ममता के बन्धनवाले ममता में फँस जाते हैं। 'जरा शरीर का ख्याल करें, जरा कुटुम्बियों का ख्याल करें...।' 'जरा...जरा...' करते-करते बुद्धि संसार के ख्यालों से भर जाती है। जिस बुद्धि में परमात्मा का ज्ञान होना चाहिए, जिस बुद्धि में परमात्मशांति भरनी चाहिए उस बुद्धि में संसार का कचरा भरा हुआ है। सोते हैं तो भी संसार याद आता है, चलते हैं तो भी संसार याद आता है, जीते हैं तो संसार याद आता है और मरते... हैं... तो... भी... संसार... ही... याद... आता ... है।

सुना हुआ है स्वर्ग के बारे में, सुना हुआ है नरक के बारे में, सुना हुआ है भगवान के बारे में। यदि बुद्धि में से मोह हट जाय तो स्वर्ग-नरक का मोह नहीं होगा, सुने हुए भोग्य पदार्थों का मोह नहीं होगा। मोह की निवृत्ति होने पर बुद्धि परमात्मा के सिवाय किसी में भी नहीं ठहरेगी। परमात्मा के सिवाय कहीं भी बुद्धि ठहरती है तो समझ लेना कि अभी अज्ञान जारी है। अमदावादवाला कहता है कि मुंबई में सुख है। मुंबईवाला कहता है कि कलकत्ते में सुख है। कलकत्तेवाला कहता है कि कश्मीर में सुख है। कश्मीरवाला कहता है कि शादी में सुख है। शादीवाला कहता है कि बाल-बच्चों में सुख है। बाल-बच्चोंवाला कहता है कि निवृत्ति में सुख है। निवृत्तिवाला कहता है कि प्रवृत्ति में सुख है। मोह से भरी हुई बुद्धि अनेक रंग बदलती है। अनेक रंग बदलने के साथ अनेक-अनेक जन्मों में भी ले जाती है।

'जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरूपी दलदल को भलीभाँति पार कर जायेगी, उसी समय तू सुने हुए और सुनने में आनेवाले इस लोक और परलोक सम्बन्धी सभी भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जायेगा।'

इस लोक और परलोक...

सात लोक ऊपर हैं : भूः, भुवः, स्वः, जनः, तपः, महः और सत्य। सात लोक नीचे हैं : तल, अतल, वितल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल।

वशिष्ठजी महाराज के पास एक ऐसी विद्याधरी आयी जिसका मनोबल धारणाशक्ति से अत्यन्त पुष्ट हुआ था, इच्छाशक्ति प्रबल थी। उसने वशिष्ठजी से कहा :

''हे मुनीश्वर ! मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ। मैं एक निराली सृष्टि में रहनेवाली हूँ। उस सृष्टि का रचयिता मेरे पति हैं। उनकी बुद्धि में स्त्री भोगने की इच्छा हुई इसलिए उन्होंने मेरा सृजन किया। मेरी उत्पत्ति के बाद उनको ध्यान में, आत्मा में अधिक आनंद आने लगा, इसलिए वे मुझसे विरक्त हो गये। अब मेरी ओर आँख उठाकर

देखते तक नहीं। मेरी यौवन अवस्था है। मेरे अंग सुंदर और सुकोमल हैं। मैं भर्ता के बिना नहीं रह सकती। आप कृपा करके चलिए। मेरे पति को समझाइए।''

साधु पुरुष परोपकार के लिए सम्मत हो जाते हैं। वशिष्ठजी महाराज उस भद्र महिला के साथ उसके पति के यहाँ जाने को तैयार हुए। वशिष्ठजी भी योगी थे, वह महिला भी धारणाशक्ति में विकसित थी। दोनों उड़ते-उड़ते इस सृष्टि को लाँघते गये। एक नये ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट हुए। वहाँ वह विद्याधरी एक बड़ी शिला में प्रविष्ट हो गयी। वशिष्ठजी बाहर रुक गये। वह स्त्री वापस बाहर आयी तो वशिष्ठजी बोले :

''तेरी सृष्टि में हम प्रविष्ट नहीं हो सकते।''

तब उस विद्याधरी ने कहा : ''आप मेरी चित्तवृत्ति के साथ अपनी चित्तवृत्ति मिलाइए। आप भी मेरे साथ-साथ प्रविष्ट हो सकेंगे।''

एक आदमी स्वप्न देख रहा है। उसके स्वप्न में दूसरा आदमी प्रविष्ट नहीं हो सकता। दूसरा तब प्रविष्ट हो सकेगा कि जब उन दोनों के संस्कार एक जैसे हों।

एक आदमी सोया है। आप उसके पास खड़े हैं। आप बार-बार सघनता से ख्याल करो, उसी ख्याल का बार-बार पुनरावर्तन करो कि बारिश हो रही है, ठंड लग रही है। आपके श्वासोच्छ्‌वास के आंदोलन उस सोये हुए आदमी पर प्रभाव डालेंगे, उसकी चित्तवृत्ति आपकी चित्तवृत्ति के साथ तादात्म्य करेगी और उसको स्वप्न आयेगा कि खूब बारिश हो रही है और मैं भीग गया।

मूर्ख आदमियों के साथ हम लोग जीते हैं। संसार के दलदल में फँसे हुए, पैसों के गुलाम, इन्द्रियों के गुलाम ऐसे लोगों के बीच यदि साधक भी जाता है तो वह भी सोचता है कि चलो, थोड़े रुपये इकट्ठे कर लूँ। नोटों की थोड़ी-सी थप्पी तो बना लूँ, क्योंकि मेरे बाप के बाप

तो ले गये हैं, मेरे बाप भी ले गये हैं और अब मेरेको भी ले जाना है।

मोह के दलदल में आदमी फँस जाता है। कीचड़ में धँसे हुए व्यक्ति के साथ यदि तुम तादात्म्य करते हो तो तुम भी डूबने लगते हो। तुमको लगता है कि ये डूबे हैं, हम नहीं डूबते। मगर तुम ऐसा कहते भी जाते हो और डूबते भी जाते हो। बुद्धि में एक ऐसा भ्रम घुस जाता है।

जैसे-तैसे साधक को ही नहीं, अर्जुन जैसे को भी यह भ्रम हो गया था। अर्जुन को आत्म-साक्षात्कार नहीं हुआ और वह बोलता है : ''भगवन्! तुम्हारे प्रसाद से अब मैं सब समझ गया हूँ। अब मैं ठीक हो गया हूँ।''

भगवान कहते हैं : ''अच्छा, ठीक है। समझ रहा है फिर भी दुःखी-सुखी होता है, भीतर मोह-ममता है।''

ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन ने कहा कि मुझे ज्ञान हो गया है, मैं सब समझ गया। मेरा मोह नष्ट हो गया। फिर सात अध्याय और चले हैं। उसको पता ही नहीं कि आत्म-साक्षात्कार क्या होता है।

एक तुष्टि नाम की भूमिका आती है जो जीव का स्वभाव होता है। जीव में थोड़ी-सी शांति, थोड़ा-सा सामर्थ्य, थोड़ा-सा हर्ष आ जाता है तो समझ लेता है मैंने बहुत कुछ पा लिया। जरा-सा आभास होता है, झलक आती है तो उसीको लोग आत्म-साक्षात्कार मान लेते हैं।

जब मोहकलिल को बुद्धि पार कर जायेगी तब सुना हुआ और देखा हुआ जो कुछ होगा उससे तुम्हारा वैराग्य हो जायेगा। इन्द्र आकर हाथ जोड़कर खड़ा हो जाय, कुबेर तुम्हारे लिए खजाने की कुंजियाँ लेकर खड़ा रहे, ब्रह्माजी कमण्डलु लेकर खड़े रहें और बोलें : 'चलिए, ब्रह्मपुरी का सुख लीजिये...' फिर भी तुम्हारे चित्त में उन पदार्थों का आकर्षण नहीं होगा। तब समझना कि आत्म-साक्षात्कार हो गया।

**बच्चों का खेल नहीं मैदाने मुहब्बत।**
**यहाँ जो भी आया सिर पर कफन बाँधकर आया ।।**

जीव का स्वभाव है भोग। शिव का स्वभाव भोग नहीं है। जीव का स्वभाव है वासना, जीव का स्वभाव है सुख के लिए दौड़ना। ब्रह्माजी आयेंगे तो सुख देने की ही बात करेंगे न ? सुख के लिए यदि तुम भागते हो तो पता चलता है कि सुख का दरिया तुम्हारे भीतर पूरा उमड़ा नहीं है। सुख की कमी होगी तब सुख लेने को कहीं और जाओगे। सुख लेना जीव का स्वभाव होता है। आत्म-साक्षात्कार के बाद जीव बाधित हो जाता है। जीव का जीवपना नहीं रहता। वह शिवत्व में प्रगट हो जाता है।

कामदेव रति को साथ लेकर शिवजी के आगे कितने ही नखरे करने लगा लेकिन शिवजी को प्रभावित न कर सका। शिवजी इतने आत्मारामी हैं, उनमें इतना आत्मानंद है कि उनके आगे काम का सुख अति नीचा है, अति तुच्छ है। शिवजी काम से प्रभावित नहीं हुए।

योगी लोग, संत लोग जब साधना करते हैं तब अप्सराएँ आती हैं, नखरे करती हैं। जो उनके नखरे से आकर्षित हो जाते हैं वे आत्मनिष्ठा नहीं पा सकते हैं, आत्मानंद के खजाने को नहीं पा सकते हैं। इसीलिए साधकों को चेतावनी दी जाती है कि किसी रिद्धि-सिद्धि में, किसी प्रलोभन में मत फँसना।

तुम मन और इन्द्रियों का थोड़ा-सा संयम करोगे तो तुम्हारी वाणी में सामर्थ्य आ जायेगा। तुम्हारे संकल्प में बल आ जायेगा, तुम्हारे द्वारा चमत्कार होने लगेंगे।

चमत्कार होना आत्म-साक्षात्कार नहीं है। चमत्कार होना शरीर और इन्द्रियों के संयम का फल है। आत्म-साक्षात्कारी महापुरुष के द्वारा भी चमत्कार हो जाते हैं। वे चमत्कार करते नहीं हैं, हो जाते हैं। उनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है।

वाणी और संकल्प में सामर्थ्य यह इच्छाशक्ति का ही एक

हिस्सा है। तुम जो संकल्प करो उसमें डटे रहो। तुम जो विचार करते हो उन विचारों को काटने का दूसरा विचार न उठने दो, तो तुम्हारे विचारों में बल आ जायेगा।

शरीर को, इन्द्रियों को संयत करके जप, तप, मौन, एकाग्रता करो तो अंतःकरण शुद्ध होगा। शुद्ध अंतःकरण का संकल्प जल्दी फलता है। लेकिन यह आखिरी मंजिल नहीं है। शुद्ध अंतःकरण फिर अशुद्ध भी हो सकता है।

१५-१६ साल पहले वाराही में,मेरे पास एक साधु आया और बहुत रोया। मैंने पूछा :

''क्या बात है ?''

वह बोला : ''मेरा सब कुछ चला गया। बाबाजी ! लोग मुझे भगवान जैसा मानते थे। अब मेरे सामने आँख उठाकर कोई नहीं देखता है।'' और रोने लगा। मैंने सांत्वना देकर ज्यादा पूछा तो उसने बताया :

''बाबाजी ! क्या बताऊँ ? मैं पानी में निहारकर वह पानी दे देता तो रोता हुआ आदमी हँसने लगता था। बीमार आदमी ठीक हो जाता था। लेकिन बाबाजी ! अब मेरी वह शक्ति न जाने कहाँ चली गयी ? अब मुझे कोई पूछता नहीं।''

बुद्धि का मोह पूरा गया नहीं था। बुद्धि का तमस थोड़ा गया, बुद्धि का रजस थोड़ा गया लेकिन बुद्धि पूरी परमात्मा में ठहरी नहीं थी। पूरी परमात्मा में नहीं ठहरी तो प्रतिष्ठा में ठहरी। प्रतिष्ठा थी तो बुद्धि प्रसन्न हुई और 'मैं भगवान हूँ...' ऐसा मानकर खुश रहने लगी। जब बुद्धि की शुद्धि चली गयी, एकाग्रता नष्ट हुई तो संकल्प का सामर्थ्य चला गया। लोगों ने देखना बंद कर दिया तो बोलता है : 'बाबाजी ! मैं परेशान हूँ।'

ज्ञानी शूली पर चढ़ें तो भी परेशान नहीं होते। प्रसिद्धि के बदले कुप्रसिद्धि हो जाय, जहर दिया जाय, शूली पर चढ़ा दिया जाय फिर

भी ज्ञानी अन्दर से दुःखी नहीं होते, क्योंकि उन्होंने जान लिया कि संसार में जो भी सुना हुआ, देखा हुआ, जो कुछ भी है, नहीं के बराबर है, सब स्वप्न है। भगवान शंकर कहते हैं :

**उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।**
**सत्य हरिभजन जगत सब सपना ।।**

**तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।** उसकी प्रज्ञा ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो जाती है।

उस साधु के लिए थोड़ी देर मैं शांत हो गया और फिर उससे बोला : ''तुमने त्राटक सिद्ध किया हुआ था।''

वह बोला : ''हाँ बाबाजी ! आपको कैसे पता चल गया ?''

मैंने कहा : ''ऐसे ही पता चल गया।''

आपका हृदय स्थिर है तो दूसरों की चित्तवृत्ति के साथ आपका तादात्म्य हो जाता है। कोई कठिन बात नहीं है। अपने लिए वह चमत्कार लगता है, संतों के लिए यह कोई चमत्कार नहीं है।

तुम्हारा रेडियो यदि ठीक है तो वायुमण्डल में बहता हुआ गाना तुम्हें सुनाई पड़ता है। ऐसे ही यदि तुम्हारा अंतःकरण शांत होता है, बुद्धि स्थिर होती है तो घटित घटना या भविष्य की घटना का पता चल जाता है। यही कारण है कि वाल्मीकि ऋषि ने सौ साल पहले रामायण रच लिया, रामजी से या विष्णुजी से पूछने नहीं गये कि तुम क्या करोगे ? अथवा, किसी ज्योतिष का हिसाब लगाने नहीं गये थे। बुद्धि इतनी शुद्ध होती है कि भूत और भविष्य की कल्पनाएँ नहीं रहती हैं। ज्ञानी के लिए सदा वर्त्तमान रहता है। इसलिए भूत-भविष्य की उनको खबर पड़ जाती है। उनकी बुद्धि विचलित नहीं होती है।

उस साधु ने त्राटक सिद्ध किया हुआ था। त्राटक से एकाग्रता होती है और एकाग्रता से इच्छाशक्ति विकसित होती है, सामर्थ्य बढ़ जाता है। उसी इच्छाशक्ति को यदि आत्मज्ञान में नहीं मोड़ा

तो वह इच्छाशक्ति फिर संसार की तरफ ले जाती है।

एकाग्रता के लिए त्राटक की विधि इस प्रकार है :

एक फुट के चौरस गत्ते पर एक सफेद कागज लगा दो। उसके केन्द्र में एक रुपये के सिक्के के बराबर एक गोलाकार चिह्न बनाओ। इस गोलाकार चिह्न के केन्द्र में एक तिलभर बिन्दु छोड़कर बाकी के भाग में काला रंग भर दो। बीचवाले बिन्दु में पीला रंग भर दो।

अब उस गत्ते को ऐसे रखो कि वह गोलाकार चिह्न आपकी आँखों की सीधी रेखा में रहे। हररोज एक ही स्थान में कोई एक निश्चित समय में उस गत्ते के सामने बैठ जाओ। पलकें गिराये बिना अपनी दृष्टि उस गोलाकार चिह्न के पीले केन्द्र पर टिकाओ। आँखें पूरी खुली या पूरी बंद न हों।

आँखें बन्द होती हैं तो तुम्हारी शक्ति मनोराज में क्षीण होती है। आँखें यदि पूरी खुली होती हैं तो उसके द्वारा तुम्हारी शक्ति की रश्मियाँ बाहर बहकर क्षीण होती हैं, आत्मिक शक्ति क्षीण होती है। इसी कारण ट्रेन, बस या मोटरकार की मुसाफिरी में खिड़की से बाहर झाँकते हो तो थोड़ी ही देर में थककर झपकियाँ लेने लगते हो। जीवनशक्ति खर्च हो जाती है।

उस पीले बिन्दु पर दृष्टि एकाग्र करने से आँखों द्वारा बिखरती हुई जीवनशक्ति बचेगी और संकल्प की परंपरा टूटने लगेगी। संकल्प-विकल्प कम होने से आध्यात्मिक बल जगेगा। पहले ५ मिनट, १० मिनट, १५ मिनट बैठो। प्रारंभ में आँखें जलती हुई मालूम पड़ेंगी। आँखों में से पानी गिरेगा। रोज आधा घण्टा बैठने का अभ्यास करो। फिर तो तुम ऐसे-ऐसे चमत्कार कर लोगे कि भगवान की तरह पूजे जाओगे। **उसके साथ यदि आत्मज्ञान नहीं होगा तो वह भगवान अंत में रोता हुआ भगवान होगा, मुक्त भगवान नहीं होगा।**

एकाग्रता सब तपस्याओं का माई-बाप है।

भक्ति-परंपरा में पूज्यपाद मध्वाचार्य प्रसिद्ध संत हो गये। उन्होंने कहा था :

''हे प्रभु ! हम तेरे प्यार में अब इतने गर्क हो गये हैं कि हमसे अब न यज्ञ होता है न तीर्थ होता है, न संध्या होती है, न तर्पण होता है, न मृगछाला बिछती है न माला घूमती है। हम तेरे प्यार में ही बिक गये।''

जब प्रेमाभक्ति प्रगट होने लगती है तब कुटुम्बियों का, संसारियों का, समाज का मोह तो हट जाता है लेकिन फिर कर्मकाण्ड का मोह भी टूट जाता है। कर्मकाण्ड का मोह तब तक है जब तक देह में आत्मबुद्धि होती है। संसार में आसक्ति होती है तब तक कर्मकाण्ड में प्रीति होती है। संसार की आसक्ति हट जाय, कृष्ण में प्रेम हो जाय, राम में प्रेम हो जाय तो फिर कर्मकाण्ड की नीची साधना करने को जी नहीं चाहता है। कृष्ण का अर्थ है आकर्षनेवाला, आनंदस्वरूप आत्मा। राम का अर्थ है सबमें रमनेवाला, चैतन्य आत्मा।

कुछ संप्रदायवाले त्राटक सिद्ध करके अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। चमगादड़ मारकर, उसका काजल बनाकर उस काजल को आँखों में लगाकर किसीसे अपनी आँख के सामने निहारने और ध्यान करने को कहते हैं। ध्यान करनेवाले व्यक्ति की बुद्धि वश हो जाय, ऐसा संकल्प करके त्राटक करते हैं तो अच्छे-अच्छे लोग उनके वश में हो जाते हैं।

इसमें उनकी अपनी भी हानि है और सामनेवाले व्यक्ति की भी हानि है। एकाग्रता तो ठीक है लेकिन अगर एकाग्रता का उपयोग संसार है, एकाग्रता का उपयोग भोग है तो वह एकाग्रता साधक को मार डालती है। एकाग्रता का उपयोग एक परमात्मा की प्राप्ति के लिए होना चाहिए।

रुपयों में पाप नहीं लेकिन रुपयों से भोग भोगना पाप है। सत्ता में पाप नहीं लेकिन सत्ता से अहंकार बढ़ाना पाप है। अक्ल होने में पाप नहीं लेकिन उस अक्ल से दूसरों को गिराना और अपने अहं

को पोषित करना पाप है।

कई लोग परेशान रहते हैं। मूढ़ लोग, अधार्मिक लोग परेशान रहते हैं इसमें कोई आश्चर्य नहीं लेकिन भगत लोग भी परेशान रहते हैं। भगत सोचता है कि 'मेरा मन स्थिर हो जाय... मेरी इन्द्रियाँ शांत हो जायें...' भैया मेरे ! मन शांत हो जायेगा, इन्द्रियाँ शांत हो जायेंगी तो 'रामनाम सत् है...' हो जायेगा। तन, मन, इन्द्रियों का तो स्वभाव है हरकत करना, चेष्टा करना। लेकिन वह चेष्टा सुयोग्य हो। मन का स्वभाव है संकल्प करना, लेकिन ऐसा संकल्प करें कि अपना बन्धन कटे। बुद्धि का स्वभाव है निर्णय करना।

लोग इच्छा करते हैं : ''मैं शांत हो जाऊँ पत्थर की तरह... मेरा ध्यान लग जाय...'' जिनका ध्यान लगता है वे परेशान हैं और जिनका ध्यान नहीं लगता है वे भी परेशान हैं। ध्यान के रास्ते नहीं आये वे भी परेशान हैं ही। उनकी वृत्तियाँ पल-पल में उद्विग्न होती हैं। रजो-तमोगुण बढ़ जाता है।

योग में बताया गया है कि चित्त की पाँच अवस्थाएँ होती हैः क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र और निरुद्ध। चित्त प्रकृति का बना है। वह सदा एक अवस्था में नहीं रहता। सदा एकाग्र भी नहीं रह सकता और सदा चंचल भी नहीं रह सकता। कितना भी चंचल आदमी हो लेकिन रात को वह शांत हो जायेगा। कितना भी शांत व्यक्ति हो लेकिन उसका चित्त चेष्टा करेगा ही।

भगवान शंकर जैसी समाधि तो किसीकी लगी नहीं। फिर भी शंकरजी समाधि से उठते हैं तो डमरू लेकर नाचते हैं। शरीर, मन और संसार सदा बदलता रहता है। सुख-दुःख सदा आता-जाता है। दुःख में तो पकड़ नहीं होती लेकिन सुख में पकड़ रहती है कि यह सदा बना रहे। सुख में, धन में, स्वर्ग में यदि पकड़ है तो समझो कि बुद्धि का मोह अभी नहीं गया। ज्ञानी को किसीमें पकड़ नहीं होती। भगवान कृष्ण कहते हैं :

## यदा ते मोहकलिलम्...

मोह दलदल है। दलदल में आदमी थोड़ा धँसते-धँसते पूरा नष्ट हो जाता है।

लालजी महाराज एक सरल संत हैं। उनके पास एक साधु आये। जवान थे, देखने में ठीक-ठाक थे।

एक बार एक नववधू शादी के बाद तुरंत बाबाजी के दर्शन करने आयी। बाबाजी ने कहा : ''भगवान के दर्शन कर लो।'' वह दर्शन करने गयी तो उस साधु की आँख उस नववधू की ओर घूमती रही। उसके जाने के बाद लालजी महाराज ने साधु से कहा :

''महाराज! आप संन्यासी ठहरे। गृहस्थ साधक भी अपने को बचाता है और आप... ? यह ठीक नहीं लगता है कि कोई युवती आयी और... इन्द्रियों को जरा बचाना चाहिए।''

कान से और आँख से संसार अपने अन्दर घुस जाता है।

वह साधु चिढ़ गया। उसे अहंकार था कि मैं साधु हूँ। मैंने गेरुए कपड़े पहने हैं।

घर छोड़ना बड़ी बात नहीं लेकिन अहंकार छोड़ना बड़ी बात है। किन्हीं पादरियों के संग से प्रभावित और उनकी बुद्धि से रंगे हुए उस युवान साधु ने रूठकर कहा :

''भगवान ने आँखें दी हैं देखने के लिए, सौन्दर्य दिया है तो देखने के लिए। केवल देखने में क्या जाता है ? मैंने उससे बातें नहीं की, स्पर्श नहीं किया।''

आदमी तर्क देना चाहे तो कैसे भी दे सकता है।

अरे भाई! पहले-पहले तो ऐसा ही होता है कि देखने में क्या जाता है ? शराब की एक प्याली पी लेने में क्या जाता हैं ? लेकिन यह मोहकलिल ऐसा विचित्र दलदल है कि उसमें एक बार पैर पड़ गया तो फिर ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा त्यों-त्यों ज्यादा धँसते जाओगे।

वह साधु उस समय तो रूठकर चला गया लेकिन वक्त बादशाह है। घूमते-घामते छः-आठ महीने के बाद वह साधु दुबला-पतला, चेहरे पर गड्ढे, दीन-हीन हालत में लालजी महाराज के पास आया। उन्होंने तो पहचाना भी नहीं। पहले स्वामी होकर आता था। अब वह भिखारी की तरह पूछ रहा है :

''मैं आ सकता हूँ ?''

लालजी महाराज : ''आओ।''

''मेरे साथ तीन मूर्तियाँ और भी हैं।''

''उनको भी बुलाओ।''

एक संन्यासिनी जैसी स्त्री और दो बच्चे भी आये। साधु ने अपनी पहचान दी तो लालजी महाराज बोले :

''फिर ये कौन हैं ?''

साधु बोला : ''यह विधवा माई थी। बेचारी दुःखी थी। बच्चे भी थे। उसे देखकर मुझे दया आ गयी। आजीविका का कोई साधन उसके पास नहीं था इसलिए माई को शिष्या बना लिया। बच्चों को पढ़ाता हूँ।''

बाद में मालूम करने पर पता चला कि साधु ने उस स्त्री को पत्नी बनाया है और कमाता नहीं है इसलिए गेरुए कपड़े पहनाकर घुमाता रहता है।

क्या तेजस्वी साधु था ! स्त्री की ओर जरा-सा देखा केवल, और कुछ नहीं।

आँख से इधर-उधर कुछ देखते हो या कान से सुनते हो तो बुद्धि में जरा-सा भी यदि मोह है तो वह बढ़ता जायेगा। आत्मज्ञान नहीं हुआ हो तो जब तक शरीर रहे, तब तक भगवान से प्रार्थना करना कि : ''हे प्रभु ! बचाते रहना इस दलदल से।''

कइयों को भ्रांति हो जाती है : 'मुझे आत्म-साक्षात्कार हो गया... मुझे आत्मशांति मिल गयी...'

भावनगर से करीब १५-२० कि.मी. दूर गौतमेश्वर नामक जगह है। वहाँ एक साधु थे। बहुत त्यागी थे। लोगों की भीड़ को देखते तो वे एकान्त में भाग जाते। संसार से विरक्त। कुछ साथ में नहीं रखते थे। एकाध कपड़ा पहनते थे। त्यागी थे। नारायण उनका नाम था और नारायण के भक्त थे। बाद में वे दुःखी होकर मरे।

मैंने कहा : ''त्यागी हैं, भगवान के भक्त हैं तो दुःखी होकर नहीं मरते। लोग उन्हें दुःख दें, मगर वे दुःखी होते नहीं।''

तब लोगों ने बताया : ''घूमते-घूमते वे गिरनार चले गये थे। वहाँ देखा किसी अघोरी को। सोचा, जरा-सा सुल्फा पीने में क्या जाता है ? एक फूँक लेने में क्या जाता है ? जरा-सा चरस खींचने में क्या जाता है ? उन्होंने सुल्फा भी पिया, भाँग भी पी, चरस भी पिया, सिगरेट भी पीने लगे। फिर अशांत होकर आये, विक्षिप्त होकर आये और आत्मघात करके मर गये।''

शामलाजी आदिवासी क्षेत्र में मुझे समाज के लोगों ने आकर कहा कि यहाँ के पादरी लोग बोतल खुली रखकर उसमें से प्यालियाँ पीते-पीते लोगों को लेक्चर देते हैं, आशीर्वचन देते हैं। ऐसे शराबी लोग धर्मगुरु होकर लोगों के सिर पर हाथ रखते हैं। वे गरीब आदिवासी बेचारे धर्मपरिवर्तन के बहाने धर्मभ्रष्ट होते हैं। जिस कुल में जन्म लिया हो उस कुल के मुताबिक अगर सत्कर्म करें तो उस पुण्य के प्रभाव से उनके पूर्वजों को भी सद्गति मिल जाय। यह तो शराबी लोग थोड़े-से रुपयों की लालच देकर भोले-भाले बेचारे आदिवासियों को धर्मभ्रष्ट कर रहे हैं।

**पीत्वा मोहमयीं मदिरां संसार भूतो उन्मतः।**

दुर्जन तो दुःखी होते ही हैं लेकिन सज्जन भी सच्ची समझ के बिना परेशान हो जाते हैं। एक पिता फरियाद करता है :

''मैं सुबह जल्दी उठता हूँ। पूजा-पाठ करता हूँ। कुटुम्ब के अन्य लोग भी जल्दी उठते हैं लेकिन एक नवजवान बेटा दुष्ट है।

वह सवेरे जल्दी नहीं उठता।''

यह मोह है। 'मेरा' बेटा जल्दी उठे। कइयों के बेटे नहीं उठते तो कोई हर्ज नहीं लेकिन 'मेरा' बेटा जल्दी उठे। मैं धार्मिक हूँ तो 'मेरे' बेटे को भी धार्मिक होना चाहिए।

अपने बेटे में इतनी ममता होने के कारण ही दुःख होता है। भगवान के जो प्यारे भक्त हैं, भगवत्तत्त्व को कुछ समझ रहे हैं उनको आग्रह नहीं होता। बड़े बेटे को जल्दी उठाने का प्रयत्न करते हैं लेकिन बेटा नहीं उठता है तो चित्त में विक्षिप्त नहीं होते।

किसीका विरक्ति-प्रधान प्रारब्ध होता है, किसीका व्यवहार-प्रधान प्रारब्ध होता है। ज्ञान होने के बाद ज्ञानी का जीवन स्वाभाविक चलता है। लेकिन धार्मिक लोगों को इतनी चिंता-परेशानी होती है कि : 'अरे ! शुकदेवजी को लंगोटी का भी पता नहीं रहता था, इतने आत्मानंद में डूबे रहते थे। हमारा ध्यान तो ऐसा नहीं लगता। शुकदेवजी जैसा हमारा ध्यान लगे।'

हजारों वर्ष पहले का मनुष्य, हजारों वर्ष पहले का वातावरण और कई जन्मों के संस्कार थे। उनको ऐसा हुआ। उनको लक्ष्य बनाकर चलते तो जाओ लेकिन लक्ष्य बनाकर विक्षिप्त नहीं होना। हो गया तो हो गया, नहीं हुआ तो नहीं हुआ, लेकिन चित्त को सदा प्रसन्नता से महकता हुआ रखो। ऐसा ध्यान हो गया तो भी स्वप्न, न हुआ तो भी स्वप्न। जिस परमात्मा में शुकदेवजी आकर चले गये, वशिष्ठजी आकर चले गये, श्रीराम आकर चले गये, श्रीकृष्ण आकर चले गये वह परमात्मा अभी तुम्हारा आत्मा है। ऐसा ज्ञान जब तक नहीं होता है तब तक मोह नहीं जाता है।

तुलसीदासजी ने कहा है :

**मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥**

मोह सब व्याधियों का मूल है। उससे भव का शूल फिर पैदा होता है। इसीलिए किसी भी वस्तु में ममता हुई, आसक्ति हुई,

मोह हुआ तो समझो कि मरे। किसी भी परिस्थिति में मोह-ममता नहीं होनी चाहिए।

'आज आरती की घण्टी बजायी, प्रार्थना की तो बहुत मजा आया। अहा... ! रोज ऐसे आरतियाँ करें, घण्टियाँ बजायें और मजा आता रहे ...' तो हररोज ऐसा होगा नहीं। जिस समय सुषुम्ना का द्वार खुला है, मुहूर्त अच्छा है, बुद्धि में सात्त्विकता है उस समय आरती करते हो तो मजा आता है। जिस समय शरीर में रजो-तमोगुण है, कुछ खाया-पिया है, शरीर भारी है, प्राण नीचे हैं उस समय आरती करोगे तो मजा नहीं आयेगा।

मजा आना और न आना आत्मा का स्वभाव नहीं, चिदाभास का स्वभाव है, जीव का स्वभाव है। मजा जीव को आता है। ज्ञानी को मजा और बेमजा नहीं आता। वे तो मस्तराम हैं।

संसारी आदमी द्वेषी होता है। पामर आदमी को जितना राग होता है, उतना द्वेष होता है। भक्त होता है रागी। भगवान में राग करता है, आरती-पूजा में राग करता है, मंदिर-मूर्ति में राग करता है। जिज्ञासु में होती है जिज्ञासा। ज्ञानी में कुछ नहीं होता है। ज्ञानी गुणातीत होते हैं। मजे की बात है कि ज्ञानी में सब दिखेगा लेकिन ज्ञानी में कुछ होता नहीं। ज्ञानी से सब गुजर जाता है।

बुद्धि को शुद्ध करने के लिए आत्मविचार की जरूरत है, ध्यान की जरूरत है, जप की जरूरत है। बुद्धि शुद्ध हो तो जैसे दूसरे शरीर को अपनेसे पृथक देखते हैं वैसे ही अपने शरीर को भी आप अपनेसे अलग देखेंगे। ऐसा अनुभव जब तक नहीं होता, तब तक बुद्धि में मोह होने की संभावना रहती है।

थोड़ा-सा मोह हट जाता है तब लगता है कि मेरे को रुपयों में मोह नहीं है, स्त्री में मोह नहीं है, मकान में मोह नहीं है, आश्रम में मोह नहीं है। ठीक है। लेकिन प्रतिष्ठा में मोह है कि नहीं है, इसे जरा ढूँढ़ो। देह में मोह है कि नहीं है, जरा ढूँढ़ो। और मोह टूट जाते

हैं लेकिन देह का मोह जल्दी नहीं टूटता, लोकेषणा (वाहवाही) का मोह जल्दी नहीं टूटता, धन का मोह भी जल्दी से नहीं टूटता।

'रुपये सूद पर दिये हुए हैं। कथा में जाना है। गुरुदेव बाहर जानेवाले हैं। क्या करें ? सूद पर पैसे जिनको दिये हुए हैं वे कहीं भाग गये तो ?' अरे, वह क्या भागेगा ? भाग-भागकर कहाँ तक जायेगा ? मसान में ही न ? ...और तुम कितना भी एकट्ठा करोगे तो भी आखिर मसान में ही जाना है। कोई खाकर नहीं भागता, कोई लेकर नहीं भागता। सब यहीं का यहीं पड़ा रह जाता है। केवल बुद्धि में ममता है कि ये मेरे पैसे हैं, ये मेरे कर्जदार हैं। यह केवल बुद्धि का खिलवाड़ है। बुद्धि के ये खिलौने तब तक अच्छे लगते हैं जब तक परमात्मा का ठीक से अनुभव नहीं हुआ है।

पक्षियों से जरा सीख लो। उनको आज खाने को है, कल का कोई पता नहीं फिर भी पेड़ की डाली पर गुनगुना लेते हैं, कोलाहल कर लेते हैं। कब कहाँ जायेंगे, कोई पता नहीं फिर भी निश्चिंतता से जी लेते हैं।

हमारे पास रहने को घर है, खाने को अन्न है - महीने भर का, साल भर का। फिर भी दे धमाधम ! सामान सौ साल का, पता पल का नहीं।

जिनको बैठने का ठिकाना नहीं, डाल पर बैठ लेते हैं, दूसरे पल कौन-सी डाल पर जाना है, कोई पता नहीं, ऐसे पक्षी भी आनंद से जी लेते हैं। क्या खायेंगे, कहाँ खायेंगे, कोई पता नहीं। उनका कोई कार्यक्रम नहीं होता कि आज वहाँ 'डिनर' (भोज) है। फिर भी जी लेते हैं। भूख के कारण नहीं मरते, रहने का स्थान नहीं मिलता इसके कारण नहीं मरते। मौत जब आती है तब मरते हैं।

**मुर्दे को प्रभु देत है, कपड़ा लकड़ा आग।**
**जिन्दा नर चिन्ता करे, ता के बड़े अभाग॥**

चिन्ता यदि करनी है तो इस बात की करो कि पाँच वर्ष के ध्रुव

को वैराग्य हुआ, प्रह्लाद को वैराग्य हुआ, पर मुझे क्यों नहीं होता ? रामतीर्थ को २२ साल की उम्र में वैराग्य हुआ और परमात्मा को पा लिया। मुझे २५ साल हो गये, ४० साल हो गये, ४५ साल हो गये फिर भी वैराग्य नहीं होता ?

संसार की चाह अभी भी करते हो ! संसार के नश्वर धन की वसूली करना चाहते हो !

ऐसा धन पा लो कि ब्रह्माजी का पद, कुबेर का धन, इन्द्र का ऐश्वर्य तुम्हारे आगे तुच्छ दिखे। तुममें इतना सामर्थ्य है।

वह विद्याधरी शिला से वापस बाहर आकर वशिष्ठजी से कह रही है : ''महाराज ! आइए।''

वशिष्ठजी बोले : ''मैं तो नहीं आ सकता हूँ।''

जिसकी धारणाशक्ति सिद्ध हो गयी है वह अंतवाहक शरीर से दीवार के भीतर प्रवेश कर लेगा। अंतवाहक शरीर की साधना न की हो तो भले सिर फूट जाय लेकिन दीवार के भीतर से न जा सकेगा। सुरंग बनाये बिना आदमी योग की कला से पहाड़ में से आर-पार गुजर सकता है। ऐसी शक्ति तुम्हारे सबके भीतर छुपी हुई है। वह शक्ति विकसित नहीं हुई। स्थूल शरीर के साथ जुड़ गये इसलिए वह शक्ति स्थूलरूप हो गयी है।

पानी भाप बन जाता है तो बारीक-से-बारीक छेद में से निकल जाता है लेकिल वही पानी यदि ठण्डा होकर बर्फ बन जाता है तो छोटी-बड़ी खिड़की से भी नहीं निकल पाता। ऐसे ही तुम्हारी चित्तवृत्ति यदि स्थूल होती है तो गति नहीं होती है और सूक्ष्म हो जाती है तो गति होती है।

वशिष्ठजी महाराज ने उस विद्याधरी की चित्तवृत्ति से अपनी चित्तवृत्ति मिला दी और शिला में प्रविष्ट हो गये। इस सृष्टि से एक नयी सृष्टि में पहुँच गये। वहाँ उस महिला ने एक समाधिस्थ योगी को दिखाते हुए कहा :

''ये मेरे पति हैं। इनको संसार से वैराग्य हो गया है। अब मेरी तरफ आँख उठाकर देखते तक नहीं हैं।''

जब योगी ने आँखें खोलीं तो विद्याधरी ने कहा :

''ये वशिष्ठजी महाराज हैं। दूसरी सृष्टि से आये हैं। श्रीराम के गुरु हैं। महापुरुषों का स्वागत करना सत्पुरुषों का स्वभाव है। इनका अर्घ्य-पाद्य से स्वागत कीजिये।''

उस योगी ने वशिष्ठजी का स्वागत किया और कहा :

''हे ब्राह्मण ! यह सृष्टि मैंने इच्छाशक्ति से बनायी थी। पत्नी की इच्छा हुई तो संकल्प से पत्नी भी बना ली। फिर देखा कि जिस परमात्मा की सत्ता से संकल्प द्वारा इतनी घटना घट सकती है उस परमात्मा में ही क्यों न ठहर जायें ? अतः मैं अपनी चित्तवृत्ति को समेटकर, परमानंद में मग्न होकर आत्मशांति में ले आया। अब कोई भोग भोगने की मेरी इच्छा नहीं है और इस सृष्टि को चलाने की भी मेरी इच्छा नहीं है।

मेरी सेवा करते-करते इस स्त्री में भी धारणाशक्ति सिद्ध हो गयी है, इच्छाशक्ति के अनुसार घटनाएँ घटने लग जाती हैं लेकिन इसकी बुद्धि में से मोह अभी गया नहीं है। इसको भोग की इच्छा है। भोग हमेशा अपना नाश करने में संलग्न होता है। आप इसको आशीर्वाद दें कि इसकी भोग की इच्छा निवृत्त हो जाय और परमात्मा में चित्तवृत्ति लग जाय। और... अब मैं इस सृष्टि को धारण करने का संकल्प समेट रहा हूँ। आप जल्दी-से-जल्दी इस सृष्टि से बाहर पधारें। मेरे संकल्प में यह सृष्टि ठहरी है। संकल्प समेटते ही इसका प्रलय हो जायेगा।''

वशिष्ठजी कहते हैं : ''मैं उस सृष्टि से रवाना हुआ और मेरे देखते-देखते उस ब्रह्माजी ने संकल्प समेटा तो सृष्टि का प्रलय होने लगा। सूर्य तपने लगा, प्रलयकाल की वायु चलने लगी। पहाड़ टूटने लगे। लोग मरने लगे। वृक्ष सूखने लगे। पक्षी गिरने लगे।''

तुम्हारे अंदर वही परमात्मशक्ति इतनी है कि यदि वह विकसित हो जाय तो तुम इच्छाशक्ति से नयी सृष्टि बना सकते हो। हर इन्सान में ऐसी ताकत है। लेकिन मोह के कारण, भोगवासना के कारण नयी सृष्टि तो क्या, मामूली घर बनाते हैं तो भी 'लोन' (उधार) लेना पड़ता है... वह भी मिलता नहीं और धक्के खाने पड़ते हैं।

# केवल निधि

यह योग की एक ऐसी अद्‌भुत कुंजी है, जिसके केवल छः माह तक नियमित व दृढ़ अभ्यास से साधक में अद्‌भुत परिवर्तन हो जाता है। उसकी मनोकामनाएँ पूरी होने लगती हैं। उसके संकल्प में अद्‌भुत बल आ जाता है। प्रकृति उसके अनुकूल होने लगती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि षड्‌विकारों का वह विजेता हो जाता है। इतना ही नहीं, उसका पूजन करके लोग अपनी मनोकामनाएँ सिद्ध करने लगते हैं।

जो साधक पूर्ण एकाग्रता से इस पुरुषार्थ को साधेगा, उसके भाग्य का तो कहना ही क्या ? उसकी व्यापकता बढ़ती जायेगी। महानता का अनुभव होगा। वह अपना पूरा जीवन बदला हुआ पायेगा।

बहुत तो क्या, तीन ही दिनों के अभ्यास से चमत्कार घटेगा। तुम, जैसे पहले थे वैसे अब न रहोगे। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि षड्‌विकारों पर विजय प्राप्त करोगे।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं : ''मेरे चिरजीवन और आत्मलाभ का कारण प्राणकला ही है।''

***प्राणायाम की विधि*** : प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर पूर्व अथवा उत्तराभिमुख हो कंबल या विद्युत अवरोधक आसन पर पद्मासन की स्थिति में बैठें। (पद्मासन की विधि आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'योगासन' में दी गयी है। गरम कपड़े के लाल व श्वेत आसन

आश्रम में उपलब्ध हैं।) सिर, गर्दन व छाती एक सीधी रेखा में हों। दाहिने हाथ की तर्जनी को अंगुष्ठमूल में स्पर्श कराने से बनी मुद्रा में 'ॐ' अथवा 'हरि ॐ' या गुरुमंत्र का मानसिक जप शुरू कर अँगूठे से दायाँ नथुना बंद करके बायें नथुने से गहरा श्वास लो। हाथ के अँगूठे व उँगलियों से दोनों नथुने बंद कर लो। यह पूरक हुआ।

जितना समय श्वास लेने में लगा उससे चार गुना समय श्वास भीतर रोको। यह अभ्यंतर कुंभक हुआ। अब नथुने से अँगूठा हटाकर दायें नथुने से धीरे-धीरे पूरा श्वास बाहर निकाल दें। श्वास लेने (पूरक) में जितना समय लगा था उससे ठीक दुगना समय श्वास छोड़ने (रेचक) में लगाओ। ध्यान रहे कि तेजी से श्वास छोड़ने पर नाड़ीतंत्र में दुर्बलता आती है। अब श्वास बाहर ही रोके रखो। अँगूठे और उँगलियों से दोनों नथुने बंद कर लो। इसे बहिर्कुंभक कहते हैं। श्वास लेने में आपको जितना समय लगा उससे दुगना समय बहिर्कुंभक में लगायें।

इस प्रकार पूरक-अभ्यंतर कुंभक-रेचक-बहिर्कुंभक के समय का प्रमाण अनुपात में इस प्रकार होगा - १:४:२:२। अब दायें नथुने से अँगूठा हटाकर गहरा श्वास लें। दोनों नथुने बंद करें। चार गुना समय अभ्यंतर कुंभक करें। दुगने समय में बायें नथुने से रेचक करें। दुगना समय ही बहिर्कुंभक करें। यह एक प्राणायाम हुआ।

**बायें नथुने से पूरक : अभ्यंतर कुंभक : दायें से रेचक : बहिर्कुंभक**
१ ४ २ २

**दायें नथुने से पूरक : अभ्यंतर कुंभक : बायें से रेचक : बहिर्कुंभक**
१ ४ २ २

इस सचोट यौगिक प्रक्रिया के दौरान 'ॐ', 'हरि ॐ' या गुरुमंत्र का मानसिक जप सतत चालू रहे।

**त्रिबंध विवेक** : श्वास लेने से पहले गुदा तथा नाभिस्थान को अंदर सिकोड़ लें। इसे क्रमशः मूलबंध व उड्डीयानबंध कहते हैं।

श्वास पूरा भरने के बाद ठोड़ी से कंठकूप पर दबाव डालें। इसे जालंधरबंध कहते हैं।

इस प्रकार त्रिबंध के साथ किया गया उक्त प्राणायाम पूरा लाभदायी सिद्ध होगा एवं चमत्कारपूर्ण परिणाम दिखायेगा।

**नेत्रस्थिति :** इस पूरी प्रक्रिया के दौरान आँखों की पलकें न गिरें। इष्ट, गुरु, ॐ या स्वस्तिक (卐) की प्रतिमा या चित्र अथवा दीपक पर आँखों की पुतलियाँ स्थिर रहें। आँखें पूरी खुली रखने से शक्ति बाहर बहकर क्षीण होती है और बंद रखने से मनोराज्य होता है, अतः आँखें अर्धोन्मिलित अर्थात् आधी खुली-आधी बंद रहें।

एकाग्रता का दूसरा प्रयोग है जिह्वा को बीच में रखने का। जिह्वा तालू में न लगे और नीचे भी न छुए। बीच में स्थिर रहे। मन उसमें लगा रहेगा और मनोराज्य न होगा। परंतु इससे भी अर्द्धोन्मिलित नेत्र ज्यादा लाभ करते हैं।

प्राणायाम के बाद त्राटक करने से एकाग्रता बढ़ती है, चंचलता कम होती है। मन शांत होता है। रातभर के किये हुए पाप सुबह के प्राणायाम से नष्ट होते हैं। प्राणायाम के पश्चात् आधा या एक घंटा ध्यान करना बड़ा लाभदायी है।

'बौद्धायन संहिता' के अनुसार, 'चंद्रमा शांत हो जाय और सूर्य का उदय न हो, उस समय सब देवताओं (इन्द्रियों) का विलय और सब मंत्रों का उदय होता है।' इस संधिकाल की अवस्था में मंत्र जाग्रत होते हैं। इस अमूल्य समय में सोये रहकर इसे खोये नहीं बल्कि प्राणायाम, जप, ध्यान में लगाकर आध्यात्मिक उन्नति के साथ शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक एकाग्रता प्राप्त करें।

प्राणायाम के समय जप स्वाभाविक होता रहे यह अति उत्तम है। जप के अर्थ में डूबे रहना, मंत्र का जप करते समय उसके अर्थ की भावना रखना। कभी तो जप करने के भी साक्षी बन जाओ। 'वाणी, प्राण जप करते हैं। मैं चैतन्य, शांत, शाश्वत हूँ।'

खाना-पीना, सोना-जागना, सबके साक्षी बन जाओ। यह अभ्यास बढ़ता रहेगा तो केवली कुम्भक होगा। तुमने अगर केवली कुम्भक सिद्ध किया हो और कोई तुम्हारी पूजा करे तो उसकी भी मनोकामना पूरी होगी।

प्राणायाम करते-करते सिद्धि होने पर मन शांत हो जाता है। मन की शांति और इन्द्रियों की निश्चलता होने पर बिना किये भी कुम्भक होने लगता है। प्राण अपने-आप ही बाहर या अंदर स्थिर हो जाता है और कलना का उपशम हो जाता है। यह केवल, बिना प्रयत्न के कुम्भक हो जाने पर केवली कुम्भक की स्थिति मानी गयी है। केवली कुम्भक सद्गुरु के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में करना सुरक्षापूर्ण है।

मन आत्मा में लीन हो जाने पर शक्ति बढ़ती है क्योंकि उसको पूरा विश्राम मिलता है। मनोराज्य होने पर बाह्य क्रिया तो बन्द होती है लेकिन अंदर का क्रियाकलाप रुकता नहीं। इसीसे मन श्रमित होकर थक जाता है।

ध्यान के प्रारंभिक काल में चेहरे पर सौम्यता, आँखों में तेज, चित्त में प्रसन्नता, स्वर में माधुर्य आदि प्रकट होने लगते हैं। ध्यान करनेवाले को आकाश में श्वेत त्रसरेणु (श्वेत कण) दिखते हैं। ये त्रसरेणु बड़े होते जाते हैं। जब ऐसा दिखने लगे तब समझो कि ध्यान में सच्ची प्रगति हो रही है।

केवल निधि सिद्ध करने का एक तरीका और भी है। रात्रि के समय चंद्रमा की ओर दृष्टि एकाग्र करके एकटक देखते रहें अर्थात् चंद्रमा पर जितनी देर दृष्टि स्थिर कर सकें उतनी देर पलक झपकाये बिना बैठे रहें अथवा आकाश में दृष्टि जितनी दूर जाती हो, उतनी दूर स्थिर करें। शरीर स्थिर रहे, हिले-डुले नहीं।

जो योगसाधना नहीं करता वह अभागा है। योगी तो संकल्प से सृष्टि बना देता है और दूसरों को भी दिखा सकता है। चाणक्य बड़े कूटनीतिज्ञ थे। उनका संकल्पबल बड़ा जोरदार था। उनके राजा

के दरबार में कुमारगिरि नामक एक योगी आये। उन्होंने चुनौती के उत्तर में कहा :

''मैं सबको भगवान का दर्शन करा सकता हूँ।''

राजा ने कहा : ''कराइये।''

उस योगी ने अपने संकल्पबल से सृष्टि बनायी और उसमें विराटरूप भगवान का दर्शन सब सभासदों को कराया। वहाँ चित्रलेखा नामक राजनर्तकी थी। उसने कहा : ''मुझे कोई दर्शन नहीं हुए।''

योगी : ''तू स्त्री है इससे तुझे दर्शन नहीं हुए।''

तब चाणक्य ने कहा : ''मुझे भी दर्शन नहीं हुए।''

वह नर्तकी भले नाचगान करती थी फिर भी वह एक प्रतिभासंपन्न नारी थी। उसका मनोबल दृढ़ था। चाणक्य भी बड़े संकल्पवान थे। इससे इन दोनों पर योगी के संकल्प का प्रभाव नहीं पड़ा। योगबल से अपने मन की कल्पना दूसरों को दिखायी जा सकती है। मनुष्य के अलावा जड़ के ऊपर भी संकल्प का प्रभाव पड़ सकता है। खट्टे आम का पेड़ हाफुस आम दिखायी देने लगे, यह संकल्प से हो सकता है।

मनोबल बढ़ाकर आत्मा में बैठ जाओ, आप ही ब्रह्म बन जाओ। यही संकल्पबल की आखिरी उपलब्धि है।

निद्रा, तन्द्रा, मनोराज्य, कब्जी, स्वप्नदोष, यह सब योग के विघ्न हैं। उनको जीतने के लिए संकल्प काम देता है। योग का सबसे बड़ा विघ्न है वाणी। मौन से योग की रक्षा होती है। नियम से और रुचिपूर्वक किया हुआ योगसाधन सफलता देता है। निष्काम सेवा भी बड़ा साधन है किन्तु सतत बहिर्मुखता के कारण निष्काम सेवा भी सकाम हो जाती है। देह में जब तक आत्मबुद्धि है तब तक पूर्ण निष्काम होना असंभव है।

हम अभी गुरुओं का कर्ज़ा चढ़ा रहे हैं। उनके वचनों को सुनकर

अगर उन पर अमल नहीं करते तो उनका समय बरबाद करना है। यह कर्जा चुकाना हमारे लिए भारी है। ...लेकिन संसारी सेठ के कर्जदार होने के बजाय संतों के कर्जदार होना अच्छा है और उनके कर्जदार होने के बजाय साक्षात्कार करना श्रेष्ठ है। उपदेश सुनकर मनन, निदिध्यासन करें तो हम उस कर्जे को चुकाने के लायक होते हैं।

❀

# ज्ञानयोग

१. जिसको जीव और जगत मिथ्या लगता है उसके लिए ज्ञानमार्ग है, जिसको सत्य लगता है उसके लिए योगमार्ग और भक्तिमार्ग है।

२. जिसके अंतःकरण में राग-द्वेष हैं वह चाहे आत्मा-अनात्मा का विवेक करे चाहे चित्त का निरोध करे, उसको ज्ञाननिष्ठा नहीं होती है।

३. स्थूल कामनाओं का नाश एकांतसेवन से होता है। स्वप्न में जो सूक्ष्म कामनाएँ दिखती हैं उनका नाश भगवद्ध्यान से और सद्वासना के अभ्यास से होता है।

४. विक्षेप उत्पन्न करनेवाले कर्म का त्याग संन्यास है। गेरुए वस्त्र पहननेमात्र से कोई संन्यासी नहीं होता। गार्गी, व्याध, वशिष्ठजी इत्यादि ने संन्यासी के वस्त्र धारण नहीं किये थे फिर भी वे ज्ञानी थे।

५. व्युत्थान दशा में भगवद्-भजन के आनंद में जो निमग्न रहता है उसको द्वैत का संताप नहीं लगता।

६. पराभक्ति का अर्थ है द्वैतदृष्टिरहित भावना।

७. जिस धृति में से चित्त का निरोध होता हो और एकाग्र अवस्था आती हो उसे सात्त्विक धृति कहते हैं।

८. सात्त्विक संन्यास वैराग्यपूर्वक लिया जाता है, राजसिक

संन्यास कायाक्लेश और भय से लिया जाता है तथा तामसिक संन्यास मूढ़ता से लिया जाता है।

९. जैसे दीपक जलाने के लिए तेल, बत्ती आवश्यक हैं वैसे ही **'तत्त्वमसि'** महावाक्य से उत्पन्न होनेवाली ब्रह्माकार वृत्ति के लिए श्रवण, मनन, ध्यान, शम, दम आदि आवश्यक हैं। एक बार वह ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न हो जाय तो वह अज्ञान का नाश कर देती है। ब्रह्माकार वृत्ति अपने विषय को प्रकाशित करने के लिए किसी कर्म या अभ्यास की अपेक्षा नहीं करती। एक बार घट का ज्ञान हो जाय तो उसको दृढ़ करने के लिए घट के आकार की पुनरावृत्ति या कर्म की आवश्यकता नहीं है।

१०. मृगजल देखने का आनंद नष्ट हो जाय तो तत्त्वज्ञानी पुरुष उसके लिए शोक नहीं करते। जगत का कोई भाव तत्त्वज्ञ के चित्त पर प्रभाव नहीं रखता।

११. आत्मा नित्य होने से वह घट की तरह या कीट-भ्रमर की तरह उत्पन्न नहीं होता। नदी को सागर प्राप्त होता है ऐसे आत्मा प्राप्त नहीं होती, क्योंकि वह सर्वगत है। दूध में विकार होकर दही बनता है वैसे आत्मा में विकार नहीं होता, क्योंकि वह स्थाणु है। सुवर्ण की शुद्धि की तरह आत्मा कोई संस्कार की अपेक्षा नहीं करता क्योंकि वह अचल है। उत्पत्ति, प्राप्ति, विकृति और संस्कृति ये चारों धर्म कर्म के हैं।

१२. जैसे घटाकाश महाकाश के रूप में नित्य है वैसे आत्मा परमात्मा के रूप में नित्य है। कंठ में मणि नित्य प्राप्त है फिर भी विस्मरण हो जाने से वह अप्राप्त-सा लगता है। स्मरण आ जाने मात्र से वह मणि प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार अज्ञान का आवरण भंग होनेमात्र से आत्मा की प्राप्ति हो जाती है, वह नित्य प्राप्त ही था ऐसा ज्ञान हो जाता है।

१३. अज्ञान दशा उपाधि को उत्पन्न करती है और ज्ञानदशा उपाधि का ग्रास करती है।

१४. अध्यस्त के विकारी धर्म से अधिष्ठान में विकार पैदा नहीं होता। मृगजल से मरुभूमि कभी गीली नहीं होती।

१५. आत्मा का सुख अपनी बुद्धि का प्रसाद मिलने से, बुद्धि निर्मल होने से, रजो-तमोगुण के मल से रहित होने से उत्पन्न होता है। आत्मा का सुख विषयों के संग से उत्पन्न नहीं होता और निद्रा या आलस्य से नहीं मिलता।

१६. जिसका मन सर्व भूतों में समान ब्रह्मभाव से स्थित और निश्चल हुआ है उसने इस जन्म को जीत लिया है।

१७. ब्रह्मज्ञानी सर्व ब्रह्मरूप देखते हुए व्युत्थान अवस्था में भी ब्रह्म में स्थित रहते हैं।

१८. भगवान कहते हैं : 'सतत मेरा भजन करनेवाले को मैं बुद्धियोग देता हूँ।' यहाँ बुद्धियोग का अर्थ है ज्ञाननिष्ठा। ऐसी निष्ठा जब आती है तब जैसे नदियाँ अपना नाम-रूप छोड़कर सागर में प्रवेश करती हैं वैसे ही भक्त भगवत्स्वरूप में प्रवेश करते हैं।

१९. अग्नि का स्फुलिंग अग्निरूप ही है, अग्नि का अंश नहीं है। उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म ही है, ब्रह्म का अंश नहीं है। निरंश स्वरूप में अंश-अंशी की कल्पना बनती नहीं। अंश भाव कल्पित उपाधि के स्वीकार करने के कारण उपचार से बोला जाता है।

२०. देह के उपादानभूत अविद्या का नाश होने के बाद भी कुछ काल तक ज्ञानी को देहादि का भान रहता है। इस जीवन्मुक्तावस्था को ध्यान में लेकर भगवान ने कहा है कि ज्ञानी और तत्त्वदर्शी पुरुष जिज्ञासुओं को ज्ञान देते हैं।

२१. सोये हुए आदमी को उसका नाम लेकर कोई पुकारता है तो वह जाग जाता है। उसको जगाने के लिए अन्य किसी क्रिया की आवश्यकता नहीं है। उसी प्रकार अज्ञान में सोया हुआ जीव अपने निज आत्मस्वरूप का गुणगान सुनकर जाग जाता है।

२२. आत्म-प्राप्ति के राही के लिए महापुरुषों की सेवा अत्यंत कल्याणकारी है। बिना सेवा के ब्रह्मविद्या मिलती या फलीभूत नहीं

होती। ब्रह्मविद्या के ठहराव के लिए शुद्ध अंतःकरण की आवश्यकता है। सेवा से अंतःकरण शुद्ध होता है, नम्रता आदि सद्गुण आते हैं। शाखाओं का झुकना फलयुक्त होने का चिह्न है, इसी तरह नम्र तथा शुद्ध अंतःकरण में ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। यही ब्रह्मविद्या की पहचान है।

२३. जप पूर्ण भावसहित करना चाहिए। हृदय में सत्-चित्-आनंदस्वरूप विभु की टंकार होनी चाहिए। इस समय अपने कानों को भी अपने श्वासों के चलने की आवाज न आये। लक्ष्य हमेशा यह रहे : **सोऽहम्**। मैं वही हूँ। इस स्मरण से अभय हो जाना चाहिए।

२४. निरीक्षण करो कि किन-किन कारणों से उन्नति नहीं हो रही है। उन्हें दूर करो। बार-बार उन्हीं दोषों की पुनरावृत्ति करना उचित नहीं। अगर देखभाल नहीं करोगे तो उम्र यूँ ही बीत जायेगी परंतु बननेवाली बात नहीं बनेगी।

जितना चलना चाहिए उतना चलना होगा, जितना चल सकते हो उतना नहीं। आशिक नींद में ग्रस्त नहीं होते। व्याकुल हृदय से तड़पते हुए प्रतीक्षा करते हैं। सदा जागृत रहते हैं। सदा ही सावधान रहा करते हैं।

२५. आप लोगों की प्राण-संगली उसी तरह चलनी चाहिए जैसे तेल की अटूट धारा। गुरुमंत्ररूपी छड़ी को हमेशा अपने साथ रखो ताकि जब भी जरूरत पड़े संसार के काम-क्रोधादि कुत्तों को उससे मारकर भगा सको।

२६. मानव आते हुए भी रोता है और जाते हुए भी रोता है। जो वक्त रोने का नहीं तब भी रोता है। केवल एक पूर्ण सद्गुरु में ही ऐसा सामर्थ्य है जो इस जन्म-मरण के मूल कारण अज्ञान को काटकर मनुष्य को रोने से बचा सकते हैं। केवल गुरु ही आवागमन के चक्कर से, काल की महान् ठोकरों से बचाकर शिष्य को संसार के दुःखों से ऊपर उठा देते हैं। शिष्य के चिल्लाने पर भी वे ध्यान नहीं देते। गुरु के बराबर हितैषी संसार में कोई भी नहीं हो सकता।

२७. त्रिशिखी ब्राह्मण के पूछने पर आदित्य ने कहा :

''कुंभ के समान देह में भरे हुए वायु को रोकने से अर्थात् कुम्भक करने से सब नाड़ियाँ वायु से भर जाती हैं। ऐसा करने से दश वायु चलने लगते हैं। हृदयकमल का विकास होता है। वहाँ पापरहित वासुदेव परमात्मा को देखें। सुबह, दोपहर, शाम और आधी रात को चार बार अस्सी-अस्सी कुम्भक करें तो अनुपम लाभ होता है। मात्र एक दिन करने से ही साधक सब पापों से छूट जाता है। इस प्रकार प्राणायामपरायण मनुष्य तीन साल में सिद्ध योगी बन जाता है। वायु को जीतनेवाला जितेन्द्रिय, थोड़ा भोजन करनेवाला, थोड़ा सोनेवाला, तेजस्वी और बलवान हो जाता है तथा अकाल मृत्यु का उल्लंघन करके दीर्घ आयु को प्राप्त होता है।

प्राणायाम तीन कोटि के होते हैं : उत्तम, मध्यम और अधम। पसीना उत्पन्न करनेवाला प्राणायाम अधम है। जिस प्राणायाम में शरीर काँपता है वह मध्यम है। जिसमें शरीर उठ जाता है वह प्राणायाम उत्तम कहा गया है।

अधम प्राणायाम में व्याधि और पापों का नाश होता है। मध्यम में पाप, रोग और महा व्याधि का नाश होता है। उत्तम में मल-मूत्र अल्प हो जाते हैं, भोजन थोड़ा होता है, इन्द्रियाँ और बुद्धि तीव्र हो जाती हैं। वह योगी तीनों काल को जाननेवाला हो जाता है।

रेचक और पूरक को छोड़कर जो कुम्भक ही करता है उसको तीनों कालों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

प्राणायाम का अभ्यास करनेवाला योगी नाभिकंद में, नासिका के अग्र भाग में और पैर के अँगूठे में सदा अथवा संध्याकाल में प्राण को धारण करे तो वह योगी सब रोगों से मुक्त होकर अशांतिरहित जीवन जीता है।

नाभिकंद में प्राण धारण करने से कुक्षि के रोग नष्ट होते हैं। नासा के अग्र भाग में प्राण धारण करने से दीर्घायु होता है और देह हल्का होता है। ब्राह्ममुहूर्त में वायु को जिह्वा से खींचकर तीन मास

तक पिये तो महान वाक्सिद्धि होती है। छः मास के अभ्यास से महा रोग का नाश होता है।

रोगादि से दूषित जिस-जिस अंग में वायु धारण किया जाता है वह अंग रोग से मुक्त हो जाता है।'' **(त्रिशिखि ब्राह्मण उपनिषद्)**

२८. प्राण सब प्रकार के सामर्थ्य का अधिष्ठान होने से प्राणायाम सिद्ध होने पर अनंतशक्ति-भंडार के द्वार खुल जाते हैं। अगर कोई साधक प्राणतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर उस पर अपना अधिकार प्राप्त कर ले तो जगत में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जिसे वह अपने अधिकार में न कर ले। वह अपनी इच्छानुसार सूर्य और चन्द्र को भी गेंद की तरह उनकी कक्षा में से विचलित कर सकता है। अणु से लेकर सूर्य तक जगत की तमाम चीजों को अपनी मर्जी अनुसार संचालित कर सकता है। योगाभ्यास पूर्ण होने पर योगी समस्त विश्व पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकता है। उसके संकल्प-बल से मृत प्राणी जिन्दे हो सकते हैं। जिन्दे उसकी आज्ञानुसार कार्य करने को बाध्य हो जाते हैं। देवता और पितृलोकवासी जीवात्मा उसके हुक्म को पाते ही हाथ जोड़कर उसके आगे खड़े हो जाते हैं। तमाम रिद्धि-सिद्धियाँ उसकी दासी बन जाती हैं। प्रकृति की समग्र शक्तियों का वह स्वामी बन जाता है क्योंकि उस योगी ने प्राणायाम सिद्ध करके समष्टि प्राण को अपने काबू में किया है।

जो प्रतिभावान युगप्रवर्तक अद्‌भुत शक्ति का संचार कर मानव समाज को ऊँची स्थिति पर ले जाते हैं, वे अपने प्राण में ऐसे उच्च और सूक्ष्म आन्दोलन उत्पन्न कर सकते हैं कि अन्य के मन पर उनका प्रगाढ़ प्रभाव होता है। हजारों मनुष्यों का दिल उनकी ओर आकर्षित होता है.। लाखों-करोड़ों लोग उनके उपदेश ग्रहण कर लेते हैं। विश्व में जो भी महापुरुष हो गये हैं उन्होंने किसी भी रीति से प्राणशक्ति को नियंत्रित करके अलौकिक शक्ति प्राप्त की होती है। किसी भी क्षेत्र में समर्थ व्यक्ति का प्रभाव प्राण के संयम से ही उत्पन्न हुआ है।

२९. यदि पर्वत के समान अनेक योजन विस्तारवाले पाप हों तो भी ध्यानयोग से छेदन हो जाते हैं। इसके सिवाय दूसरे किसी भी उपाय से कभी भी उनका छेदन नहीं होता।

(ध्यान बिन्दु उपनिषद्)

# ज्ञानगोष्ठी

प्र० : त्याग, वैराग्य और उपरति में क्या भेद है ?

उ० : विषय को सामने न आने देना त्याग है। विषय सामने रहते हुए उसमें प्रेम न होना वैराग्य है। वस्तु सामने रहते हुए भी उसमें न तो भोगबुद्धि हो और न द्वेष हो यह उपरति है।

प्र० : वैराग्य कितने प्रकार का होता है ?

उ० : सामान्यतया गुण-भेद से वैराग्य तीन प्रकार के हैं।

(१) जो वैराग्य संसार से ग्लानि और भगवान से प्रेम होने पर होता है, वह **सात्त्विक** है।

(२) जो प्रसिद्धि या प्रतिष्ठा की दृष्टि से विरक्त होता है, वह **राजस** है।

(३) जो सबको नीची दृष्टि से देखता है तथा अपनेको बड़ा समझता है, वह **तामस** वैराग्य है।

योगदर्शन में पर और अपर भेद से दो प्रकार के वैराग्य बतलाये गये हैं। इनमें अपर वैराग्य चार प्रकार के हैं :

**(१) यतमान** : जिसमें विषयों को छोड़ने का प्रयत्न तो रहता है, किन्तु छोड़ नहीं पाता यह यतमान वैराग्य है।

**(२) व्यतिरेकी** : शब्दादि विषयों में से कुछ का राग तो हट जाय किन्तु कुछ का न हटे तब व्यतिरेकी वैराग्य समझना चाहिए।

**(३) एकेन्द्रिय** : मन भी एक इन्द्रिय है। जब इन्द्रियों के विषयों का आकर्षण तो न रहे, किन्तु मन में उनका चिन्तन हो तब एकेन्द्रिय वैराग्य होता है। इस अवस्था में प्रतिज्ञा के बल से ही मन और

इन्द्रियों का निग्रह होता है।

**(४) वशीकार :** वशीकार वैराग्य होने पर मन और इन्द्रियाँ अपने अधीन हो जाती हैं तथा अनेक प्रकार के चमत्कार भी होने लगते हैं। यहाँ तक तो 'अपर वैराग्य' हुआ।

जब गुणों का कोई आकर्षण नहीं रहता, सर्वज्ञता और चमत्कारों से भी वैराग्य होकर स्वरूप में स्थिति रहती है तब 'पर वैराग्य' होता है अथवा एकाग्रता से जो सुख होता है उसको भी त्याग देना, गुणातीत हो जाना ही 'पर वैराग्य' है।

वैराग्य के दो भेद और हैं : देह से वैराग्य और गेह से वैराग्य।

शरीर से वैराग्य होना प्रथम कोटि का वैराग्य है तथा अहंता-ममता से ऊपर उठ जाना दूसरे प्रकार का वैराग्य है।

लोगों को घर से तो वैराग्य हो जाता है, परंतु शरीर से वैराग्य होना कठिन है। इससे भी कठिन है शरीर का अत्यन्त अभाव अनुभव करना। यह तो सद्‌गुरु की विशेष कृपा से किसी-किसीको ही होता है।

❀ ❀ ❀

बालक जन्मे तो वह पढ़ेगा या नहीं, विवाह करेगा या नहीं, नौकरी-धंधा करेगा या नहीं इसमें शंका है परंतु वह मरेगा या नहीं इसमें कोई शंका है ? हम भी इन्हीं बालकों में हैं।

हम धनवान होंगे या नहीं होंगे, यशस्वी होंगे या नहीं, चुनाव जीतेंगे या नहीं इसमें शंका हो सकती है परंतु भैया ! हम मरेंगे या नहीं, इसमें कोई शंका है ?

विमान उड़ने का समय निश्चित होता है, बस चलने का समय निश्चित होता है, गाड़ी छूटने का समय निश्चित होता है परन्तु इस जीवन की गाड़ी के छूटने का कोई निश्चित समय है ?

हम कहाँ रहते हैं ? मृत्युलोक में। यहाँ जो भी आता है वह मरनेवाला आता है। मरनेवालों के साथ का सम्बन्ध कब तक... ?

मृत्यु अनिवार्य है, बिल्कुल निश्चित है। इसके लिए आप कुछ

तैयारी करते हैं या नहीं ? करते हैं तो दृढ़तापूर्वक करें और नहीं करते हैं तो आज से ही शुरू कर दें।

❀ ❀ ❀

आत्म-साक्षात्कार में, ईश्वर-साक्षात्कार में तीन इच्छाएँ हमें ईश्वर से अलग रखती हैं। हम यदि ये तीन इच्छाएँ न करें तो तुरंत अलौकिक साम्राज्य का स्वर हमें सुनायी पड़ेगा। वे तीन इच्छाएँ हैं: (१) जीने की इच्छा (२) करने की इच्छा (३) जानने की इच्छा।

जीने की इच्छा न करें तो भी यह देह तो जियेगी ही। कुछ करने की इच्छा न करें तो भी सहज, प्रारब्धवेग से कर्म हो ही जायेगा। जानने की इच्छा न करें तो जिससे सब जाना जाता है ऐसा अपना स्वभाव प्रगट होने लगेगा।

ये तीन इच्छाएँ ईश्वर-साक्षात्कार में बाधक बनती हैं। भैया ! साहस करो। जिन्होंने इच्छा छोड़ी है वे धन्य हो गये हैं। अपने को दुर्बल मानना छोड़ दो। आपमें ईश्वरीय स्वर, ईश्वरीय आनंद भरपूर है। भैया ! आप स्वयं ही वह हैं, केवल इन तीन बातों से सावधान रहो।

❀ ❀ ❀

ईश्वर के मार्ग पर चलनेवाले सौभाग्यशाली भक्तों को ये छः बातें जीवन में अपना लेनी चाहिए :

(१) ईश्वर को अपना मानो। 'ईश्वर मेरा है। मैं ईश्वर का हूँ।'

(२) जप, ध्यान, पूजा, सेवा खूब प्रेम से करो।

(३) जप, ध्यान, भजन, साधना को जितना हो सके उतना गुप्त रखो।

(४) जीवन को ऐसा बनाओ कि लोगों में आपकी माँग हुआ करे। उन्हें आपकी अनुपस्थिति चुभे। कार्य में कुशलता और चतुराई बढ़ायें। प्रत्येक क्रिया-कलाप, बोल-चाल सुचारू रूप से करें। कम समय में, कम खर्च में सुन्दर कार्य करें। अपनी आजीविका के लिए, जीवननिर्वाह के लिए जो कार्य करें उसे कुशलतापूर्वक करें, रसपूर्वक करें। इससे शक्तियों का विकास होगा। फिर वह कार्य भले ही नौकरी

हो। कुशलतापूर्वक करने से कोई विशेष बाह्य लाभ न होता हो फिर भी इससे आपकी योग्यता बढ़ेगी, यही आपकी पूँजी बन जायेगी। नौकरी चली जाय तो भी यह पूँजी आपसे कोई छीन नहीं सकता। नौकरी भी इस प्रकार करो कि स्वामी प्रसन्न हो जाय।

यह सब रुपयों-पैसों के लिए, मान-बड़ाई के लिए, वाहवाही के लिए नहीं परंतु अपने अंतःकरण को निर्मल करने के लिए करें जिससे परमात्मा के लिए आपका प्रेम बढ़े। ईश्वरानुराग बढ़ाने के लिए ही प्रेम से सेवा करें, उत्साह से काम-धंधा करें।

(५) व्यक्तिगत खर्च कम करें। जीवन में संतोष लायें।

(६) सदैव श्रेष्ठ कार्य में लगे रहें। समय बहुत ही मूल्यवान है। समय के बराबर मूल्यवान अन्य कोई वस्तु नहीं है। समय देने से सब मिलता है परंतु सब कुछ देने से भी समय नहीं मिलता। धन तिजोरी में संग्रहीत कर सकते हैं परंतु समय तिजोरी में नहीं संजोया जा सकता। ऐसे अमूल्य समय को श्रेष्ठ कार्यों में लगाकर सार्थक करें। सबसे श्रेष्ठ कार्य है सत्पुरुषों का संग, सत्संग। भागवत में आता है :

''भगवान के प्रेमी पुरुष का निमेषमात्र का संग उत्तम है। इसके साथ स्वर्ग की या मुक्ति की समानता नहीं की जा सकती।''

(१.१८.१३)

तुलसीदासजी कहते हैं :

**तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।**
**तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥**

समय को उत्तम कार्य में लगाएँ। निरन्तर सावधान रहने से ही समय सार्थक होगा, नहीं तो यह निरर्थक बीत जायेगा। जिन्होंने समय का आदर किया है वे श्रेष्ठ पुरुष बने हैं, अच्छे महात्मा बने हैं। संसार के भोगों से विमुख होकर, भगवच्चरणों में, परमात्म-तत्त्व जानने में उन्होंने समय लगाया है।

# दत्त और सिद्ध का संवाद

## [अनुभवप्रकाश]

एक राजा कपिल मुनि का दर्शन, सत्संग किया करता था। एक बार कपिल के आश्रम पर राजा के पहुँचने के उपरान्त विचरते हुए दत्त, स्कन्द, लोमश तथा कुछ सिद्ध भी पहुँचे। वहाँ इन संतजनों के बीच ज्ञानगोष्ठी होने लगी। एक कुमार सिद्ध बोलाः

''जब मैं योग करता हूँ तब अपने स्वरूप को देखता हूँ।''

दत्त : ''जब तू स्वरूप का देखनेवाला हुआ तब स्वरूप तुझसे भिन्न हुआ। योग में तू जो कुछ देखता है सो दृश्य को ही देखता है। इससे तेरा योग दृश्य और तू दृष्टा है। अध्यात्म में तू अभी बालक है। सत्संग कर जिससे तेरी बुद्धि निर्मल होवे।''

कुमार : ''ठीक कहा आपने। मैं बालक हूँ क्योंकि मन, वाणी, शरीर में सर्व लीला करता हुआ भी मैं असंग चैतन्य, हर्ष-शोक को नहीं प्राप्त होता इसलिए बालक हूँ। परंतु योग के बल से यदि मैं चाहूँ तो इस शरीर का त्याग कर अन्य शरीर में प्रवेश कर लूँ। किसीको शाप या वरदान दे सकता हूँ। आयु को न्यून-अधिक कर सकता हूँ। इस प्रकार योग में सब सामर्थ्य आता है। ज्ञान से क्या प्राप्ति होती है ?''

दत्त : ''अरे नादान ! सभा में यह बात कहते हुए तुझको संकोच नहीं होता ? योगी एक शरीर को त्यागकर अन्य शरीर को ग्रहण करता है और अनेक प्रकार के कष्ट पाता है। ज्ञानी इसी शरीर में स्थित हुआ सुखपूर्वक ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यंत को अपना - आपा जानकर पूर्णता में प्रतिष्ठित होता है। वह एक काल में ही सर्व का भोक्ता होता है, सर्व जगत पर आज्ञा चलानेवाला चैतन्यस्वरूप होता है। सर्वरूप भी आप होता है और सर्व से अतीत भी आप होता है। वह सर्वशक्तिमान होता है और सर्व अशक्तिरूप भी आप होता है। सर्व व्यवहार करता हुआ भी स्वयं को अकर्त्ता जानता है।

सम्यक् अपरोक्ष आत्मबोध प्राप्त ज्ञानी जिस अवस्था को पाता है उस अवस्था को वरदान, शाप आदि सामर्थ्य से संपन्न योगी स्वप्न में भी नहीं जानता।''

कुमार : ''योग के बल से चाहूँ तो आकाश में उड़ सकता हूँ।''

दत्त : ''पक्षी आकाश में उड़ते-फिरते हैं, इससे तुम्हारी क्या सिद्धि है ?''

कुमार : ''योगी एक-एक श्वास में अमृतपान करता है, **'सोऽहं'** जाप करता है, सुख पाता है।''

दत्त : ''हे बालक ! अपने सुखस्वरूप आत्मा से भिन्न योग आदि से सुख चाहता है ? गुड़ को भ्रांति होवे तो अपने से पृथक् चणकादिकों से मधुरता लेने जाय। चित्त की एकाग्रतारूपी योग से तू स्वयं को सुखी मानता है और योग के बिना दुःखी मानता है ? ज्ञानी योग-अयोग दोनों को अपने दृश्य मानता है। योग-अयोग सब मन के ख्याल हैं। योगरूप मन के ख्याल से मैं चैतन्य पहले से ही सुखरूप सिद्ध हूँ। जैसे, अपने शरीर की प्राप्ति के लिए कोई योग नहीं करता क्योंकि योग करने से पहले ही शरीर है, उसी प्रकार सुख के लिए मुझे योग क्यों करना पड़े ? मैं स्वयं सुखस्वरूप हूँ।''

कुमार : ''योग का अर्थ है जुड़ना। यह जो सनकादिक ब्रह्मादिक स्वरूप में लीन होते हैं सो योग से स्वरूप को प्राप्त होते हैं।''

दत्त : ''जिस स्वरूप में ब्रह्मादिक लीन होते हैं उस स्वरूप को ज्ञानी अपना आत्मा जानता है। हे सिद्ध ! मिथ्या मत कहो। ज्ञान और योग का क्या संयोग है ? योग साधनारूप है और ज्ञान उसका फलरूप है। ज्ञान में मिलना-बिछुड़ना दोनों नहीं। योग कर्त्ता के अधीन है और क्रियारूप है।''

कपिल : ''आत्मा के सम्यक् अपरोक्ष ज्ञानरूपी योग सर्व पदार्थों का जानना-रूप योग हो जाता है। केवल क्रियारूप योग से सर्व पदार्थों का जानना नहीं होता, क्योंकि अधिष्ठान के ज्ञान से ही सर्व कल्पित पदार्थों का ज्ञान होता है।

आत्म-अधिष्ठान में योग खुद कल्पित है। कल्पित के ज्ञान में अन्य कल्पित का ज्ञान होता है। स्वप्नपदार्थ के ज्ञान से अन्य स्वप्नपदार्थों का ज्ञान नहीं परंतु स्वप्नदृष्टा के ज्ञान से ही सर्व स्वप्नपदार्थों का ज्ञान होता है।

अतः अपने को इस संसाररूपी स्वप्न के अधिष्ठानरूप स्वप्नदृष्टा जानो।''

सिद्धों ने कहा : ''तुम कौन हो ?''

दत्त : ''तुम्हारे ध्यान-अध्यान का, तुम्हारी सिद्धि-असिद्धि का मैं दृष्टा हूँ।''

राजा : ''हे दत्त ! ऐसे अपने स्वरूप को पाना चाहें तो कैसे पावें ?''

दत्त : ''प्रथम निष्काम कर्म से अंतःकरण की शुद्धि करो। फिर सगुण या निर्गुण उपासनादि करके अंतःकरण की चंचलता दूर करो। वैराग्य आदि साधनों से संपन्न होकर शास्त्रोक्त रीति से सद्गुरु के शरण जाओ। उनके उपदेशामृत से अपने आत्मा को ब्रह्मरूप और ब्रह्म को अपना आत्मारूप जानो। सम्यक् अपरोक्ष आत्मज्ञान को प्राप्त करो।

हे राजन् ! अपने स्वरूप को पाने में देहाभिमान ही आवरण है। जैसे सूर्य के दर्शन में बादल ही आवरण है। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति में, भूत-भविष्य-वर्त्तमान काल में, मन-वाणीसहित जितना प्रपंच है वह सर्व तुझ चैतन्य का दृश्य है। तुम उसके दृष्टा हो। उस प्रपंच के प्रकाशक चिद्घन देव हो।''

❀ ❀ ❀

अपने देवत्व में जागो। कब तक शरीर, मन और अंतःकरण से सम्बन्ध जोड़े रखोगे ? एक ही मन, शरीर, अंतःकरण को अपना कब तक माने रहोगे ? अनंत अनंत अंतःकरण, अनंत अनंत शरीर जिस चिदानन्द में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं वह शिवस्वरूप तुम हो। फूलों में सुगन्ध तुम्हीं हो। वृक्षों में रस तुम्हीं हो। पक्षियों में गीत

तुम्हीं हो । सूर्य और चाँद में चमक तुम्हारी है । अपने **'सर्वोऽहम्'** स्वरूप को पहचानकर खुली आँख समाधिस्थ हो जाओ । देर न करो । काल कराल सिर पर है

ऐ इन्सान ! अभी तुम चाहो तो सूर्य ढलने से पहले अपने जीवनतत्त्व को जान सकते हो । हिम्मत करो... हिम्मत करो ।

ॐ...ॐ...ॐ...

बार-बार इस पुस्तक को पढ़कर ज्ञान-वैराग्य बढ़ाते रहना । जब तक आत्म-साक्षात्कार न हो, तब तक आदरसहित इस पुस्तक को विचारते रहना ।

# चिन्तन-कणिका

अशोभन स्त्री आदि में शोभनबुद्धि, असत्य प्रपंच में सत्य का अध्यास, सत्य आत्मा में असत्य का अध्यास इत्यादि विपरीत भावना से सृष्टि का यथार्थ ज्ञान प्रतिबद्ध हो जाता है ।

अग्नि में राग-द्वेष नहीं है । उसके पास जो जाता है उसकी ठंड दूर होती है, अन्य की नहीं । इसी प्रकार जो ईश्वर के शरण जाता है उसका बन्धन कटता है, अन्य का नहीं । जिसके चित्त में राग-द्वेष है, उसमें ईश्वर की विशेषता अभिव्यक्त नहीं होती ।

जिसको वैराग्य न हो, श्रद्धा न हो वह यदि कर्म का त्याग करे तो विक्षेपरहित नहीं हो सकता । जैसे प्रमादी, बहिर्मुख, पशु समान लोग लड़ाई-झगड़े में राजी रहते हैं वैसे संन्यासी भी कर्मदोषवाले देखे जाते हैं । इसलिए बिना वैराग्य के संन्यास से निष्काम कर्म का आचरण श्रेष्ठ है । बिना श्रद्धा और परमात्मतत्त्व-चिन्तन के लिया हुआ संन्यास ब्रह्मपद की प्राप्ति नहीं कराता ।

मरुभूमि का जल धीरे-धीरे नहीं सूखता है, उसी प्रकार माया भी धीरे-धीरे नष्ट नहीं होती । मरुभूमि के जल को 'मरुभूमि का

जल' जानने मात्र से उसका अभाव हो जाता है उसी प्रकार माया का स्वरूप जानने मात्र से माया का अभाव हो जाता है।

संसार की सब चीजें बदल रही हैं, भूतकाल की ओर भाग रही हैं और आप उन्हें वर्त्तमान में टिकाये रखना चाहते हैं ? यही जीवन के दुःखों की मूल ग्रंथि है। आप चेतन होने पर भी जड़ वस्तु को छोड़ने से इन्कार करते हैं ? दृष्टा होने पर भी दृश्य में उलझे हुए हैं ?

जब आप चाहते हैं कि 'हमें अमुक वस्तु अवश्य मिले अथवा हमारे पास जो है वह कभी बिगड़े नहीं, तभी हम सुखी होंगे' - तो आप अपने स्वरूप चेतन को कहीं-न-कहीं बाँध रखना चाहते हैं।

साधना के मार्ग में, परम लक्ष्य की प्राप्ति में साधक के लिए देहात्मबुद्धि, देह में आसक्ति एक बड़ी ग्रंथि है । इस ग्रंथि को काटे बिना, मोहकलिल को पार किये बिना कोई साधक सिद्ध नहीं बन सकता। सद्गुरु के बिना यह ग्रंथि काटने में साधक समर्थ नहीं हो सकता।

वेदान्त शास्त्र यह नहीं कहता कि 'अपने आपको जानो।' अपने आपको सभी जानते हैं। कोई अपनेको निर्धन जानकर धनी होने का प्रयत्न करता है, कोई अपनेको रोगी जानकर निरोग होने को इच्छुक है। कोई अपनेको नाटा जानकर लम्बा होने के लिए कसरत करता है तो कोई अपनेको काला जानकर गोरा होने के लिए भिन्न-भिन्न नुस्खे आजमाता है।

नहीं, वेदान्त यह नहीं कहता। वह तो कहता है : 'अपने आपको ब्रह्म जानो।' जीवन में अनर्थ का मूल सामान्य अज्ञान नहीं अपितु अपनी आत्मा के ब्रह्मत्व का अज्ञान है। देह और सांसारिक व्यवहार के ज्ञान-अज्ञान से कोई खास लाभ-हानि नहीं है परंतु अपने ब्रह्मत्व के अज्ञान से घोर हानि है और उसके ज्ञान से परम लाभ है।

# प्रार्थना

हे मेरे प्रभु... !

तुम दया करना। मेरा मन... मेरा चित्त तुममें ही लगा रहे।

अब... मैं कब तक संसारी बोझों को ढोता फिरूँगा... ? मेरा मन अब तुम्हारी यात्रा के लिए ऊर्ध्वगामी हो जाय... ऐसा सुअवसर प्राप्त करा दो मेरे स्वामी... !

हे मेरे अंतर्यामी ! अब मेरी ओर जरा कृपादृष्टि करो...। बरसती हुई आपकी अमृतवर्षा में मैं भी पूरा भीग जाऊँ...। मेरा मन-मयूर अब एक आत्मदेव के सिवाय किसीके प्रति टहुँकार न करे।

हे प्रभु ! हमें विकारों से, मोह-ममता से, साथियों से बचाओ... अपने-आपमें जगाओ।

हे मेरे मालिक ! अब... कब तक... मैं भटकता रहूँगा ? मेरी सारी उमरिया बीती जा रही है... कुछ तो रहमत करो कि अब... आपके चरणों का अनुरागी होकर मैं आत्मानन्द के महासागर में गोता लगाऊँ।

ॐ शांतिः ! ॐ आनंद !!

सोऽहम्... सोऽहम्... सोऽहम्...

आखिर यह सब कब तक... ? मेरा जीवन परमात्मा की प्राप्ति के लिए है, यह क्यों भूल जाता हूँ ?

मुझे... अब... आपके लिए ही प्यास रहे प्रभु... !

**अब प्रभु कृपा करौं एहि भाँती।**
**सब तजि भजन करौं दिन राती ॥**

# श्रीआसारामायण

**गुरु चरण रज शीष धरि, हृदय रूप विचार।**
**श्रीआसारामायण कहौं, वेदान्त को सार।।**

**धर्म कामार्थ मोक्ष दे, रोग शोक संहार।**
**भजे जो भक्ति भाव से, शीघ्र हो बेड़ा पार।।**

भारत सिंधु नदी बखानी, नवाब जिले में गाँव बेराणी।
रहता एक सेठ गुण खानि, नाम थाऊमल सिरुमलानी।।
आज्ञा में रहती मेंहगीबा, पतिपरायण नाम मंगीबा।
चैत वद छः उन्नीस अठानवे, आसुमल अवतरित आँगने।।
माँ मन में उमड़ा सुख सागर, द्वार पै आया एक सौदागर।
लाया एक अति सुन्दर झूला, देख पिता मन हर्ष से फूला।।
सभी चकित ईश्वर की माया, उचित समय पर कैसे आया।
ईश्वर की ये लीला भारी, बालक है कोई चमत्कारी।।

**संत सेवा औ' श्रुति श्रवण, मात पिता उपकारी।**
**धर्म पुरुष जन्मा कोई, पुण्यों का फल भारी।।**

सूरत थी बालक की सलोनी, आते ही कर दी अनहोनी।
समाज में थी मान्यता जैसी, प्रचलित एक कहावत ऐसी।।
तीन बहन के बाद जो आता, पुत्र वह त्रेखण कहलाता।
होता अशुभ अमंगलकारी, दरिद्रता लाता है भारी।।
विपरीत किंतु दिया दिखाई, घर में जैसे लक्ष्मी आई।
तिरलोकी का आसन डोला, कुबेर ने भण्डार ही खोला।
मान-प्रतिष्ठा और बड़ाई, सबके मन सुख शांति छाई।।

**तेजोमय बालक बढ़ा, आनन्द बढ़ा अपार।**
**शील शांति का आत्मधन, करने लगा विस्तार।।**

एक दिना थाऊमल द्वारे कुलगुरु परशुराम पधारे।
ज्यूँ ही वे बालक को निहारे, अनायास ही सहसा पुकारे॥
यह नहीं बालक साधारण, दैवी लक्षण तेज है कारण।
नेत्रों में है सात्त्विक लक्षण, इसके कार्य बड़े विलक्षण॥
यह तो महान् संत बनेगा, लोगों का उद्धार करेगा।
सुनी गुरु की भविष्यवाणी, गद्गद् हो गये सिरुमलानी।
माता ने भी माथा चूमा, हर कोई ले करके घूमा॥

**ज्ञानी वैरागी पूर्व का, तेरे घर में आय।**
**जन्म लिया है योगी ने, पुत्र तेरा कहलाय॥**
**पावन तेरा कुल हुआ, जननी कोख कृतार्थ।**
**नाम अमर तेरा हुआ, पूर्ण चार पुरुषार्थ॥**

सैंतालीस में देश विभाजन, पाक में छोड़ा भू पशु औ' धन।
भारत अमदावाद में आये, मणिनगर में शिक्षा पाये॥
बड़ी विलक्षण स्मरण शक्ति, आसुमल की आशु युक्ति।
तीव्र बुद्धि एकाग्र नम्रता, त्वरित कार्य औ' सहनशीलता॥
आसुमल प्रसन्न मुख रहते, शिक्षक हँसमुखभाई कहते।
पिस्ता बदाम काजू अखरोटा, भरे जेब खाते भर पेटा॥
दे दे मक्खन मिश्री कूजा माँ ने सिखाया ध्यान औ' पूजा।
ध्यान का स्वाद लगा तब ऐसे, रहे न मछली जल बिन जैसे॥
हुए ब्रह्मविद्या से युक्त वे, वही है विद्या या विमुक्तये।
बहुत रात तक पैर दबाते, भरे कंठ पितु आशिष पाते॥

**पुत्र तुम्हारा जगत में, सदा रहेगा नाम।**
**लोगों के तुमसे सदा पूरण होंगे काम॥**

सिर से हटी पिता की छाया, तब माया ने जाल फैलाया।
बड़े भाई का हुआ दुःशासन, व्यर्थ हुए माँ के आश्वासन ॥
छूटा वैभव स्कूली शिक्षा, शुरू हो गई अग्निपरीक्षा।
गये सिद्धपुर नौकरी करने, कृष्ण के आगे बहाये झरने ॥
सेवक सखा भाव से भीजे, गोविन्द माधव तब रीझे।
एक दिना एक माई आई, बोली हे भगवन् सुखदाई ॥
पड़े पुत्र दुःख मुझे झेलने, खून केस दो बेटे जेल में।
बोले आसु सुख पावेंगे, निर्दोष छूट जल्दी आवेंगे।
बेटे घर आये माँ भागी, आसुमल के पाँवों लागी ॥

**आसुमल का पुष्ट हुआ, अलौकिक प्रभाव।**
**वाक्सिद्धि की शक्ति का, हो गया प्रादुर्भाव ॥**

बरस सिद्धपुर तीन बिताये, लौट अमदावाद में आये।
करने लगी लक्ष्मी नर्तन, किया भाई का दिल परिवर्तन ॥
दरिद्रता को दूर कर दिया, घर वैभव भरपूर कर दिया।
सिनेमा उन्हें कभी न भाये, बलात् ले गये रोते आये ॥
जिस माँ ने था ध्यान सिखाया, उसको ही अब रोना आया।
माँ करना चाहती थी शादी, आसुमल का मन वैरागी ॥
फिर भी सबने शक्ति लगाई, जबरन कर दी उनकी सगाई।
शादी को जब हुआ उनका मन, आसुमल कर गये पलायन ॥

**पण्डित कहा गुरु समर्थ को, रामदास सावधान।**
**शादी फेरे फिरते हुए, भागे छुड़ाकर जान ॥**

करत खोज में निकल गया दम, मिले भरूच में अशोक आश्रम।
कठिनाई से मिला रास्ता, प्रतिष्ठा का दिया वास्ता ॥
घर में लाये आजमाये गुर, बारात ले पहुँचे आदिपुर।
विवाह हुआ पर मन दृढ़ाया, भगत ने पत्नी को समझाया ॥

अपना व्यवहार होगा ऐसे, जल में कमल रहता है जैसे।
सांसारिक व्यौहार तब होगा, जब मुझे साक्षात्कार होगा।
साथ रहे ज्यूँ आत्माकाया, साथ रहे वैरागी माया॥

**अनश्वर हूँ मैं जानता, सत् चित् हूँ आनन्द।**
**स्थिति में जीने लगूँ होवे परमानन्द॥**

मूल ग्रंथ अध्ययन के हेतु, संस्कृत भाषा है एक सेतु।
संस्कृत की शिक्षा पाई, गति और साधना बढ़ाई॥
एक श्लोक हृदय में पैठा, वैराग्य सोया उठ बैठा।
आशा छोड़ नैराश्यवलंबित, उसकी शिक्षा पूर्ण अनुष्ठित॥
लक्ष्मी देवी को समझाया, ईश प्राप्ति ध्येय बताया।
छोड़ के घर मैं अब जाऊँगा, लक्ष्य प्राप्त कर लौट आऊँगा॥
केदारनाथ के दर्शन पाये, लक्षाधिपति आशिष पाये।
पुनि पूजा पुनः संकल्पाये, ईश प्राप्ति आशिष पाये॥
आये कृष्ण लीलास्थली में वृन्दावन की कुंज गलिन में।
कृष्ण ने मन में ऐसा ढाला, वे जा पहुँचे नैनीताला॥
वहाँ थे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठित, स्वामी लीलाशाह प्रतिष्ठित।
भीतर तरल थे बाहर कठोरा, निर्विकल्प ज्यूँ कागज कोरा।
पूर्ण स्वतंत्र परम उपकारी, ब्रह्मस्थित आत्म-साक्षात्कारी॥

**ईशकृपा बिन गुरु नहीं, गुरु बिना नहीं ज्ञान।**
**ज्ञान बिना आत्मा नहीं, गावहिं वेद पुरान॥**

जानने को साधक की कोटि, सत्तर दिन तक हुई कसौटी।
कंचन को अग्नि में तपाया, गुरु ने आसुमल बुलवाया॥
कहा गृहस्थ हो कर्म करना, ध्यान भजन घर पर ही करना।
आज्ञा मानी घर पर आये, पक्ष में मोटी कोरल धाये॥

नर्मदा तट पर ध्यान लगाये, लालजी महाराज आकर्षाये।
सप्रेम शीलस्वामी पहँ धाये, दत्तकुटीर में साग्रह लाये ॥
उमड़ा प्रभु प्रेम का चसका, अनुष्ठान चालीस दिवस का।
मरे छः शत्रु स्थिति पाई, ब्रह्मनिष्ठता सहज समाई ॥
शुभाशुभ सम रोना गाना, ग्रीष्म ठंड मान औ' अपमाना।
तृप्त हो खाना भूख अरु प्यास, महल औ' कुटिया आसनिरास।
भक्तियोग ज्ञान अभ्यासी, हुए समान मगहर औ' कासी ॥

**भाव ही कारण ईश है, न स्वर्ण काठ पाषान।**
**सत् चित् आनंदरूप है, व्यापक है भगवान ॥**
**ब्रह्मेशान जनार्दन, सारद सेस गणेश।**
**निराकार साकार है, है सर्वत्र भवेश ॥**

हुए आसुमल ब्रह्माभ्यासी, जन्म अनेकों लागे बासी।
दूर हो गई आधि व्याधि, सिद्ध हो गई सहज समाधि ॥
इक रात नदी तट मन आकर्षा, आई जोर से आँधी वर्षा।
बंद मकान बरामदा खाली, बैठे वहीं समाधि लगा ली ॥
देखा किसीने सोचा डाकू, लाये लाठी भाला चाकू।
दौड़े चीखे शोर मच गया, टूटी समाधि ध्यान खिंच गया ॥
साधक उठा थे बिखरे केशा, राग द्वेष ना किंचित् लेशा।
सरल लोगों ने साधु माना, हत्यारों ने काल ही जाना ॥
भैरव देख दुष्ट घबराये, पहलवान ज्यूँ मल्ल ही पाये।
कामीजनों ने आशिक माना, साधुजन कीन्हें परनामा ॥

**एक दृष्टि देखे सभी, चले शांत गम्भीर।**
**सशस्त्रों की भीड़ को, सहज गये वे चीर ॥**

माता आई धर्म की सेवी, साथ में पत्नी लक्ष्मी देवी।
दोनों फूट फूट के रोई, रुदन देख करुणा भी रोई॥
संत लालजी हृदय पसीजा, हर दर्शक आँसू में भीजा।
कहा सभीने आप जाइयो, आसुमल बोले कि भाइयों॥
चालीस दिवस हुआ न पूरा, अनुष्ठान है मेरा अधूरा।
आसुमल ने छोड़ी तितिक्षा, माँ पत्नी ने की परतीक्षा॥
जिस दिन गाँव से हुई विदाई, जार जार रोये लोग-लुगाई।
अमदावाद को हुए रवाना, मियाँगाँव से किया पयाना॥
मुंबई गये गुरु की चाह, मिले वहीं पै लीलाशाह।
परम पिता ने पुत्र को देखा, सूर्य ने घटजल में पेखा॥
घटक तोड़ जल जल में मिलाया जल प्रकाश आकाश में छाया।
निज स्वरूप का ज्ञान दृढ़ाया, ढाई दिवस होश न आया॥

**आसोज सुद दो दिवस, संवत् बीस इक्कीस।**
**मध्याह्न ढाई बजे, मिला ईस से ईस॥**
**देह सभी मिथ्या हुई, जगत हुआ निस्सार।**
**हुआ आत्मा से तभी, अपना साक्षात्कार॥**

परम स्वतंत्र पुरुष दर्शाया, जीव गया और शिव को पाया।
जान लिया हूँ शांत निरंजन, लागू मुझे न कोई बन्धन॥
यह जगत सारा है नश्वर, मैं ही शाश्वत एक अनश्वर।
दीद हैं दो पर दृष्टि एक है, लघु गुरु में वही एक है॥
सर्वत्र एक किसे बतलाये, सर्वव्याप्त कहाँ आये जाये।
अनन्त शक्तिवाला अविनाशी, रिद्धि सिद्धि उसकी दासी॥
सारा ही ब्रह्माण्ड पसारा, चले उसकी इच्छानुसारा।
यदि वह संकल्प चलाये, मुर्दा भी जीवित हो जाये॥

**ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर, कार्य रहे ना शेष ।**
**मोह कभी न ठग सके, इच्छा नहीं लवलेश ॥**
**पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान ।**
**आसुमल से हो गये, साँई आसाराम ॥**

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति चेते, ब्रह्मानन्द का आनन्द लेते ।
खाते पीते मौन या कहते, ब्रह्मानन्द मस्ती में रहते ॥
रहो गृहस्थ गुरु का आदेश, गृहस्थ साधु करो उपदेश ।
किये गुरु ने वारे न्यारे, गुजरात डीसा गाँव पधारे ।
मृत गाय दिया जीवन दाना, तब से लोगों ने पहचाना ॥
द्वार पै कहते नारायण हरि, लेने जाते कभी मधुकरी ।
तब से वे सत्संग सुनाते, सभी आर्त्ती शांति पाते ॥
जो आया उद्धार कर दिया, भक्त का बेड़ा पार कर दिया ।
कितने मरणासन्न जिलाये, व्यसन मांस और मद्य छुड़ाये ॥

**एक दिन मन उकता गया, किया डीसा से कूच ।**
**आई मौज फकीर की, दिया झोंपड़ा फूँक ॥**

वे नारेश्वर धाम पधारे, जा पहुँचे नर्मदा किनारे ।
मीलों पीछे छोड़ा मन्दर, गये घोर जंगल के अन्दर ॥
घने वृक्ष तले पत्थर पर, बैठे ध्यान निरंजन का धर ।
रात गई प्रभात हो आई, बाल रवि ने सूरत दिखाई ॥
प्रातः पक्षी कोयल कूकन्ता, छूटा ध्यान उठे तब संता ।
प्रातर्विधि निवृत्त हो आये, तब आभास क्षुधा का पाये ॥
सोचा मैं न कहीं जाऊँगा, यहीं बैठकर अब खाऊँगा ।
जिसको गरज होगी आयेगा, सृष्टिकर्त्ता खुद लायेगा ॥

ज्यूँ ही मन विचार वे लाये, त्यूँ ही दो किसान वहाँ आये ।
दोनों सिर पर बाँधे साफा, खाद्यपेय लिये दोनों हाथा ॥
बोले जीवन सफल है आज, अर्घ्य स्वीकारो महाराज ।
बोले संत और पै जाओ, जो है तुम्हारा उसे खिलाओ ॥
बोले किसान आपको देखा, स्वप्न में मार्ग रात को देखा ।
हमारा न कोई संत है दूजा, आओ गाँव करें तुम्हरी पूजा ॥
आसाराम तब मन में धारे, निराकार आधार हमारे ।
पिया दूध थोड़ा फल खाया, नदी किनारे जोगी धाया ॥

**गाँधीनगर गुजरात में, है मोटेरा ग्राम।**
**ब्रह्मनिष्ठ श्री संत का, यहीं है पावन धाम॥**
**आत्मानंद में मस्त हैं, करें वेदान्ती खेल।**
**भक्ति योग और ज्ञान का, सद्गुरु करते मेल॥**
**साधिकाओं का अलग, आश्रम नारी उत्थान।**
**नारी शक्ति जागृत सदा, जिसका नहीं बयान॥**

बालक वृद्ध और नरनारी, सभी प्रेरणा पायें भारी ।
एक बार जो दर्शन पाये, शांति का अनुभव हो जाये ॥
नित्य विविध प्रयोग करायें, नादानुसन्धान बतायें ।
नाभि से वे ओम कहलायें, हृदय से वे राम कहलायें ॥
सामान्य ध्यान जो लगायें, उन्हें वे गहरे में ले जायें ।
सबको निर्भय योग सिखायें, सबका आत्मोत्थान करायें ॥
हजारों के रोग मिटाये, और लाखों के शोक छुड़ाये ।
अमृतमय प्रसाद जब देते, भक्त का रोग शोक हर लेते ॥
जिसने नाम का दान लिया है, गुरु अमृत का पान किया है ।
उनका योग क्षेम वे रखते, वे न तीन तापों से तपते ॥

धर्म कामार्थ मोक्ष वे पाते, आपद रोगों से बच जाते।
सभी शिष्य रक्षा पाते हैं, सूक्ष्म शरीर गुरु आते हैं॥
सचमुच गुरु हैं दीनदयाल, सहज ही कर देते हैं निहाल।
वे चाहते सब झोली भर लें, निज आत्मा का दर्शन कर लें॥
एकसौ आठ जो पाठ करेंगे, उनके सारे काज सरेंगे।
गंगाराम शील है दासा, होंगी पूर्ण सभी अभिलाषा॥

**वराभयदाता सद्गुरु परम हि भक्त कृपाल।**
**निश्छल प्रेम से जो भजे, साँई करे निहाल॥**
**मन में नाम तेरा रहे, मुख पे रहे सुगीत।**
**हमको इतना दीजिए, रहे चरण में प्रीत॥**

## श्रीगुरु–महिमा

गुरु बिन ज्ञान न उपजे, गुरु बिन मिटे न भेद।
गुरु बिन संशय ना मिटे, जय जय जय गुरुदेव॥
तीरथ का है एक फल, संत मिले फल चार।
सद्गुरु मिले अनंत फल, कहत कबीर विचार॥
भव भ्रमण संसार दुःख, ता का वार न पार।
निर्लोभी सद्गुरु बिना, कौन उतारे पार॥
पूरा सद्गुरु सेवतां, अंतर प्रगटे आप।
मनसा वाचा कर्मणा, मिटें जन्म के ताप॥
समदृष्टि सद्गुरु किया, मेटा भरम विकार।
जहँ देखो तहँ एक ही, साहिब का दीदार॥
आत्मभ्रांति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान।
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान॥

सद्गुरु पद में समात हैं, अरिहंतादि पद सब।
तातैं सद्गुरु चरण को, उपासो तजि गर्व ॥
बिना नयन पावे नहीं, बिना नयन की बात।
सेवे सद्गुरु के चरण, सो पावे साक्षात् ॥

(गुजराती)

जेह स्वरूप समज्या विना पाम्यो दुःख अनंत।
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत ॥
देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत।
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वन्दन अगणीत ॥
गुरु दीवो गुरु देवता, गुरु विण घोर अंधार।
जे गुरुवाणी वेगळा, रड़वड़िया संसार ॥
परम पुरुष प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुखधाम।
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम ॥

## नर-जन्म किसका है सफल ?

दुःसंग में जाता नहीं, सत्संग करता नित्य है।
दुर्ग्रन्थ न पढ़ता कभी, सद्ग्रन्थ पढ़ता नित्य है ॥
शुभ-गुण बढ़ाता है सदा, अवगुण घटाने में कुशल।
मन शुद्ध है वश इन्द्रियाँ, नर जन्म उसका है सफल ॥
धन का कमाना जानता, धन खर्च करना जानता।
सज्जन तथा दुर्जन तुरंत, मुख देखते पहिचानता ॥
हो प्रश्न कैसा ही कठिन, झट ही समझ कर देय हल।
धर्मज्ञ भी मर्मज्ञ भी, नर जन्म उसका है सफल ॥

चिन्ता न आगे की करे, ना सोच पीछे का करे।
जो प्राप्त हो सो लेय कर, मन में उसे नाहीं धरे॥
ज्यों स्वच्छ दर्पण 'चित्त अपना', नित्य त्यों रक्खे विमल।
चढ़ने न उस पर देय मल, नर जन्म उसका है सफल॥
लाया न था कुछ साथ में, ना साथ कुछ ले जायगा।
मुट्ठी बँधा आया यहाँ, खोले यहाँ से जायगा॥
रोता हुआ जन्मा यहाँ, हँसता हुआ जाये निकल।
रोते हुए सब छोड़कर, नर जन्म उसका है सफल॥
बांधव न जाते साथ में, सब रह यहाँ ही जाय हैं।
'नाता निभाया बहुत', मर्घट माँहिं पहुँचा आय हैं॥
ऐसा समझ व्यवहार उनसे, धीर जो करता सरल।
ना प्रीति ही ना बैर ही, नर जन्म उसका है सफल॥
मम देह है तू मानता, तब देह से तू अन्य है।
है माल से मालिक अलग, यह बात सबको मन्य है॥
जब देह से तू भिन्न है, क्यों फिर बने है देह-मल।
जो आपको जाने अमल, नर जन्म उसका है सफल॥
तू जागने को, स्वप्न को, अरु नींद को है जानता।
ये है अवस्था देह की, क्यों आत्म इनको मानता॥
ना जन्म तेरा, ना मरण, तू तो सदा ही है अटल।
जो जानता आत्मा अचल, नर जन्म उसका है सफल॥
कारण बना है जब तलक, ना कार्य तब तक जायगा।
भोला ! बना है चित्त तब तक, चेत्य ना छुट पायगा॥
पाता वही साम्राज्य अक्षय, चित्त जिसका जाय गल।
इस चित्त को देवे गला, नर जन्म उसका है सफल॥

## है दुःख केवल मूढ़ता !

यदि पुत्र होता दुष्ट तो, वैराग्य है सिखलावता ।
पुत्रेच्छु पाता दुःख है, है दुःख केवल मूढ़ता ।।
सेवक न देते दुःख हैं, देते सभी आराम हैं ।
आज्ञानुसारी होय हैं, करते समय पर काम हैं ।।
नेत्रादि सेवक साथ फिर भी, मूढ़ ! सेवक चाहता ।
पाता उसीसे दुःख है, है दुःख केवल मूढ़ता ।।
आत्मा कभी मरती नहीं, मरती सदा ही देह है ।
ना देह हो सकती अमर, इसमें नहीं संदेह है ।।
पर देह भी नाहीं मरे, नर मूढ़ आशा राखता ।
पाता इसीसे दुःख है, है दुःख केवल मूढ़ता ।।

## सद्गुरु

छुड़वाय कर सब कामना, कर देय हैं निष्कामना ।
सब कामनाओं का बता घर, पूर्ण करते कामना ।।
मिथ्या विषय सुख से हटा, सुख सिन्धु देते हैं बता ।
सुख सिन्धु जल से पूर्ण, अपना आप देते हैं जता ।।
इक तुच्छ वस्तु छीन कर, आपत्तियाँ सब मेट कर ।
प्याला पिला कर अमृत का, मर को बनाते हैं अमर ।।
सब भाँति से कृत कृत्य कर, परतंत्र को निज तन्त्र कर ।
अधिपति रहित देते बना, भय से छुड़ा करते निडर ।।
सद्गुरु जिसे मिल जायँ, सोही धन्य है जग मन्य है ।
सुर सिद्ध उसको पूजते, ता सम न कोऊ अन्य है ।।
अधिकारी हो गुरुदेव से, उपदेश जो नर पाय है ।
भोला ! तरे संसार से, नहिं गर्भ में फिर आय है ।।
ईश्वर कृपा से, गुरु कृपा से, मर्म मैंने पा लिया ।
ज्ञानाग्नि में अज्ञान कूड़ा, भस्म सब है कर दिया ।।

अब हो गया है स्वस्थ्य सम्यक्, लेश नाहीं भ्रांत है ।
शंका हुई निर्मूल सब, अब चित्त मेरा शांत है ॥

## साखियाँ

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माँहिं ।
कहै कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिं ॥
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अंध ।
महा दुःखी संसार में, आगे जम के बंध ॥
नाम रतन धन मुज्झ में, खान खुली घट माँहिं ।
सेंत मेंत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिं ॥
नाम बिना बेकाम है, छप्पन कोटि बिलास ।
का इंद्रासन बैठिबो, का बैकुंठ निवास ॥
सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुःख जाय ।
कह कबीर सुमिरन किये, साँईं माँहिं समाय ॥

## प्रार्थना

**गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।**
**गुरुर्साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥**
**ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।**
**मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥**
**अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।**
**तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥**
**त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव ।**
**त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥**
**ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं ।**
**द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥**

**एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं ।**
**भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥**

## गुरु–वन्दना

जय सद्गुरु देवन देव वरं, निज भक्तन रक्षण देह धरं ।
पर दुःख हरं सुख शांति करं, निरुपाधि निरामय दिव्य परं ॥१॥
जय काल अबाधित शांतिमयं, जन पोषक शोषक ताप त्रयं ।
भय भंजन देत परम अभयं, मन रंजन भाविक भाव प्रियं ॥२॥
ममतादिक दोष नशावत हैं, शम आदिक भाव सिखावत हैं ।
जग जीवन पाप निवारत हैं, भवसागर पार उतारत हैं ॥३॥
कहुँ धर्म बतावत ध्यान कहीं, कहुँ भक्ति सिखावत ज्ञान कहीं ।
उपदेशत नेम अरु प्रेम तुम्हीं, करते प्रभु योग अरु क्षेम तुम्हीं ॥४॥
मन इन्द्रिय जाही न जान सके, नहीं बुद्धि जिसे पहचान सके ।
नहीं शब्द जहाँ पर जाय सके, बिनु सद्गुरु कौन लखाय सके ॥५॥
नहीं ध्यान न ध्यातृ न ध्येय जहाँ, नहीं ज्ञातृ न ज्ञान न ज्ञेय जहाँ ।
नहीं देश न काल न वस्तु तहाँ, बिनु सद्गुरु को पहुँचाय वहाँ ॥६॥
नहीं रूप न लक्षण ही जिसका, नहीं नाम न धाम कहीं जिसका ।
नहीं सत्य असत्य कहाय सके, गुरुदेव ही ताही जनाय सके ॥७॥
गुरु कीन कृपा भव त्रास गयी, मिट भूख गई छुट प्यास गयी ।
नहीं काम रहा नहीं कर्म रहा, नहीं मृत्यु रहा नहीं जन्म रहा ॥८॥
भग राग गया हट द्वेष गया, अघ चूर्ण भया अणु पूर्ण भया ।
नहीं द्वैत रहा सम एक भया, भ्रम भेद मिटा मम तोर गया ॥९॥
नहीं मैं नहीं तू नहीं अन्य रहा, गुरु शाश्वत आप अनन्य रहा ।
गुरु सेवत ते नर धन्य यहाँ, तिनको नहीं दुःख यहाँ न वहाँ ॥१०॥

# पंचामृत...

''मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि देह होते हुए भी मैं स्वयं को अपने देह से पृथक् अनुभव करूँगा ?... एकान्त में बैठा-बैठा मैं अपने मन-बुद्धि को पृथक् देखते-देखते अपनी आत्मा में तृप्त होऊँगा ?... मैं आत्मानन्द में मस्त रहकर संसार के व्यवहार में निश्चिन्त रहूँगा ?... शत्रु और मित्र के व्यवहार को मैं खेल समझूँगा ?''

*('ईश्वर की ओर')*

*

''वीर्य के एक-एक अणु में बहुत महान् शक्ति छिपी हुई है। इसीके द्वारा शंकराचार्य, महावीर, कबीर एवं नानक जैसे महापुरुष धरती पर अवतीर्ण हुए हैं। बड़े-बड़े वीर योद्धा, वैज्ञानिक, साहित्यकार- ये सब उस वीर्य की एक बूँद में से पैदा हुए और होते रहेंगे। इतने बहुमूल्य वीर्य का सदुपयोग जो नहीं कर पाता, वह अपना पतन आप आमंत्रित करता है। **वीर्यं वै भर्गः।** वीर्य ही तेज है, आत्मा है, प्रकाश है।''

*('यौवन सुरक्षा')*

*

**आकल्पजन्मकोटीनां यज्ञव्रततपः क्रियाः।**
**ताः सर्वाः सफला देवि गुरुसंतोषमात्रतः॥**

'हे देवी। कल्प पर्यन्त के, करोड़ों जन्मों के यज्ञ, व्रत, तप और शास्त्रोक्त क्रियाएँ- ये सब गुरुदेव के संतोषमात्र से सफल हो जाते हैं।'

*('श्रीगुरुगीता')*

*

''सच्चे गुरु से ज्यादा प्यारे, हितकारी, कृपालु और प्रिय व्यक्ति इस दुनिया में बड़ी मुश्किल से मिलेंगे। आत्मवेत्ता गुरु के साथ एक क्षण का सत्संग भी लाखों वर्षों के तप से कई गुना श्रेष्ठ है।''

*('गुरुभक्तियोग')*

*

''साधना की शुरूआत श्रद्धा से होती है लेकिन समाप्ति ज्ञान से होनी चाहिए। ज्ञान माने 'स्वयंसहित सब कुछ ब्रह्मस्वरूप है'- ऐसा अपरोक्ष अनुभव।''

*('जीवन रसायन')*